

लव-लेटर्स



हिन्दी साहित्यके धुरन्धर लेखकोंके लिखे, लव-लेटर्स
अर्थात् मनोहर (प्रेम-पत्र)

भूमिका लेखक *Krishankant*

पं० कृष्णकान्त मालवीय,

एम० एल० ए० (सेन्ट्रल)

संकलन कर्ता—सूर्यवली सिंह

प्रकाशक—काशी-पुस्तक-भण्डार, चौक बनारस

प्रथम बार

सम्वत् १९९५

मूल्य ३)

सजिल्द ३॥)

प्रकाशक

काशी-पुस्तक-भण्डार,

चौक, बनारस

Acc: no: 12233

No 3-8-0

131

कुत्सित जीवन

लेखक—महात्मा गाँधी

यह पुस्तक अपने विषयमें अद्वितीय है। इसका प्रमाण यही है कि यह संसारके सर्वश्रेष्ठ पुरुष महात्मा गान्धीद्वारा लिखी गई है। मानव-जातिको नैतिक जीवन देनेवाली यह पुस्तक बड़ी ही सुन्दर है। इसमें महात्माजीने यह भलीभाँति अंकित किया है आत्म-संयम ही जीवनका धर्म है। नर और नारीके बीचका स्वाभाविक सम्बन्ध वह है जो भाई-बहन, माँ और बेटे तथा बाप एवं बेटीमें होता है। पति और पत्नीमें भी कामका आकर्षण अस्वाभाविक और अप्राकृतिक है। विवाहका उद्देश्य दम्पतिके हृदयोंके विकारोंको दूर कर उन्हें ईश्वरके निकट ले जाना है। मू० ॥॥)

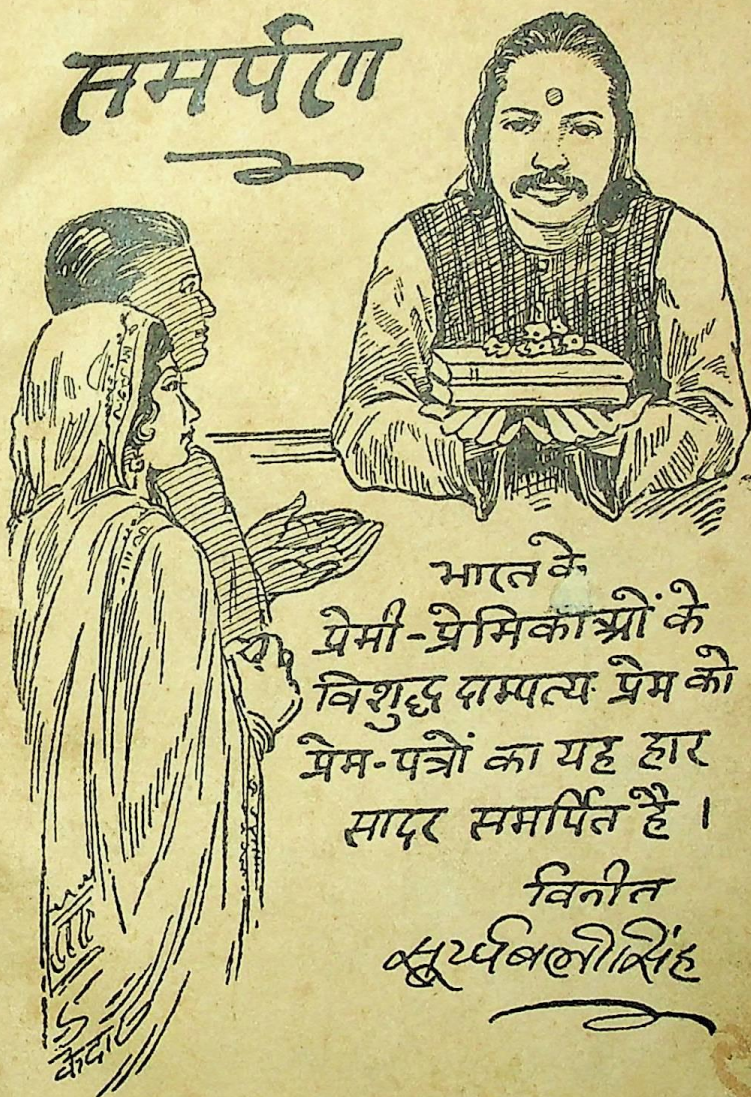
R/ 0261-773 / 58/0
No

सिंह,

खगश-प्रस,

बड़ा गणेश, बनारस

समर्पण



भारत के
प्रेमी-प्रेमिकाओं के
विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम को
प्रेम-पत्रों का यह हार
सादर समर्पित है ।

विनीत
सुखदेवजी सिंह

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

योगी अरविन्द लिखित

६ पुस्तकें

१ अरविन्द-मन्दिरमें ॥॥)

२ धर्म और जातीयता १)

३ गीताकी भूमिका ॥॥)

४ हमारी स्वतन्त्रता

कैसी हो ? १)

५ योग साधन ॥॥)

६ क्या भारत सभ्य है ॥)

—

७ मिलन-मन्दिर २॥)

८ नारी-धर्म-शिक्षा १॥)

९ ब्रह्मचर्यकी महिमा १)

१० कुत्सित जीवन ॥॥)

११ कांग्रेसका इतिहास १)

(सचित्र) १)

१२ साम्यवादका बिगुल १)

१३ फासिज्म १)

१४ टुवडर्स फ्रीडम १)

१५ लव् लेटर्स ३) सजिल्द ३॥)

१६ स्त्री-संगीत गायन ॥=)

२७ आश्रम गीतांजलि ॥=)

२८ उर्दू के कवि और

उनका काव्य १॥)

२९ हिन्दीके वर्तमान कवि

और उनका काव्य १॥)

२० कांग्रेसके गायन ॥॥)

२१ ईश बन्दना ॥)

२२ बच्चोंके गीत ॥=)

२३ दिलके तराने ॥=)

२४ कन्या-शिक्षा-दर्पण ॥)

२५ दहेज (सचित्र) २)

२६ किसानोंकी उन्नतिका

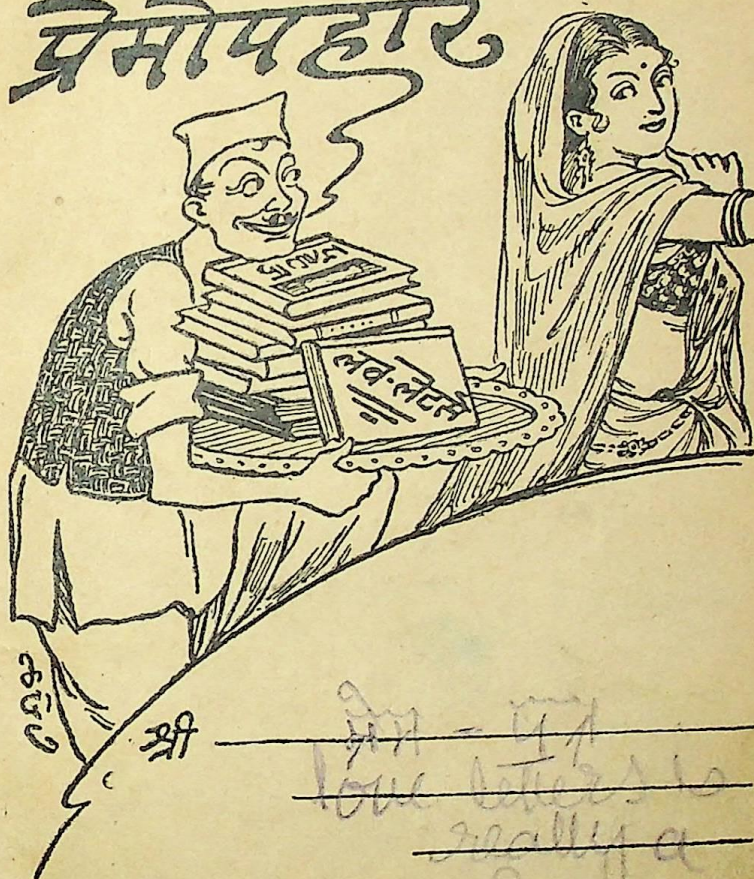
उपाय १)

२७ क्रान्ति युगकी चिनगारियाँ १)

हिन्दीकी उत्तमोत्तम पुस्तकोंके मिलनेका पता—

काशी-पुस्तक-भण्डार, चौक, बनारस ।

प्रेमोपहार



८५२

श्री

भवदीय

विषय-सूची

संख्या पृष्ठ शीर्षक लेखक

- १—क भूमिका—पं० कृष्णकान्त मालवीय—एम० एल० ए०
(सेंट्रल)
- २—प कृतज्ञताप्रकाश—संकलन कर्ता—सूर्यबलीसिंह ।
- ३—ब प्रेमकी महिमा —मोतीलाल जैन एम० ए० ।
- ४—१ लव-लेटर्स—कविवर बिहारी ।
- ५—२ पत्र-कला—पं० देवनारायण द्विवेदी ।
- ६—१५ पत्र-व्यवहार—पं० बालकृष्ण शर्मा “नवीन”
सम्पादक “प्रताप” ।
- ७—१९ बोबी और शौहरके खत—पं० रत्ननाथ दर ‘सरसार’
लखनवी अनुवादक स्वर्गीय प्रेमचंद ।
- ८—२५ वे दिन—सीताराम गुप्त ‘विनोद’ डी० काम ए०
एम० आई एस० ई० ।
- ९—३८ पत्र-पुष्पांजलि—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ‘सरस’
प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग ।
- १०—४१ देव-दासी—स्वर्गीय जयशंकर ‘प्रसाद’ ।
- ११—५६ कृष्णके पत्र राधाके नाम—(प्रेषक—श्री० वेंकटेश
नारायण तिवारी एम० ए०, एम० एल० ए०)
- १२—८१ कृष्णका राधाके नाम अन्तिम पत्र—(प्रेषक—श्री०
वेंकटेश नारायण तिवारी एम० ए० एम० एल० ए०)

संख्या पृष्ठ शीर्षक लेखक

- १३—११३ राधाका एक पत्र कृष्णके नाम—‘प्रेषक परिणत
कृष्णकान्त मालवीय’ एम० एल० ए० (सेन्ट्रल)
- १४—१२४ पियकी पाती—‘स्वर्गीय पं० पद्मसिंहजी शर्मा ।
- १५—१२७ विरहिणीके पत्र—कुछ प्राचीन कवियोंकी अनोखी सूझ
- १६—१३१ पगलीका पत्र—‘कविवर श्री० अद्योध्यासिंहजी
उपाध्याय ‘हरिऔध’ प्रो० हिंदू वि० वि० हि० वि० ।
- १७—१३८ परलोक-विद्या—‘श्रीरामदास गौड़, एम० ए०’ ।
- १८—१५७ फिर—‘आयुर्वेदाचार्य प्रो० चतुरसेनजी शास्त्री’ ।
- १९—१७४ विवाहके बाद—‘डा० धनीराम ‘प्रेम’ ।
- २०—१८९ शकुन्तला-पत्र-लेखन—‘कविवर श्री० रामचरित उपा०’
- २१—१९२ कर्त्तव्य और प्रेम—श्रीअनूप ‘साहित्यरत्न’ ।
- २२—२११-२१४ श्रीरुक्मिणीका श्रीकृष्णको प्रेम-पत्र—
‘श्रीलक्ष्मणनारायण गर्दे’
- २३—२१७ बन्दीका पत्र-व्यवहार—श्रीजगन्नाथ मिश्र, गौड़ ‘कमल’
- २४—२२१ सौत—‘श्रीमती कमला देवी’
- २५—२३५ मीठी चुटकी—श्रीकृष्णदेवप्रसाद गौड़, एम० ए०
‘बेढब’ बनारसी
- २६—२३९ लॉर्ड कलाइवके प्रेम-पत्र-अनु० श्रीविश्वम्भरनाथजी
‘कौशिक’ ।
- २७—२४७ अनुनय—‘देवनारायण’ द्विवेदी ।
- २८—२५६ टेढ़ी माँग—‘अन्नपूर्णा नन्दजी’ ।
- २९—१६७ दर्दकी तस्वीरें—‘श्रीजनार्दनप्रसाद भा ‘द्विज’ एम० ए०
- ३०—२९५ एक विधवाका अपने सखीको—श्री० ‘प्रभात’ ।

संख्या पृष्ठ शीर्षक लेखक

- ३१—२९७ अन्तःपुरका आत्मनाद—‘महादेवसिंह शर्मा’ ।
 ३२—३०६ परदेकी आवाज—‘श्री० अमर, काव्यतीर्थ, एम० ए०’
 ३३—३१९ मनचलोंके कुछ खतूत—‘दो दिवाने’ ।
 ३४—३३० कृषक वधूके पत्र—‘सीताराम वर्मा’ ।
 ३५—३३४ प्रेमिकाकी चिट्ठीका उत्तर—कविवर ‘चंचरीक’ ।
 ३६—३३८ स्त्रीकी दर्दभरी चिट्ठियाँ—श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ।
 ३७—३४६ संकुचित और विकसित प्रेम—‘छबीलेलाल गोस्वामी’
 ३८—३५२ प्रेम-लोक—‘सूर्यबलीसिंह’ ।
 ३९—३६४ प्रेमलोक—‘उत्तराद्ध’ ।
 ४०—२८२ सुकुमार भावनाओंके प्रेम-पत्र—कपिलदेवनारायण सिंह (सुहृद)
 ४१—३८५ ‘चन्द्रावलीका प्रेम-पत्र—‘भारतेन्दु हरिश्चन्द्र’ ।
 ४२—३८८-३८९ चितेराकी चिट्ठी—‘चित्रकार-कैदारनाथ शर्मा’
 ४३—३९१ प्रेमकी राहपर—‘परिणत लक्ष्मणनारायण गर्दे’ ।
 ४४—४०१ लव लेटर नहीं प्रेम पत्रिका—‘ब्रजरत्नदास बी० ए० एल-एल० बी’ ।
 ४५—४०४ लव-लेटर्सके सम्बन्धमें चेतावनी—‘मिर्जा इस्माइल बेग एम० ए’ ।
 ४६—४११ उपसंहार—‘देवनारायण ‘द्विवेदी’



दोस्त !

जिस समय श्रीसूर्यबलीसिंहजीने भूमिका लिखनेके लिए पत्र लिखा, बुढ़ापेकी दुहाई देकर मैंने उत्तर भेजा कि अब इस योग्य नहीं कि 'लव-लेटर्स' की भूमिका लिख सकूँ ।

'हाली' के शब्दोंमें मैंने लिखा :—

“हुई अरमाने जवानीकी बहार आखिर हैफ़,
 तबए रंगी थी मयए इश्ककी जब मतवाली ।
 अपनी रूदाद थी जो इश्कका करते थे बयाँ,
 जो ग़ज़ल लिखते थे होती थी सरासर हाली ।
 आप बीती न हो जो है वो क़हानी बेकुत्फ़,
 गरचे हों रुफ़ज़ फ़सीह और ज़बाँ टकसाली ।
 गर ग़ज़ल लिखिए तो क्या लिखिए ग़ज़ल में आखिर,
 न रही चीज़ वह मज़मून लिखानेवाली ।

हैं अगर इश्कके कुछ कीजिए औरोंके बर्याँ,
 लाइए बागसे औरोंके लगाकर डाली ।
 ताकि भड़काए जवानोंके दिल आतशकी तरह,
 वह हवा जिससे दिमाग अपना हुआ है खाली ।
 पर यह डर है कि कहीं अपना वही हो न मसल,
 कहवह चूँ पीर शवद पेशा कुनददल्लाली ।

किन्तु श्री सूर्यबलीसिंहजी न माने, उन्होंने अन्य मित्रोंसे
 जोर डलवाना शुरू किया । कवि 'हालो' स्वर्गसे मना कर रहे थे,
 'गालिब' की रूह सामने खड़ी कहती थी—

“थी एक वुतके तसौवुरसे
 अब वोह रानाइये खयाल कहाँ ?”

दिल कहता था जब “खुशीकी काबलीयत ही नहीं बाक़ी
 रही दिलमें” तो मजमून क्या लिखोगे, जो लिख चुके हो, उसे
 मिटानेपर मत आमादा हो । लिख भेजो, लाचारी है नहीं लिख
 सकता, एकसे एक अच्छे लिखनेवाले युवक लेखक हैं, किसीसे
 लिखवा लीजिये । इस तरह भी कोशिश की; किन्तु सफलता न
 मिली क्योंकि मित्रगण आग्रह नहीं हठसे काम ले रहे थे ।

सर्वथा विवश हो, मस्तिष्कने कहा, “हालो और गालिब
 स्वर्गमें हैं, तुमको स्वर्गमें पहुँचना नहीं, उनसे चश्मपोशी करो,
 आँखें चुरा लो, उनकी सुनी अनसुनी कर दो । दुनियाँके रहने-
 वालोंसे रोज़का वास्ता है, उनसे आँखें चुराई नहीं जा सकतीं,

उन्हें तो खुश रखना ही होगा, चाहे इसके लिए अपने को मिटाना ही क्यों न पड़े। बूढ़े दिलने कहा, यही सही, प्रेमी हृदयको तो कुछ अपने को मिटाने में ही सुख मिलता है। लाचार, कलम चलाना ही निश्चय किया और फल आपके सामने है।

लव-लेटर्स की भूमिका क्या हो सकती है? 'लव' या प्रेम की भूमिका तो कभी न सुना न जाना। शायद भूमिका इसकी कोई होती भी नहीं। प्रेमका तो जहाँ तक मैं जानता हूँ आदि और अन्त होता ही नहीं, और अगर होता भी है तो कुछ अज्ञात-सा। इसका कोई कारण भी नहीं होता। यह तो एक प्रकारसे स्वयंभू ही होता है। प्रेमका पात्र जरूर होता है किन्तु पात्र, वास्तवमें कारण भी होता है यह सदा, सर्वदा सब दशमें ठीक ही नहीं। प्रेम वर्तमान-से ही जुड़ा होता है, इसका न कोई भूत है न भविष्य। इस बातको अगर इस तरहसे कहा जाय कि, यदि सृष्टिका आरंभ है तो प्रेमका भी आरंभ हो सकता है, तो अधिक गलत न होगा। लोग 'प्रेम' को आकाशकी तरह अनन्त भी कहते हैं। लोगोंकी रायमें होगा किन्तु मैं उसे अनन्त न मानकर आकाशकी तरह उस समयके लिए सर्व-व्यापक all-pervading और उस समयके जीवनके प्रत्येक अंग और कार्यपर हावी जरूर मानता हूँ।

अगर यह सब सच या ठीक हो सकता है तो आप ही कहिए 'लव-लेटर्स' की भूमिकामें क्या लिखूँ?

मेरी कठिनाई यह भी है कि 'प्रेम' के सम्बन्धमें आज तक जो लिखा गया है, उसमेंसे ९५ फी सदीको मैं गलत समझता हूँ या यह समझता हूँ कि एक नितान्त इन्द्रियगत किन्तु सर्वप्रेरक और सबसे प्रबल वासनाको अधिकसे अधिक पवित्र और सुन्दर

रूप देनेकी लिए ही 'प्रेम' की दुनियाभरकी व्याख्या लेखकों और कवियोंने कर डाला है। वास्तवमें 'लव' इन्द्रियगत, कामसे प्रेरित वासना या आकर्षणके सिवा कुछ है नहीं। हाँ दुनियावालोंने जरूर समाजमें बैठकर इन्द्रियगत वासना और प्रजननकी संकोच-विहीन चर्चा करनेके लिए उसे पवित्रतर 'लव' या प्रेमके नामसे विभूषित कर दिया है।

प्रेम शक्तिशाली और प्रबल है। इसमें तूफानकी शक्ति और सागरकी गहराई, स्थिरता और गंभीरता है। हिमालय-सा उत्तरदायित्व और गौ तथा माताका-सा त्याग इसके साथे पड़ा है। 'लव' के जवान होती और वह बोल सकता तो कविके शब्दोंमें कहता—

“वनू वगूला वोह खाक हूँ मैं
 वहूँ लहू वनके हूँ वोह पानी ।
 जलाऊँ किस्मत वोह आग हूँ मैं
 उड़ाऊँ खाक अपनी वोह हवा हूँ।”

मेरा ख्याल है कि दुनियामें आजतकमें जो भी बड़ासे बड़ा, भलासे भला और बुरासे बुरा काम हुआ है और संसारमें जो कुछ भी भलाई या अच्छाई है, उसकी तहमें अगर देखा जाय तो 'प्रेम' या 'लव' ही प्रेरक शक्तिके रूपमें दिखाई देगा। प्रेममें मत्त होकर किसीने वह काम कर दिया होगा जिसे आज हम आश्चर्य, सुख या सन्तोषकी दृष्टिसे देखते हैं और जो आज संसारके लिए कल्याण तथा आह्लादकारी सिद्ध हो रहा है।

एक यूरोपीय लेखकका कहना है कि दुनियाके प्रत्येक भले

तथा बुरे कामकी जड़में कामकी वासना, किसी-न-किसी अंशमें, कहीं-न-कहीं प्रेरक-शक्तिके रूपमें छिपी होती है। यह कहाँ तक ठीक है यह कौन जाने किन्तु यह तो निर्विवाद बात है कि काम-के वशीभूत हो या प्रेममें पागल हो, दुनियाके कठिनसे कठिन, बड़ेसे बड़े और छोटेसे छोटे काम प्रसन्नतासे मनुष्य कर देता है। उसकी कठिनाइयोंका उसे ज्ञान या बोध नहीं होता, साथ ही उस कामको करनेमें ही वह अपनेको सुखी समझता है।

माताकी स्नेहमयी भक्तिमें स्नान कर, उसके आशीर्वादसे अमर होनेके लिए, एक बहनकी बातको रखनेके लिए, एक प्रेमिकाकी चितवनमें जगह पानेके लिए, उसके मुखसे एक बार अपनी वाहवा सुननेके लिए, उसके अधरोंकी अर्चनामात्र कर पानेके लिए, अपनी और अपने प्रेमिकाकी आत्माके स्वरूपकी संसार-यात्राको अधिकसे अधिक सुखमय बना देनेके लिए, पुरुष संसारके बड़ेसे बड़े और छोटेसे छोटे काम बिना संकोचके, बिना कुछ विचारे, बिना उसकी कठिनाइयोंपर तनिक भी ध्यान दिये कर बैठता है। यह है स्नेह और प्रेमकी प्रबलता, यह है प्रेमका जोर, यह है उसकी शक्ति और यही है उसकी महत्ता और व्यापकताका रहस्य।

आप पूछेंगे कि आखिर प्रेममें इतना अन्धापन, पागलपन, इतनी शक्ति, इतनी प्रबलता क्यों और कैसे है? और यह है क्या? क्या इसके जोड़की कोई दूसरी वस्तु भी संसारमें है? अगर नहीं तो क्यों?

जवाब इन बातोंका 'लव' शब्दमें ही छिपा हुआ है। कुछ अंग्रेज लेखकोंका कहना है कि 'लव' शब्द संस्कृत धातु 'लुभ'से बना है, कुछका ख्याल है कि एङ्गलो सेक्सन शब्द लुफू (Lufu)

से इसका सम्बन्ध है । लुभ और लुफू दोनोंहीका कामना वासना या इच्छासे घना सम्बन्ध है । दोनोंहीमें प्राप्त करने, और कब्जा पानेकी लालसा है ।

Platonic love वासनाविहीन प्रेम कोरी करुपना है । 'लव' चाहता है दर्शन, स्पर्शन, संवेदन तथा घनिष्ठतम संबंध-स्थापनमें आनन्द प्राप्त करना । अगर 'लव' यह सब नहीं चाहता, अगर वह यह नहीं चाहता कि दूसरा सदा सामने रहे, हँसता बोलता रहे, उसे हम छूते रहें, उससे हम चिमटते रहें, हम उसमें और वह हममें भीन जाय, वह हमारा ही हो और किसीका नहीं, हम उसीको देखें और वह हमको ही, हम उसके चरण-कमलोंमें अपनेको, दुनियाको, न्यौछावर कर दें, हम उसे सर्वस्व दे दें और वह भी अपना सर्वस्व दे दे, तो वह 'लव' नहीं है और जो भी कुछ हो ।

'लव' में इतनी प्रबलता या प्रखरता क्यों है ? उसमें हाथीसे भी अधिक बल कहाँ से आता है इसका सूक्ष्ममें जवाब यह है कि 'लव' कोरी कामकी वासना है । कामकी वासना, प्रजननकी लालसा-की जननी है, 'लव' इस तरहसे Life force या जीवन-शक्ति या सृष्टि करनेकी शक्तिसे सम्बन्धित है और इसी कारणसे Life force या जीवन-शक्तिकी सारी विशेषताएँ 'लव'में मौजूद होती हैं और Life force को ही तरह वह काम करता है ।

लोग कहते हैं 'God is love and love is God.' ईश्वर प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है' किन्तु इस वाक्यको अनन्त सत्य समझनेवालों-

१ Love means taking pleasure in seeing, touching perceiving with every sense and in the closest possible contact.

के ध्यानमें शायद ही कभी यह आया हो कि ईश्वर सृष्टिकर्ता है और Sex या प्रेम भी सृष्टिकर्ता है और इसीलिए ईश्वर और प्रेम एक ही समान सृष्टिकर्ता होनेके कारण एक दूसरेसे परिवर्तित और परिवर्धित हो सकते हैं। 'लव' सृष्टिकर्ता होनेके कारण सृष्टिकर्ता या सृष्टिकर्ताका प्रधान अङ्ग होता है और सृष्टिकर्ताकी सारी विभूतियोंसे विभूषित होता है।

दुनियाके विशेषज्ञ मेरी इस बातको ठीक मानेंगे या नहीं यह मैं नहीं जानता। किसी लेखकने पहले कभी ऐसा लिखा है यह भी मैं नहीं जानता किन्तु मेरी कल्पना मुझसे कहती है कि यही ठीक है।

सृष्टिके आदिकालसे कल्पना कर देखिए, Sex प्रजनन किन किन घटियोंमें होकर गुजरा है और किन-किन रूपोंको उसने धारण किया है। छोटी-सी भूमिकामें Love 'लव' के रूपान्तरोंका विस्तृत वर्णन सम्भव नहीं किन्तु सूक्ष्ममें यह तो कहा ही जा सकता है कि आदि कालसे प्रजनन (Sex) की प्रधानता और महत्ता ही Love (प्रेम), तथा Religion (धर्म) आदिका रूप धारण करती रही है। मेरा ख्याल है कि जिस तरहसे Love 'लव'का 'लुभ' धातुसे संबंध है उसी तरहसे Sex का शक्तिसे है।

विकासका काम, एक महत्वपूर्ण प्रेरक शक्तिको, जिसे अज्ञान या लज्जासे हम घृण्य समझने लगे थे, अच्छासे अच्छा, पवित्रसे पवित्र और सुन्दरसे सुन्दर आच्छादन ही देना रहा है। प्रजननसे जीवन था, प्रजननसे समाजकी वृद्धि थी, प्रजननके द्वारा ही अपना और दूसरोंका अस्तित्व था, स्वभावतः 'प्रजनन शक्ति' Sex सबसे प्रधान और महत्वपूर्ण विषय था।

मानव मजहब या धर्म भी पहले Sex worship प्रजनन शक्ति-

की पूजा या किसी-न-किसी रूपमें लिंगपूजासे ही आरंभ होता है। सच तो यह है कि सृष्टिकर्ताको पिताके नामसे जिस घड़ीसे हमने पुकारा उसी घड़ीसे प्रजननशक्तिने धर्म और मजहबका बाना पहनना शुरू किया।

भारतमें ही नहीं, रोम, यूनान, मिश्र, बेविलन और सारी दुनियामें जहाँ भी मनुष्यका निवास था Sex worship शक्तिपूजा और Phallic Religions लिङ्ग पूजाकी प्रधानता थी किन्तु जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं विकासकी कोशिश यही रही है कि Sex प्रजनन या काम अच्छेसे अच्छे, सुन्दरसे सुन्दर शब्दोंके आच्छादनसे ढका रहे।

Love 'प्रेम'के Physical aspect इन्द्रियगत या पार्थिव पहलू या शारीर-अंशकी महत्ताको छिपानेके लिए उसके आध्यात्मिक Spiritual अङ्ग और उसकी पवित्रताके गीत गाए जाने लगे Platonic love या वासना-विहीन प्रेमकी सृष्टि की गई, ठीक वैसे ही जैसे Sex worship शक्तिपूजा और Phallic religions लिङ्ग-पूजाको छिपाने, मिटाने या दबानेके लिए, प्रकृति, पुरुष और माया तथा अध्यात्म और वेदान्तकी सीढ़ियोंपर मजहब चढ़ाया गया। संसारके किसी भी देशकी Mythology गाथाओंको पढ़िये, 'काम' तथा Sex की ही विजय आपको अधिकतर पढ़नेको मिलेगी।

आदि कालमें स्त्री-पुरुष नग्न रहते थे। अधूरे ज्ञान या अज्ञानने बतलाया यह जेहालत या जंगलीपन है। दूसरोंको आकृष्ट करनेके लिए शरीर ढके जाने लगे पेड़ोंकी छालों, पत्तियों, फूलों, घोंघों और मूँगोंसे। मनुष्य अपनी समझमें

विकासकी सीढ़ियोंपर और आगे बढ़ा। छालों और पत्तियाँ-की जगह सुन्दर रंगीले चमकदार कपड़ोंने ली, घोंघों और मूँगोंके स्थानपर होरा, मोती, जवाहरात, सोने और चाँदीने कब्जा किया, ठीक उसी तरहसे जैसे Sex worship शक्तिपूजा और Phallic religions लिङ्ग पूजाका स्थान आज हिन्दू-धर्म, ईसाई धर्म तथा इस्लाम लिए बैठे हैं।

Sex काम या प्रजननने भी इसी तरहसे उपर्युक्त विकासकी सीढ़ियोंपर चढ़ते हुए कवियों और लेखकोंकी कृपासे Love या प्रेमका नाम प्राप्त कर लिया है और Love में भी Spiritual side पवित्रता पैदा कर दी गई है। वास्तवमें यह सब कुछ है नहीं, और Love या प्रेम शुद्ध प्रजनन या कामकी वासना-मात्र है।

मुसीबत यह हुई है कि कवियों और लेखकोंने जो नहीं भी किया उसको दुनियाके लोगोंने कर डाला। Love, Affection प्रेम तथा स्नेह दो प्रकारकी भावनाएँ हैं किन्तु दुनियावाले बिना समझे बूझे शब्दोंका अनुचित प्रयोग करने लगे। पति-पत्नीमें प्रेम Love हो सकता है। माता पुत्र या बहन भाईमें स्नेह होगा। किन्तु कहे कौन, दुनियावालोंने सब धान बाइस पसेरी कर दिया और 'स्नेह' affection की जगहपर भी Love प्रेम शब्दका व्यवहार होने लगा। नतीजा यह हुआ कि मित्रोंमें स्नेह नहीं प्रेम होने लगा। इस गड़बड़के कारण बहुत-सी स्नेहकी विशेषताएँ नोचकर 'लव' में जड़ दी गईं और नतीजा वही हुआ जो आज दिन सर्वत्र दिखाई देता है। Love अपनी विशेषताओंको रखता हुआ स्नेह-के सानिध्यसे परिष्कृत और परिमार्जित रूप धारण कर गया।

इसलिए नहीं कि उसमें कोई गंदगी पहले थी वरन् इसलिए कि दुनियावाले उसकी चर्चा करते समय सभ्यताके नामपर नजर नीची न करें।

‘लव’ की अगर ऊपरकी सब व्याख्या ठीक है तो ‘लव-लेटर्स’ में क्या होना चाहिए यह कहनेकी जरूरत नहीं। बेटीका माँको, सखाका सखीको, भावजका देवरको तथा एक मित्रका दूसरे मित्रको पत्र लव लेटर नहीं हो सकता। ‘लव लेटर्स’ तो प्रेमियों और प्रेमिकाओंके ही पत्र हो सकते हैं।

इस सम्बन्धमें हमको यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि प्रेमीने अपनी प्रेमिकाको या प्रेमिकाने अपने प्रेमीको पत्र लिखा है केवल इसीलिए पत्र प्रेम-पत्र या Love letter नहीं हो जायगा। प्रेमपत्र वही होगा जो प्रेमपत्र है, दुनियाभरके पत्र प्रेम-पत्र नहीं हो सकते, न प्रेमका जिक्र या नाम आ जानेसे ही कोई पत्र प्रेम-पत्र हो सकता है।

पत्र लेखन भी एक सुन्दर कला है। हम सब ही बोलते हैं, जबान सबके पास है, शब्दोंका भंडार भी सबके पास थोड़ा बहुत होता ही है किन्तु सब वाक्-पटु नहीं होते। विद्वान और पंडित होनेसे ही कोई अच्छी बातें करनेवाला Conversationalist नहीं हो जाता। ठीक इसी तरहसे कवि होने, लेखक होने या भाषा-पर अधिकार रखनेसे ही कोई सुन्दर पत्रोंका लिखनेवाला नहीं हो सकता। पत्र लेखन एक कला है, और जिस तरहसे अन्य कलाओंपर संसारमें अधिकार प्राप्त किया जाता है उसी तरहसे इस कलापर भी अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

पत्र-लेखन-कला क्या है, कैसी है, उसका रूप या गुण क्या है,

इसकी चर्चा छोटी-सी भूमिकामें सम्भव नहीं। यह भी सम्भव है कि जिसे मैं ठीक समझता हूँ उसे दूसरे ठीक न मानें। 'भिन्न रुचिर्हि लोकः' और 'मुंडे मुंडे मतिभिन्नः' की बात है। किन्तु पत्र लेखनकलाके सम्बन्धमें मेरे कुछ विचार हैं। विशेषकर प्रेम-पत्रोंके सम्बन्धमें। मेरी रायमें पहली बात पत्रके सम्बन्धमें यह होनी चाहिए कि वह स्वाभाविक तथा सरल हो, हृदयकी भाषामें लिखा हो, पुस्तकों और कोषोंकी नहीं, साथ ही इस तरहसे लिखा गया हो मानो जिसको पत्र लिखा गया है वह सामने बैठा है और लिखनेवाला सामने बैठा बातें कर रहा है। एक अच्छा क्रम यह भी है कि पत्र इस तरहसे लिखा गया हो मानो लेखक खुद ही अपनेसे बैठा बातें करता हो। हृदयके 'रेसकोर्स' में विचारोंकी घुड़दौड़ होती रहती है, कभी कभी आदमी अपनेसे ही बातें भी करने लगता है। प्रेम-पत्र लिखनेका यह क्रम अत्यन्त सुन्दर है। मिलाप और वियोग, दुख सुख, प्रेमकी उत्ताल तरंगों, उसकी आशा और निराशा उसकी टीस और पीड़ाको प्रकट करने और प्रेमके उलाहनोंको बिना फरियादी बने हुए-देनेका यह अच्छा क्रम है।

प्रेमकी अनन्त दशाके अनन्त भावोंको अपने संसार और जीवनके उलट-पलट, बनाव और बिगाड़को, अगर हम पत्रमें उसी तरह व्यक्त न कर सकें जिस तरह हम खुद उसको अनुभव करते हैं तो कागजको काला करना बेकार है। पत्र ऐसा तो होना ही चाहिए कि पढ़नेवाला लिखनेवालेके हृदयसागरकी तरंगोंमें उसी तरह तैरता और डूबता रहे जिस तरहसे लिखनेवाला खुद उतराता और डूबता रहता है। पत्रकी विशेषता यह भी है कि

लेखकके हृदयके वसन्त और पतझड़के जीवनमय और कभी कभी कुलसा देनेवाले वायुके झोंकोंसे पढ़नेवाले या वालीका हृदय अपनी रक्षा न कर सके।

गहरा और प्रगाढ़ प्रेम, शोक, विस्मय और आनन्दकी अंतिम सीमा कभी-कभी प्रेमीकी आत्मामें नहीं मालूम कैसी क्रान्ति, कैसी घबराहट और कहाँकी बेचैनी पैदा कर देता है। ये मूक-भावनाएँ कभी-कभी आप ही सस्वर हो उठती हैं। अगर प्रेमी इनके स्वर, इनकी आवाज़को अपने प्रेमपात्रके हृदयतक न पहुँचा सके, तो दोनों हृदय एक ही तरंगसे कैसे तरंगित हो सकते हैं, दोनों हृदयोंके तार भिन्न होते हुए भी, मिलकर जीवनका संगीत कैसे पैदा कर सकते हैं ?

‘शब्द’ ही ब्रह्म है ऐसा लोग कहते हैं। यह कहाँतक ठीक है यह तो ब्रह्मके जाननेवाले ही जानें। मैं इतना जानता हूँ कि शब्दोंके द्वारा नित्य अनित्यमेंसे भासता हुआ नजर आ सकता है, साथ ही शब्दोंके ही सहारे वाणीमें मौनकी गहराई और स्थिरता और मौनमें वाणीकी चपलता और लालित्य उछलते कूदते और रंगरलियाँ करते नजर आ सकते हैं।

शर्त यही है कि शब्द आत्माके चीत्कार हों, हृदयके सच्चे उद्गार हों, अपने सच्चे और असली रूपमें हों और कृत्रिमतासे लाखों कोस दूर हों। कृत्रिमताके दोषसे परे होनेकी कसौटी यह है कि अर्थ और भावको प्रकट करनेके लिए शब्द न दूढ़े जायँ, न गढ़े जायँ, शब्द अनायास, आपसे आप आते रहें और अर्थ उनके आगे आगे आप ही भागता दिखाई दे।

‘कृत्रिमता’ की बातके साथ मैं यह कह भी देना चाहता हूँ कि

प्रेमी और प्रेमिका आपसमें नमस्कार, या सप्रेम बन्दे नहीं किया करते। उनके अभिवादन मूक-भावनासे ही होते रहते हैं। प्रेमके पत्रोंमें इनको स्थान देनेकी आवश्यकता नहीं। पत्र तो वैसा ही होना चाहिए जैसा एक दूसरेके साथ नित्यके जीवनमें वे आचरण करते हों।

मेरी रानी, प्राणेश्वरी, स्नेहमयी, श्रीमतीजी, प्यारे, प्राणेश्वर, देवता “मेरे हृदयकी रानी, मेरे जीवनकी सहचरी” आदि संबोधनोंके मैं पक्षमें नहीं। लोग इस तरह लिखते होंगे और शायद लिखते रहेंगे भी किन्तु मेरा भी प्रेमसे कुछ-कुछ परिचय है

“निगाहे नाज़ मुझ पर भी पड़ी थी

इसी से एक ज़माना बदगुमाँ है”

पत्र भी सहस्रों मैंने लिखे हैं किन्तु मुझे इस प्रकारके सम्बोधनोंकी आवश्यकता या उपयोगिता कभी प्रतीत नहीं हुई।

सबसे अच्छा सम्बोधन वह है, जिससे हम उसे रोज पुकारते हों, जिसकी सहायतासे दुनियाके सामने हम उससे बातें करते हों, जो हर समय जबानपर रहता हो और जो हमारी जबानपर और उसके कानोंमें रमा हुआ हो। हर वक्त कुछ और, पत्रोंके लिए और कुछ यह मेरी समझमें ठीक नहीं।

ऊपर और नीचे दोनोंके लिए उपर्युक्त क्रम ही मेरी समझमें ठीक है। “तुम्हारा कातर प्रेमी,” ‘तुम्हारा अभागा कृष्ण’, ‘तुम्हारा दीवाना कृष्ण’, ‘तुम्हारा ही कृष्ण’, ‘तुम्हारा पति’,... तुम्हारी दासी, सन्तप्त-हृदय-मृणाल, सौभाग्यवती मृणाल,

‘सर्वस्व तुम्हारा, बन्दी एक, चरणस्नेही चुन्नी, वही खादिमा-सुलोचना’ आदि क्या है ? सब ही जगहोंमें तुम्हारा या तुम्हारी और नाम काफी है । नामके साथ किसी भी विशेषणकी आवश्यकता नहीं, अगर पत्रकी पंक्तियोंके बाद भी अपनी स्थितिको प्रकट करनेके लिए नामके साथ किसी विशेषणकी आवश्यकता प्रतीत होती है तो यह पत्रकी कमी है और वह कमी नामके साथ पुछल्ला लगानेसे पूरी नहीं की जा सकती ।

अगर विशेषण ही देना मंजूर हो तो केवल विशेषण ही काफी है । अभागा, अधम, पागल, दासी तथा इन शब्दोंके साथ साथ ‘तुम्हारा’ तुम्हारी और नामकी कोई जरूरत नहीं ।

तुम्हारा ही... , तुम्हारी ही...की बात तो मेरी समझमें कुछ भोड़ी-सी भी है । ‘तुम्हारा ही’ ? क्या इस बातके आश्वासनके लिए कि यह न समझो कि मैं औरोंका भी हूँ, मैं कसम खाता हूँ, मैं तुम्हारा ही हूँ और किसीका नहीं । ‘तुम्हारी ही’ का भी इसी तरहसे व्याख्या कर देखिए, व्याख्यामें क्या कोई रस पैदा होता है ? ‘तुम्हारा पति’ सोचिये तो कि ‘पति’ न लिखा जाय तो क्या लेखक ‘पति’ नहीं रहेगा । गरीबिनीको सोते जागते इसकी याद दिलाते रहना कि तुम्हारा पति हूँ, क्या अर्थ रखता है ?

सचाई तथा प्रेम दिखावे, आश्वासन या शपथ खानेका विरोधी है । मैं तो तुम्हारा, तुम्हारी या इस तरहके किन्हीं भी शब्दों या विशेषणोंका विरोधी हूँ । मैं तो केवल हस्ताक्षरके ही पक्षमें हूँ । जो एक दूसरेके निकट हैं, एक दूसरेके लिए हैं, एक दूसरेसे प्रेम करते हैं उनके लिए न सम्बोधनके लिए और न अन्तके लिए ही किसीभी प्रकारके विशेषणकी जरूरत है और

अगर है तो मैंने इस जरूरतको कभी अनुभव नहीं किया ।

जहाँ स्नेह हो वहाँ भी इनकी जरूरत नहीं । पूज्य, आदरणीय या इस तरहके विशेषणोंमें बनावट, दिखावे और कृत्रिमताकी बू आती है । मैंने तो पूज्य मालवीयजीको सदा

बाबू,

आपका

कृष्ण

ही लिखा । बाबूजी या पूज्य बाबूजी भी कभी नहीं लिखा । आज-कल पूज्य पिताजी, पूज्य माताजी, पूज्य गुरुजी लिखनेकी प्रथा चल पड़ी है । यह कृत्रिमता है और रसहीन है । कृत्रिमता और दिखावेकी बातोंके लिए दुनिया पड़ी हुई है, रोज दूसरोंके पत्रोंमें जो चाहे लिखा करिए किन्तु अपनोंके लिए तो अपना-पन ही काफी है ।

मेरा पुत्र यदि मुझे 'पूज्य या श्रद्धेय बाबूजी', 'आपका आज्ञाकारी आदि लिखे' तो मेरे मनमें बात आयेगी कि यह मेरा मखौल कर रहा है, या इसके हृदयमें मेरे लिए स्नेहके, आदरके या श्रद्धाके भाव हैं ही नहीं और इसीलिए कमीकी पूर्ति वह शब्दों-द्वारा करना जरूरी समझता है ।

प्रेमियोंके बीच तो नाम ही चलना चाहिए, जो जिसे जिस नामसे पुकारता हो । अक्सर प्रेमियोंमें दो नाम भी चला करते हैं, एक जो दुनियावालोंके लिए होता है, वह नाम जिससे समाज-में बैठकर, दुनियाकी निगाहोंमें एक दूसरेको सम्बोधित करते हैं, एक उनका नाम होता है, जिसे वे आपस या अकेलेमें व्यवहार करते हैं । पत्रमें नाम वह होना चाहिए जो दुनिया के लिए नहीं,

आपसमें चलता हो। समाजमें सम्भव है 'सरलाजी, शान्ति देवी जी, या सुलोचना देवीजी कहना जरूरी हो, किन्तु अकेलेमें अगर 'सरले' 'शान्ति' या 'सुलोचना' का मैं व्यवहार करता हूँ तो मैं पत्रमें यही लिखूंगा और नीचे लिखूंगा केवल कृ०, न आपका, न तुम्हारा और न अधम, अभागा या दीवाना। अगर, समझता है कि दीवाना है तो वह दीवाना नहीं और खी इस तर्कको खूब समझती है। स्त्रियाँ, प्रेम तथा स्नेह सब ही प्रकृतिके अत्यन्त निकट हैं, ये 'स्वाभाविकता' को पसन्द करते हैं, और बनावट और दिखावेसे दूर भागते हैं।

प्रेमियोंके पत्रमें सदा प्रेमकी ही बातें नहीं होतीं, सदा वे भावुकतापूर्ण ही नहीं होते। प्रेममें Misunderstanding होती है, प्रेममें झगड़ा होता है, प्रेममें रुठना होता है। प्रेममें लड़ाई और कभी कभी भीषण लड़ाई भी होती है। प्रेम माँगता है पूर्णरूपसे आत्म-समर्पण, और प्रेमिका चाहती है कि आत्म-समर्पण सर्वदा, सर्वथा दृष्टिगोचर हो। कभी कभी व्यर्थ ही सन्देह, अविश्वास या गलत भावनासे वह प्रेरित होती है।

कभी अभियोगका जवाब देना होता है, कभी सफाई देनी पड़ती है, कभी Misunderstanding को दूर करनेका प्रयत्न करना पड़ता है। ऐसे पत्रोंमें तथ्य तथा वास्तविकता ही काम देती है, भावुकताकी बातोंका असर ऐसी स्थितियोंमें कम होता है क्योंकि प्रेमिका इनके प्रयोगोंसे बचनेके लिए सचेत रहती है मगर तथ्य बातों और कोरी दलीलोंमें भी सर्वाङ्गपूर्ण प्रेम, शब्दोंमें साकार नहीं निराकार रूपमें, छिपा होना चाहिए। इस प्रकारके पत्रोंका जिनमें भावुकताकी झलक भी न हो साथ ही जो प्रेमपूर्ण हों,

लिखना जरा कठिन है किंतु इस प्रकारकी सारी कठिनाई अगर लेखक सच्चा प्रेमी है और उसका प्रेम सच्चा है तो आपसे आप दूर हो जाती है, प्रेमी हृदय अपनी भाषा आप ही लिखा देता है।

ऐसी भी स्थिति हो सकती है कि पत्रका पहुँचना ही मुश्किल हो या प्रियतम या प्रियतमा इतनी नाराज हो गई हो कि पत्रको पढ़े नहीं, बिना पढ़े लौटा दे, फाड़कर फेंक दे, साथ ही भेंट होने पर, कभी बातें करनेका मौका ही न दे।

स्त्रियाँ प्रेमके मामलेमें जहाँ देती सर्वस्व हैं, वही सर्वस्व बदले में भी चाहती हैं। वे (अविवेकी) unreasonsble भी इन मामलोंमें बहुत होती हैं। बिना किसी भी कारणके या अकारण, ज़बर्दस्ती व्यर्थके सन्देहपर या अपनी नासमझीसे कभी कभी वे मुँह फुला लेती हैं और उस समयमें तो कुछ भी समझाओ उनकी समझमें नहीं आता क्योंकि स्त्रियोंमें (हठ तथा डाह Jealousy) आदिका मादा कम नहीं होता। लड़ाई इस बातपर भी हो जाती है कि तुम फलोंसे बोले क्यों ? बोले ही थे तो हँसे क्यों ?

पुरुष सामाजिक जीव है, समाजमें रहता है, लोगोंसे मिलेगा जुलेगा ही। कहीं किसीकी पार्टीमें आप किसीसे हँसते बोलते देख लिए गए, बस जवाब ही नहीं तलब है, बल्कि यह भी कसम खा ली गई है, कि मर जाऊँगी मगर इससे अब नहीं बोलूँगी।

कहिए, क्या करियेगा इस दशामें, विशेषकर जब आप सर्वथा निर्दोष हैं और वास्तवमें आप अपनी प्रेमिकासे प्रेम करते हैं और आपको सफाई देनेका मौका भी नहीं दिया जाता। ज़ोरोंकी कहा सुनी हो चुको है और पत्र भी लिखिए तो वापस आ जाने-

का डर या विश्वास है ।

आप क्या करेंगे यह आप जानें, मगर मैंने ऐसी स्थितियोंमें पत्र न लिखकर, क्योंकि उसके पढ़े जानेकी सम्भावना ही नहीं हो सकती थी “अभ्युदय” के अग्रलेखोंमें वही सारी बातें, उसी तरहसे लिख दीं जिस तरहसे पत्रमें लिखता । सिवा एक मित्रके जिनको बातें मालूम हैं या जिनसे मैंने ही कह दिया है आज-तक ‘अभ्युदय’ का एक भी पाठक यह न कह सका कि जो मैंने लिखा था वह किसीके लिए पत्र था और उसी सप्ताहकी महत्वपूर्ण राजनीतिक समस्यापर लेख नहीं । अभ्युदयकी पुरानी फाईलोंमें कमसे कम चार अग्रलेख इसी तरहके हैं ।

यह प्रशंसा कमानेके लिए मैंने नहीं लिखा है । लिखा यह इसलिए है कि पत्र इस प्रकार भी लिखे जा सकते हैं, जिनमें अपना ही सब कुछ होनेपर भी अपनापन न हो दुनियाँ उनको पढ़ ले तब भी उसे तनिक भी सन्देह न हो । वह यही न समझ पाये कि किसीके प्रेमसे इसका सम्बन्ध है या यह किसीके लिए विशेष रूपसे प्रेम-पत्र भी है । इस प्रकारके पत्रोंके लिए जरूरी यह है कि अपने ऊपर लगाए गए अभियोगोंका इनमें पूरा जवाब हो, अपनी सफाई पूरी हो, साथ ही दूसरेके अभियोगोंका तर्कपूर्ण खंडन हो और किसी विषयपर वादविवादकी तरहपर लिखा गया हो या एक विषयका खंडन-मंडन हो । इस तरहके पत्र यूँ भी अच्छे होते हैं क्योंकि अगर असावधानीसे किसीके हाथ पड़ भी जायँ तो किसी तरहकी हानि नहीं हो सकती ।

यहाँपर यह भी कह देना चाहता हूँ कि प्रेम-पत्रोंको



पाठक वृन्द,

‘लव-लेटर्स’ नामकी पुस्तक निकालनेका विचार मेरा बहुत दिनोंसे था। ईश्वरकी दयासे इतने दिनोंके बाद मेरी वह अभिलाषा पूरी हुई है। इसका प्रधान श्रेय हिन्दी जगतके परिचित पं० नन्दकिशोरजी तिवारीद्वारा सम्पादित ‘चाँद’ नामकी मासिक पत्रिकाके पत्रांकको है। चाँदका पत्रांक देखनेके बाद ही मेरा उत्साह बढ़ा और मैं ‘लव-लेटर्स’ की सामग्री जुटानेमें लग गया। उक्त विशेषांकसे मुझे पर्याप्त सामग्री मिली है। अतः मैं उसके लेखक, सम्पादक और प्रकाशकका परम कृतज्ञ हूँ।

इसके लिए मुझे बहुतसे लेखकोंके पास सैकड़ों बार जाना पड़ा और अनुनय विनय करके पत्र लेने पड़े हैं। इस प्रकार कई वर्षके परिश्रमके बाद हिन्दी संसारके सम्मानित वृद्ध एवं युवक लेखकोंके भिन्न-भिन्न शैलीके ऐसे सुन्दर-सुन्दर पत्र प्राप्त हो सके हैं, जिनसे प्रेमी-प्रेमिकाओं एवं पति-पत्नीको अपूर्व आनन्द मिल सकेगा।

पुस्तकमें लिखे हुए अधिकांश पत्र तो असली हैं, किन्तु कुछ पत्र काल्पनिक हैं। इस पुस्तकके प्रकाशित करनेमें पूज्य गुरुदेव पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्दे, बाबू अन्नपूर्णानन्दजी, पं० देव-

नारायणजी द्विवेदी, पं० बिहारीलालजी गुजराती तथा पं० धन-पतरामजी नागरने जो कुछ सहायता करनेकी कृपा की है, उसके लिए मैं आपलोगोंके प्रति किन शब्दोंमें अपने हृदयका भाव व्यक्त करूँ, समझमें नहीं आता । क्योंकि केवल कृतज्ञता प्रकाश करनेसे हृदयको सन्तोष नहीं हो सकता । मेरा यही भाव उन समस्त आदरणीय लेखकोंके प्रति है, जिनके पत्र इसे पुस्तकका रूप दे सकें हैं ।

अन्तमें मैं अत्यन्त संकोच भावसे पं० कृष्णकान्त मालवीय महाराजसे क्षमा माँगता हूँ । मैंने आपके बुढ़ापे और कार्यका खयाल न करके इस पुस्तककी भूमिका लिखनेके लिए पंडितजीसे अत्यधिक हठ किया, किन्तु कोमल प्रकृति पंडितजीने उस हठपर मुझे दंड न देकर भूमिकाद्वारा पुरस्कृत किया । इस उदारताके लिए मैं तो श्रीमान् पंडितजीका चिरऋणी हूँ ही—आपलोगोंको भी उपकृत होना चाहिए ।

मुझे विश्वास है कि पाठकगण इस पुस्तकको अपनाकर मेरा परिश्रम सफल करेंगे । बहुतसे विद्वानोंका प्रेमपत्र स्थानाभावके कारण नहीं दिया जा सका है; इसके लिए मुझे विशेष दुःख है । एक बात और । इस पुस्तकमें पत्रोंको क्रमसे रखनेका खयाल नहीं किया गया है । जैसे जैसे पत्र मिलते गये, छपते गये । विद्वज्जनोंको इस बातका खयाल नहीं करना चाहिये कि कौनसा पत्र पहले दिया गया है और कौनसा बादमें ।

शिवरात्रि

सं० १९९५

}

सूर्यबली सिंह



लव्-लेटर्स

कर कंपै, लेखनि डिगै, अंग-अंग अकुलाइ ।
सुधि आएँ छाती जरै, पाती लिखी न जाइ ॥

X

X

X

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात ।
कहिहैं सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात ॥

X

X

X

कर लै, चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेटि ।
लहि पाती पियकी लखति, बाँचति, धरति समेटि ॥

—बिहारी ।



पत्र-कला



[ले० पण्डित देवनारायण द्विवेदी]

काशी

कृष्णाष्टमी, १९९४ वि०

समय ७ बजे शाम

प्राणाधिके,

तुम्हारा पत्र मिला । तुमने जितने प्रश्न किये हैं, सबका उत्तर मैं स्पष्ट और थोड़ेमें देनेका प्रयत्न करूँगा । आशा है कि तुम उससे उचित लाभ उठाओगी ।

१—पत्र हमेशा साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये जिसमें वह ठीक-ठीक पढ़ा जा सके । मुँडे अक्षरोंमें लिखे जानेवाले पत्रोंमें तो 'चूना' लिखा रहनेपर 'चीनी', 'चना' तथा 'साहुजी अजमेर गये' को 'साहुजी आज मर गये' पढ़ा जाना सम्भव ही रहता है—देवनागरीके पत्रोंमें भी सुपाठ्य अक्षर न लिखा रहनेपर ऐसी भ्रमात्मक बात पढ़ ली जाती है, जो पत्र भेजनेवालेको अभीष्ट नहीं रहती । घसीट पत्रोंमें 'स' का 'रु', 'द' का 'ह' या 'ह' का 'द', 'क' का 'फ' या 'फ' का 'क' पढ़ लिया जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि शब्द हो औरका और बन जाता

है। इसमें सन्देह नहीं कि पढ़े लिखे लोग अटकलसे घसीट अक्षरोंको भी ठीक ही ठीक पढ़ते हैं; किन्तु सोचनेकी बात तो यह है कि जिस लिपिमें भ्रमकी जरा भी गुंजायश नहीं है, उसे ऐसा क्यों लिखा जाय कि उसके पढ़नेमें अटकल लगानेकी जरूरत पड़े? कहनेका आशय यह नहीं कि पत्र लिखनेमें शीघ्रतासे कलम चलायी ही न जाय; आदमी जितनी ही अधिक तेजीसे लिख सके, उतना ही अच्छा; किन्तु तेज लिखनेमें किसी अक्षरकी सान इतनी अधिक न बिगाड़ देनी चाहिये कि वह औरका और ही पढ़ा जाय।

२—जहाँतक सम्भव हो, अपने भावोंको थोड़े शब्दोंमें समाप्त करना चाहिये। व्यर्थकी बातें लिखकर या थोड़ी-सी बातको विस्तारमें लिखकर पत्रको लम्बा करना ठीक नहीं। इससे एक तो पढ़नेवालेका जी ऊब जाता है, दूसरे पत्र लिखनेवालेकी अयोग्यता जाहिर होती है।

३—पत्रमें ऐसी अश्लील बात कभी न लिखनी चाहिए जिसे दूसरोंके जाननेपर किसी प्रकारकी हानि हो अथवा लज्जा मालूम हो। बहुतसे लोग भेदभरी बातोंको अपनी नासमझीके कारण पत्रमें लिख देते हैं; किन्तु कभी-कभी यदि वह पत्र किसी दूसरेके हाथमें पड़ जाता है तो उसका भयंकर परिणाम उन्हें भोगना पड़ता है, और उस दशामें वे अपनी करनीपर पश्चात्ताप करते हैं। इसलिए बुद्धिमानका काम यह है कि वह भूलकर भी ऐसे खतरेका काम करके अपने लिए संकटका बीज न बोले। मर्यादा में रहकर अपने काम करके अपने लिए संकटका बीज न बोले। मर्यादा में रहकर अपने काम करके अपने लिए संकटका बीज न बोले।

४—पत्र मुहावरेदार भाषामें न लिखें। दूसरे लिए चिन्तित रहता लच्छेदार और सामासिक शब्दोंकी आर्त पुकार सुनकर व्यथित

करते हैं। क्योंकि सभ्य समाजमें ऐसे पत्र बहुधा उच्च दृष्टिसे नहीं देखे जाते। पंडित वे हैं जो अपने गहन भावोंको सरल भाषामें व्यक्त करें।

५—समूचे जगतमें लिखे गये या लिखे जानेवाले पत्र दो श्रेणीमें रखे जा सकते हैं। एक श्रेणी तो उन पत्रोंकी है, जो केवल-व्यक्ति विशेषके कामका होता है और जिसका स्थायित्व अल्पकालतक रहता है। ऐसे पत्र अन्य लोगोंके किसी कामके नहीं होते। उदाहरणके लिए एक पत्र उद्धृत किये देता हूँ:—

“प्यारी सरला,

पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। बड़े भैया अभीतक स्वस्थ होकर घर नहीं आये, लखनऊमें ही इलाज चल रहा है। इस गाँवमें प्लेगकी कुछ शिकायत है। इससे सबलोग घबड़ा गये हैं। भैयाका बड़ा लड़का तुम्हे बहुत याद करता है। शाम होते ही ‘बुआ-बुआ’ कहकर रोने लगता है और जबतक सो नहीं जाता, तबतक चुप नहीं होता। यदि तू जल्द पत्र भेजेगी तो मुझे मिल जायगा, नहीं तो शायद मैं आठ दिनमें चली जाऊँगी।

१३ जनवरी १९३७

तेरी बड़ी बहन—

रामपुर

मालती।”

इस पत्रमें तुम देखोगी कि जिसके लिए यह पत्र लिखा नहीं रहती। घसोट दूसरे किसी भी आदमीके कामकी एक भी का ‘द’, ‘क’ का ‘फ’ या प्यारी श्रेणीका पत्र हर परिचित और परिणाम यह होता है कि शब्द हाफ होता है और वह चिर-

कालतक अपना महत्त्व कायम रखता है। जो पत्र आज मैं तुम्हें लिख रहा हूँ, उसी श्रेणीका है।

६—पत्र लिखनेकी दो रीतियाँ हैं; एक प्राचीन और दूसरी नवीन। यद्यपि अब तो पुरानी प्रणालीका लोप-सा हो चला है, तथापि उसका ज्ञान रखना आवश्यक है। इसमें बड़ोंको 'सिद्धि श्री' और छोटोंको 'स्वतिश्री' लिखा जाता है। पुरुषको 'सर्वोत्तमोपमार्ह' और स्त्रीको 'सर्वोत्तमोपमार्हा' लिखनेकी रीति है। जैसे,

पुत्रकी ओरसे माताको

सिद्धि श्री सर्वोत्तमोपमार्हा पूजनीया माताजीको श्यामलाल-का साष्टांग प्रणाम। अत्रकुशलं तत्रास्तु। कई दिनोंसे आपका पत्र न मिलनेके कारण मेरा जी बेतरह उचटा हुआ है। आपके वात्सल्य प्रेमकी याद आते ही हृदय व्याकुल हो जाता है। आपसे प्रार्थना है कि शीघ्र पत्र भेजकर मेरे उद्विग्न हृदयको शान्त करें। किमधिकम्। आश्विन शुक्ल ४ सं० १९९३ विक्रमाब्द।

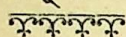
किन्तु नयी शैलीमें सिद्धिश्री या स्वस्तिश्री कुछ भी नहीं लिखा जाता। जो पत्र तुम्हें लिख रहा हूँ, यह नयी शैलीका ही पत्र है। पुत्र अपनी माँको नयी प्रणालीसे इस प्रकार लिखेगा—

ज्ञानपुर

ता० १९—७—३७

“माँ,

मैं जानता हूँ कि आजकल तुम घोर कष्टमें हो। मेरी समझमें नहीं आता कि क्या करूँ। एक ओर तुम्हारे लिए चिन्तित रहता हूँ और दूसरी ओर दीन देशकी आर्त्त पुकार सुनकर व्यथित



होता रहता हूँ। प्रतिदिन सोचता हूँ कि अब देशके कामोंमें कुछ भी भाग न लेकर कालेजसे छुट्टी मिलते ही ट्यूशनपर जाया करूँगा और उससे जो आय होगी, अपना खर्च बाद देकर पहले-की भाँति तुम्हारे पास भेज दिया करूँगा; किन्तु कालेजसे निकलकर घर पहुँचते-न-पहुँचते ही साथियोंका दल आ धमकता है और जबर्दस्ती मुझे घसीट ले जाता है। मैं कहता हूँ कि 'भाई, पहले अपने घर दिया जलाकर पीछे मसजिदमें जलाया जाता है। मेरी स्नेहमयी माँ घरमें भूखी बैठी होगी; मुझे छोड़ दो, मैं देशके कामोंमें भाग नहीं ले सकता।' मेरी यह बात सुनकर सब साथी कहने लगते हैं कि एक माँकी चिन्ता छोड़कर देशकी लाखों माताओं और बहनोंकी दयनीय दशापर ध्यान देना जरूरी है।

इस प्रकार इच्छा न रहनेपर भी मुझे देहातोंमें जाकर सह-पाठियोंके साथ ग्राम्य-संगठनका काम करना पड़ता है। यदि यही दशा रही तो पन्द्रह दिनके बाद मुझे अपने ही खर्चके लाले पड़ जायँगे। मित्रोंकी यह उद्धतता मुझे बेतरह खल रही है; किन्तु समझमें नहीं आता कि इनसे किस प्रकार पिंड छुड़ाऊँ। रात-दिन इसी चिन्तामें घुला जा रहा हूँ। यदि मैं कुछ भी रुपये इकट्ठा कर सका तो सबसे पहले तुम्हें भेजूँगा। जानता हूँ कि तुम उत्तर देनेके लिए लिफाफा न खरीद सकोगी, इसीसे इस पत्रके साथ ही लिफाफा भी भेज रहा हूँ। आशा है कि तुम मुझे क्षमा प्रदान करोगी।

तुम्हारा पुत्र—

दिवाकर।”

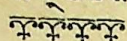
अस्तु । आशा है कि तुम मेरे इस पत्रसे उचित लाभ उठाओगी । भविष्यमें यदि कोई बात पूछनी हो तो इसी प्रकार निःसंकोच होकर पूछ लिया करना । आदर्श पत्र वे ही कहे जाते हैं, जो सबके लिए लाभप्रद हों ।

तुम्हारा—

वही

“प्रियतम,

कृपापत्र पढ़कर चित्तको शान्ति मिली । मैं आपका अमूल्य समय लेना नहीं चाहती ; किन्तु मनमें शंकाएँ उत्पन्न होनेपर मुझे तो सिर्फ आपहीकी शरण दिखायी पड़ती है । कुछ कार्य-वश मुझे डिस्ट्रिक्ट बोर्डके चेयरमैनके पास पत्र लिखना था, मेरी समझमें नहीं आया कि मैं उन्हें किस शब्दसे सम्बोधित करके पत्र लिखना शुरू करूँ । देशवासियोंपर अंग्रेजी भाषाकी ऐसी गहरी छाप लग गयी है कि मेरे घरमें एक भी आदमी मुझे उक्त बात न बता सका । इसीसे आपको कष्ट दे रही हूँ । कृपाकर एक ऐसी सूची लिख भेजें, जिससे मुझे किसीको भी पत्र लिखते समय ऐसी कठिनाईका सामना न करना पड़े । साथ ही यह भी जानना चाहती हूँ कि पत्रके अन्तमें ‘भवदीय’ के स्थानपर किसे क्या लिखना चाहिये । किन्तु यह सब तो आप लिखेंगे ही, क्या यह लिखनेकी कृपा न करेंगे कि अभी आप कबतक दर्शन देनेकी कृपा करेंगे ? हर बार पत्र आनेपर सोचती हूँ कि इसमें आनेका समय लिखा होगा ; किन्तु पत्र पढ़नेपर निराश हो जाती हूँ । यदि मुझे रुलानेमें ही आपको आनन्द आता हो तो कोई हर्ज



नहीं, न लिखें ; किन्तु क्या ऐसा करना उचित है ? सोचती हूँ कि इस सम्बन्धमें अब कुछ न लिखूंगी ? किन्तु कैसे सत्र करूँ ? आपको गये पूरे दो साल हो गये ।

भाद्रपद शुक्ल प्रतिपदा

सं० १९९४

९१ मालरोड़, लाहौर ।

चरण-सेविका—

रेखा ।

मेरी रानी,

तुम्हारे पत्रका उत्तर बहुत जल्दीमें लिख रहा हूँ ; क्योंकि मैं दो हफ्तेके लिए बाहर जा रहा हूँ । किसको क्या सम्बोधन करना चाहिये, इसे मैं नीचे लिख देता हूँ । किन्तु इतना ध्यान रखना कि अपनेसे बड़े और अपरिचितको 'माननीय महानुभाव' 'आदरणीय महोदय', 'महानुभाव', 'महोदय' 'श्रीमान्', आदि सम्बोधन लिखनेमें कोई हर्ज नहीं है । कोई अपरिचित अपनेसे बड़ा हो या छोटा, हमेशा उसे बड़ा समझकर आदरणीय श्रेष्ठ शब्दोंद्वारा सम्बोधन करना चाहिये । क्योंकि जो आदमी परिचित नहीं है, उसे कोई कैसे जान सकता है कि वह अपनेसे बड़ा है या छोटा ? इसलिए ऐसे लोगोंको हमेशा बड़ा समझकर ही पत्र लिखना उचित है । अपनेको सबसे छोटा समझना बड़ोंका काम है । इस बातका हमेशा ध्यान रहे कि पत्रमें सम्बोधन शब्दके आगे कामा (,) लगाना चाहिए न कि सम्बोधन चिह्न (!) ।

किसकी ओरसे किसको

पुत्र अथवा कन्याकी ओरसे
पिताको

शिष्य अथवा शिष्याकी
ओरसे गुरुको

दामाद या बहूकी ओरसे
सास.ससुरको

पिता, गुरु, सास . ससुर
अथवा माताकी ओरसे पुत्र,
शिष्य अथवा दामादको

क्या सम्बोधन लिखना चाहिए

पूज्य पिताजी, बाबूजी, श्रद्धेय
बाबूजी, आदरणीय पिताजी,
अथवा अपने पुकारनेका नाम ।

स्नेहास्पद गुरुदेव, गुरुजी,
पूज्यवर, श्रद्धेय गुरुजी, पूज्य गुरु-
देव, माननीय गुरुजी आदि ।

पुकारनेके नामके साथ 'श्रद्धेय'
विशेषण जोड़कर लिखे । जिस
नामसें पति अपने माँ-बापको
पुकारता हो उसी नामसे पत्नी-
को भी उन्हें पुकारना चाहिए ।
इसी प्रकार पत्नी अपने माँ-बाप-
को जो कहकर पुकारती हो, वही
कहकर पतिके लिए भी अपने
सासससुरको पुकारना उत्तम है ।

प्रियवर, प्रिय वत्स, अथवा
चिरंजीव, बेटा, प्रिय, आदि
शब्दोंके आगे पुत्र, शिष्य अथवा
दामाद जिसे पत्र लिखना हो
उसका नाम लिख दे ।

गुरुजनोंकी ओरसे जैसे—
माता. पिता, गुरुकी ओरसे
कन्याको

बेटी, प्यारी बेटी, सौभाग्य-
वती बेटी, या बेटीके आगे जिसे
पत्र लिखा जा रहा हो, उसका
नाम ।

पतिकी ओरसे पत्नीको

प्रिये, प्राणाधिके, प्राणेश्वरी,
हृदयेश्वरी, प्राणप्यारी, प्यारी,
प्राणबल्लभे, प्रियतमे, इत्यादि ।

पत्नीकी ओरसे पतिको

प्राणनाथ, प्राणप्यारे, जीवन-
धन, प्राणेश, प्राणेश्वर, हृदयेश्वर,
प्यारे, प्राणबल्लभ, प्रियतम, नाथ,
स्वामिन् , प्रभो, जीवन सर्वस्व,
मेरे नाथ, इत्यादि ।

भाभीकी ओरसे बड़ी ननँदको

पूज्या जीजी, सौभाग्यवती
जीजी इत्यादि—

भाभीकी ओरसे छोटी ननँदको

बीबीजी, प्यारी बीबीजी,
बीबी, इत्यादि ।

ननँदकी ओरसे भाभीको

प्यारी भाभी, सौभाग्यवती
भाभी, श्रीमती भाभी, भाभी,
इत्यादि ।

मित्रकी ओरसे मित्रको

प्रिय मित्र, मित्रवर, सुहृद्वर,
इत्यादि ।

सखीकी ओरसे सखीको

प्यारी सखी, मेरी सहेली, इत्यादि ।

किसी पुरुष या स्त्रीकी ओरसे
किसी पत्र-सम्पादककोऊपर इस तरह लिखना
चाहिए:—

सेवामें—

श्रीमान् सम्पादक “सरस्वती”
इसके बाद इन शब्दोंसे सम्बो-
धन करना उचित है:—महोदय, महानुभाव, महाशय,
इत्यादि ।किसी पुरुष या स्त्रीकी ओरसे सेवामें—
किसी पत्र-सम्पादिकाकोश्रीमती सम्पादिका “चाँद”
इसके बाद निम्नलिखित शब्दोंसे
सम्बोधन करना चाहिये:—
महाशया, महोदया, इत्यादि ।किसी पुरुष या स्त्रीकी ओरसे
किसी अपरिचित अथवा अल्प
परिचित पुरुषकोमहाशय, महोदय, प्रिय
महाशय या महोदय, महानुभाव,
प्रिय महानुभाव, श्रीमन्, प्रिय
बन्धु, इत्यादि ।

किसी पुरुष या स्त्रीकी ओरसे
किसी अपरिचिता अथवा
अल्प परिचिता स्त्रीको

श्रीमतीजी, देवि, महोदया,
देवीजी इत्यादि ।

बड़ी बहन या बड़े भाईकी
ओरसे छोटे भाई मोहनको

प्यारे मोहन, भाई मोहन,
प्रियवर इत्यादि ।

भाई या बहनकी ओरसे बड़े
भाईको

भैया, श्रद्धेय भैया, इत्यादि ।
भैया (नाम) — आभक्त

भाई या बहनकी ओरसे बहनको

बहन, प्यारी बहन, प्रिय
बहन, या केवल बहनका नाम ।

भाभीकी ओरसे देवरको

बबुआजी, चिरं० बबुआजी,
प्रियवर इत्यादि ।

देवरकी ओरसे भाभीको

भाभी, श्रीमती भाभीजी, प्रिय
भाभी, सौभाग्यवती भाभी, इत्यादि ।

सार्वजनिक संस्थाओंके सभा-
पति, मंत्री, लोकल बोर्डके
चेयरमैन; सेक्रेटरी, सरकारी

महानुभाव, महोदय, महा-
शय, श्रीमन् इत्यादि लिखना
चाहिये । किन्तु उसके ऊपर
नाम लिख देना उचित है ।

ओहदेदार अथवा इस प्रकारके अन्य किसी राजजनको जैसे बनारस डिस्ट्रिक्ट बोर्डके सेक्रेटरीको ऊपर इस प्रकार लिख देना चाहिये:—

सेवामें—

सेक्रेटरी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, बनारस ।

अंग्रेजीमें इन लोगोंके लिए केवल Sir (सर) लिखा जाता है ।

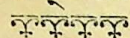
यह तो हुआ संक्षेपमें सम्बोधन । अब यह बतलाता हूँ कि पत्र समाप्त होनेपर अन्तमें किसको क्या लिखा जाता है । जैसे मोहन अपने पिताको पत्रके अन्तमें लिखता है:—

“आज्ञाकारी—

मोहन ।”

इस प्रकार ‘आज्ञाकारी’ के स्थानपर किसको कौन-सा शब्द लिखना चाहिए, यही मेरे लिखनेका मतलब है । यों तो इसके लिये बहुत-से शब्द हैं ; किन्तु संक्षेपमें इसे इस प्रकार समझो कि बड़े को पत्र लिखनेमें ‘आज्ञाकारी, चरण-सेवक, दर्शनाभिलाषी, आपका, दास, सेवक’ इत्यादि लिखा जाता है, बराबर-वालेको या मित्रको ‘तुम्हारा’, ‘अभिन्न’, ‘स्नेही’, ‘अमित्र हृदयी’, ‘भवदीय’ इत्यादि लिखा जाता है, तथा छोटेको ‘शुभचिन्तक’, ‘शुभाकांक्षी’, इत्यादि लिखना चाहिए ।

ऊपर लिखे हुए शब्दोंके नीचे अपना नाम लिखना उचित है, किन्तु बड़ोंके तथा मित्रोंके पत्रमें अपना पूरा नाम न लिखकर वही नाम लिखना चाहिए जिस नामसे गुरुजन पुकारते हों । जैसे किसीका श्याम सुन्दर नाम है, किन्तु बड़े लोग उसे ‘श्याम’



‘श्यामा’ या श्यामो’ कहकर पुकारते हैं ; ऐसी दशामें श्याम-सुन्दरको चाहिए कि वह बड़ोंके या मित्रके पत्रमें अपना ‘श्याम-सुन्दर’ नाम न लिखकर पुकारा जानेवाला ही नाम लिखे । हाँ, छोटोंके लिए लिखे जानेवाले पत्रमें पूरानाम लिखना उचित है ।

ऊपर जिन शब्दोंका उल्लेख किया गया है, जैसे ‘आज्ञाकारी’ ‘भवदीय’ आदि—उनके अतिरिक्त समयानुसार और भी बहुतसे शब्दोंका प्रयोग किया जाता है या किया जा सकता है । जैसे जगदीश किसीको शोकपूर्ण पत्र लिख रहा है । उसमें वह नीचे इस प्रकार लिखेगा:—

व्यथित हृदयी—

जगदीश ।”

‘व्यथित हृदयी’के स्थानपर ‘सन्तप्त हृदयी’, ‘शोकाकुल’, ‘मर्माहत’ आदि शब्द भी लिखे जा सकते हैं । शब्द-ज्ञान अच्छा रहनेपर परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न नये और सुन्दर शब्दोंका प्रयोग किया जा सकता है । इसीसे कहता हूँ कि यदि तुम अच्छा पत्र लिखना चाहो तो अपनी योग्यता बढ़ानेमें हमेशा लगी रहो । पूर्ण योग्यता हो जानेपर शब्दोंका ठीक-ठीक वजन मालूम हो जाता है और इस बातका पुष्ट ज्ञान हो जाता है कि कहाँ कौन-सा शब्द लिखना संगत है और कहाँ असंगत ।

बस आज यहीतक । आनेके सम्बन्धमें फिर कभी लिखूँगा । सन्तोषके लिए इतना लिख देता हूँ कि अब मैं शीघ्र तुम्हारे पास पहुँचनेकी चेष्टा करूँगा । सचमुच ही आये बहुत दिन हो गये ।

ता० १३—९—३७

विश्रामपुर

तुम्हारा वही—

अभिन्न”



पत्र-व्यवहार



रचयिता—श्री बालकृष्णजी शर्मा 'नवीन'

(सम्पादक 'प्रताप')

[इधर से]

[१]

यही नहीं कि हाथ काँपता, हिय भी काँपता आज,
पूरन कैसे होगा पतिया-लेखन का यह काज !
बड़े जतन से, हिम्मत करके, लिखने बैठा पत्र,
पर ना जानूँ कैसे यह हो गया आर्द्र सर्वत्र !
हिय धड़के, युग हस्त काँपें, चिट्ठी का ओर न छोड़,
थोड़े में समझना बहुत तुम, हे प्राणों की डोर !

[२]

मेरे हिय की मञ्जूषा में नहीं रतन अनमोल,
और नहीं है वहाँ तरलता की कोई कल्लोल !
फिर भी हूँ कर रहा समर्पित श्री चरणों में आज,
इसमें क्या है ? तुम मत पूछो, तुम्हें लगेगी लाज !
टूटी सन्दूकची बनी यह—इसमें वंशी एक,
कभी-कभी वह रो उठती है करुण-राग की रेख !

[३]

तुम हो कौन ? ज़रा बतला दो, हे मेरी समभ्रान्ति !
शान्ति-सरणिकी धवल रेणु हो, याकि विरहकी क्रान्ति !
इस चितवन ने छलनी कर डाला हिय-भाजन दीन ,
बूँद-बूँद कर टपक गई वह सुरस-राशि तल्लीन !
बिना नीर के तड़पा करता है अब यह मन-मीन ,
अरे ज़रा तो इसे उबारो आकर, हे हिय-हीन !

[४]

लज्जा है कि उपेक्षा ? मुझको ज़रा बता दो, प्राण !
चरणों के नख से भी लिख दो कुछ धीरे से आन !
मेरी भग्न-कुटी, आँगन में, चरण-चिह्न को देख ,
सच कहता हूँ, पुलक उठेगी, त्यागे ज्ञान-विवेक !
पर मेरे सँकरे अँगना क्यों आने लगे हुजूर ?
फिर पद-नख से लिखने की तो बात बहुत है दूर !

[५]

पर इतनी यह मूक भावना क्यों उमड़ी इस बार ,
कहाँ गया वह सजल सलोनी बातों का विस्तार !
सब जग से बोलो हो, हमसे इतनी खफ़गी ? हाय !
अजी, कभी तो कुछ कह दिया करो हमसे मुसकाय !
इधर-उधर आते-जाते पलकों का ढँकना खोल ,
हमको तुम क्यों ना दिखलाते अपनी निधि अनमोल !

[६]

क्या जानूँ किस घड़ी निगोड़ी आँखें अटकीं आय ,
 उसी पाशमें बँधी फिरें हैं, जरा न ये शरमायँ !
 तुमको क्या ? तुम तो इस गतिको समझे हो खिलवाड़ !
 बड़ी लाज की मूरत बन, करते हो बन्द किवाड़ !
 भाँकी कर लेने दो, वरना ये लोचन बेचैन ,
 तड़प-तड़पकर बन जाएँगे सूरदास के नैन !

[उधर से]

[१]

क्या कह तुम्हें करूँ सम्बोधित ? लिखते लगती लाज ,
 'प्या...' लिखते ही कलम निगोड़ी कँप जाती है आज !
 एक यही अच्छर लिख-लिखकर कागद करे खराब ,
 यह लेखनी ढीठ है नेक न सहती मेरी दाब !
 यह तो मचल-मचल पड़ती है, कैसे समझे ? हाय !
 पत्र पड़ा लिखने को, मैं तो आज हुई निरुपाय !

[२]

सब जग मुझे दोष देता है, मैं हूँ बड़ी कठोर ,
 साथिन कहतीं कि मैं रुलाती हूँ अपना चित-चोर !
 'ऐसा भी क्या मूक प्यार जो कभी न ले सुध, आह !'
 यों चुटकी लेती हैं सखियाँ मुझको चलते राह !
 मैं क्या करूँ लाज डाइन यह मुझको खाए जाय ,
 इधर तुम्हारा ध्यान कोंचता मुझे रुलाय-रुलाय !

लव लेटर्स
ॐ ॐ ॐ ॐ

[३]

भर आँखों में नीर, हिये में पीर, भिगोए चीर ,
कैसे लिखूँ नेह-पाती, तुमही बोलो मति-धीर !
बार-बार कागद पसीज उठता—मेरा क्या दोष ?
यह कुण्ठिता लेखनी निष्क्रियता में पाती तोष !
स्याही ? स्याही—वह तो सूख चुकी कब की बिरहेश ,
जब से तपिश हुई तब से स्याही का रहा न लेश !

[४]

आओ, आज बलैयाँ ले लूँ इस भादों के बीच ,
रिम-रिम बरसो, अहो मचा दो मेरे अँगना कीच !
मैं दौड़ी आऊँ स्वागत को, फिसल पड़ूँ हरषाय ,
तुम घबराए-मुसकाए-से बाँह पकड़ लो आय !
उस क्षण मेरी लोक-लाज का गढ़ हो जाए चूर्ण ,
योंही पत्र अधूरा मेरा होता जाए पूर्ण !

[५]

निस्साधना तुम्हारी दासी, बाधाएँ भरपूर ,
इसपर यह न पता कि कहाँ हो तुम, हो कितनी दूर ?
नाम-गाँव सब भूल गई हूँ मैं बौरानी नार ,
केवल रूप-छटा है आँखों में, हिय में, इस बार !
सिरनामा लिखवा दो आके, जरा हाथ लो थाम ,
जरा बता दो, ओ परदेशी, अपना मृदु उपनाम !



बीबी और शौहर के खत

[लेखक—पं० रत्ननाथ दर 'सरशार' लखनवी]

अनु०—स्वर्गीय श्रीयुत प्रेमचन्दजी

एक दिन मियाँ आजाद सरायमें बैठे सोच रहे थे, किधर जाऊँ, कि एक बूढ़े मियाँ लठिया टेकते आ खड़े हुए और बोले,— मियाँ ज़रा यह खत तो पढ़ दीजिए, और इसका जवाब भी लिख दीजिए। आजादने खत लिया और पढ़कर सुनाने लगे—

मेरे खूबसूरत शौहर, खुदा तुमसे समझे।

आजाद—वाह। यह तो निराला खत है। न सलाम, न बंदगी। शुरूहीसे कोसना शुरू किया।

बूढ़े जनाब, आप खत पढ़ते हैं कि मेरे घरका कज़िया चुकाते हैं? पराए भगड़ेसे आपका वास्ता? जब मियाँ-बीबी राज़ी हैं, तब आप कोई काज़ी हैं।

आजाद—अच्छा, तो यह कहिए कि आपकी बीबीजानका खत है। लीजिए, सुनाए देता हूँ—

“मेरे खूबसूरत शौहर खुदा तुमसे समझे । सिकन्दर पातालसे
प्यासा आया ; मगर तुमने अमृतकी दो-चार बूँदें जरूर पी
ली हैं, जभी मरनेका नाम नहीं लेते । कुछ ऊपर सौ बरसके
तो हुए, अब आखिर क्या आकबतके बोरिए बटोरोगे ? जरा
दिलमें शरमाओ, हजारों नव-जवान उठते जाते हैं, और तुम
टैयार-से मौजूद हो । डंकू-फीवर भी आया ; मगर तुम मूर्खोंपर
ताव ही देते रहे । हैजेने लाखों आदमी चट किए, मगर आप तो
हैजेको भी चटकर जायँ, और डकारतक न लें । बुखारमें हजारों
हयादार चल बसे, मगर तुम और भी मोटे हो गए । तुम्हें
लकवा भी नहीं मारता, लूके भोंकें भी तुम्हें नहीं झुलसाते, दरिया
में भी तुम नहीं फिसल जाते, और सौ बातकी एक बात यह है
कि अगर हयादार होते, तो एक चिल्लू काफ़ी था ; मगर तुम वह
चिकने घड़े हो कि तुमपर चाहे हजारों ही घड़े पड़ें ; लेकिन एक
बूँद न थम सके । बाह पड़े क्यों न हो । किस बुरी साइतमें
तुम्हारे पाले पड़ी । किस बुरी घड़ीमें तुम्हारे साथ व्याह हुआ ।
माँ-बापको क्या कहूँ, मगर मेरी गरदन तो कुंद छुरीसे रेत
डाली । इससे तो किसी कुँएहीमें ढकेल देते, कसाईहीके हवाले
कर देते, तो यह रोज-रोजका कुढ़ना तो न होता । तुम खुद ही
इन्साफ करो । तुम्हारे बुढ़भससे मुझपर क्या गाज पड़ी । हाथ
तो आपके काँपते हैं, पाँवमें सकत नहीं, मुँहमें दाँत, न पेटमें
आँत, कमर कमानकी तरह झुकी हुई, आँखोंकी यह कैफियत
कि दिनको ऊँट नहीं सूझता । लाठी टेककर दस कदम चले भी,
तो साँस फूल गई, दम टूट गया । सुसताने बैठे, तो उठनेका
नाम नहीं लेते । सुबहको नन्हीं-नन्हीं दो चपातियाँ खा लीं, तो

शामतक खट्टी डकारें आ रही हैं, तोला-भर सिकंजबीनका सत्या-
नाश किया, मगर हाजमा ठीक न हुआ। हाफिजेका यह हाल
कि अपने बापका भी नाम याद नहीं। फिर सोचो तो कि व्याह
करनेका शौक क्यों चर्राया। एक पाँव तो कब्रमें लटकाया है
और खयाल यह गुदगुदाया है कि दूल्हा बनें, दुलहिन लाएँ।
खुदा-कसम, जिस वक्त तुम्हारा पोपला मुँह, सफेद भौंह, गालोंकी
भुर्रियाँ-दोहरी कमर, गंजी चाँद और मनहूस सूरत याद आती
है, तो खाना हराम हो जाता है। वाह बड़े मियाँ, वाह ! खुदा
भूठ न बोलावे, तो हमारे अब्बाजानसे पचास-साठ बरस बड़े
होगे, और अब्बाजानको तुमने गोदमें खिलाया हो, तो ताज्जुब
नहीं। खुदा गवाह है, तुम मेरे दादाके बापसे भी बड़े हो, मगर
बाहरी किस्मत कि आप मेरे शौहर हुए ! ज़मीन फट जाय, तो
मैं धँस जाऊँ।

तुम्हारी जवान बीबी।”

आजाद—जनाब, इसका जवाब किसी बड़े मुन्शीसे
लिखवाइए।

बूढ़ा—बुढ़ापेमें अब कभी शादी न करेंगे।

आजाद—वाह, क्या अभी शादी करनेकी हवश बाकी है ?
अभी पेट नहीं भरा ?

बूढ़ा अब इसका ऐसा जवाब लिखिए कि दाँत खट्टे हो जायँ।

आजाद—आप औरतके मुँह नाहक लगते हैं।

बूढ़ा—जनाब, उसने तो मेरी नाकमें दम कर दिया और

सच पूछो, तो जिस दिन उसको व्याह लाए, नाक ही कट गई।
ऐसी चंचल औरत देखी, न सुनी। मजाल क्या कि नाकपर
मक्खी बैठ जाय।

आखिर आजादने पत्रका जवाब लिखा—

“मेरी अलबेली, छैल-छबीली, नादान बीबीको उसके बूढ़े
शौहरकी उठती जवानी देखनी नसीब हो। वह जुग-जुग जिए
और तुम पूतों फलो, दूधों नहाओ, अठारह लड़के हों और
अठारह दूनी छत्तीस छोकरियाँ। जब मैं दालानमें कदम रक्खूँ,
तो सब बच्चे ‘अब्बा आए, अब्बा आए, खिलौने लाए, पटाखा
लाए’ कहकर दौड़े। मगर डर यह है कि तुम भी अभी कमसिन
हो, उनकी देखा-देखी कहीं मुझे अब्बा न कह उठना कि पास-
पड़ोसकी औरतें मुझे उँगलियोंपर नचावें। मुझे तुमसे इतनी ही
मुहब्बत है, जितनी किसीको अपनी बेटीसे होती है, अपनी
नानीको मैं ऐसा प्यारा न था, जितनी तुम मुझे प्यारी हो। और
क्यों न हो, तुम्हारी परदादीको मैंने गोदियोंमें खिलाया है।
और मेरी बहनने उसे दूध पिलाया है। मुझे तुम्हारी दादीका
गुड़िया खेलना इस तरह याद है, जैसे किसीको सुबहका
खाना याद हो। तुम्हारे खतने मेरे दिलके साथ वह किया, जो
बिजली खलियानके साथ करती है, लेकिन मुझमें एक बड़ी सिफत
यह है कि परले सिरका बेहया हूँ। और क्यों न हो, शर्म औरतों-
को चाहिए, मैं तो चिकना घड़ा हूँ। माना कि आँखोंमें नूर नहीं,
मगर निगाह बड़ी बारीक रखता हूँ; बहरा सही, लेकिन मतलब-
की बात खूब सूनता हूँ; बुढ़ा हूँ; कमजोर हूँ, मगर तुम्हारी

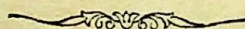
मुहब्बतका दम भरता हूँ। तुम्हारा प्यारा-प्यारा मुखड़ा, रसीली, अँखियाँ, गोरी-गोरी बहियाँ जिस वक्त याद आती हैं, कलेजेपर साँप लोटने लगता है। तुम्हारा चाँदनी रातमें निखर कर निकलना, कभी मुसकिराना, कभी खिलखिलाना—किसका शरमाना ? कैसा लजाना ? और-तो-और, तुम्हारी फुर्तीसे दिल लोट-पोट है, कलेजे-पर चोट है। तुम्हारा फिरकीकी तरह चारों ओर घूमना, मोरों-की तरह भूमना; कभी खेलते-खेलते मेरी चपतगाहपर टीप जमाई, कभी शोखीसे वह डाँट बताई कि कलेजा काँप उठा, कभी आप-ही-आप रोना, कभी दिन-दिनभर सोना, अलहड़पनके दिन बारह बरसका सिन, बीबीजान, तुमपर कुरबान, ले कहा मानो, हमें गनीमत जानो। मैं सुबहका चिराग हूँ, हवा चले या न चले, अब गुल हुआ, अब गुल हुआ। डूबता हुआ आफताब हूँ, अब डूबा, अब डूबा। मुझे सताना, मुएपर सौ दुँरें ! तुम खूब जानती हो कि मेरी बातें कितनी मीठी होती हैं। सत्तर बरस हो गए कि दाँत चूहे ले गए, तबसे हलुएपर बसर है, फिर जो रोज हलुवा खायगा, उसकी बातें मीठी क्यों न होंगी। तुम लाख रूठो, फिर भी हमारी हो, बीबी हो, वह शुभ घड़ी याद करो, जब हम दूल्हा बने, पुराने सिरपर नई पगड़ी जमाए, सेहरा लटकाए मेंहदी लगाए, मुरीके बराबर घोड़ियापर सवार, 'मीठी पोई' जाते थे, और तुम दुलहिन बनी, सोलह सिंगार किए पालकीमें-से भाँक रही थीं। हमारे गालोंकी मुरियाँ, हमारा पोपला मुँह, हमारी टेढ़ी कमर देखकर खुश तो न हुई होगी ! और क्या लिखूँ, एक नसीहत याद रखो, एक तो मेले-ठेले न जाना, दूसरे आस-पासकी छोकरियोंको गुइयाँ न बनाना। खुदा करे,

जबतक ज़मीन और आसमान कायम है, तुम जवान रहो, और नादान रहो, हमारे सफेद बाल तुम्हें भाएँ हासिद खार खाएँ ।

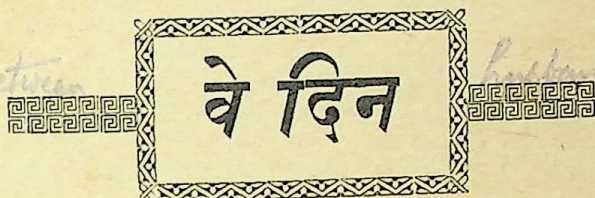
तुम्हारा बूढ़ा शौहर ।

बूढ़ा—माशा-अल्लाह ! आपने खूब लिखा, मगर इस खत-को ले कौन जाय ? अगर डाकसे भेजता हूँ तो गुम होनेका डर, उसपर तीन दिनकी देर । अगर आप इतना एहसान करें कि इसे वहाँ पहुँचा भी दें, तो क्या पूछना ।

आजाद सैलानी तो थे ही, समझे, क्या हर्ज है, साँड़नी मौजूद है, चल्छूँ इसी बहाने जरा दिलगी देख आऊँ । कुछ बहुत दूर भी नहीं, साँड़नीपर मुश्किलसे दो घंटेकी राह है । बोले,—आप बुजुर्ग आदमी हैं, आपका हुक्म बजा लाना मेरा फर्ज है, लीजिए जाता हूँ ।



Remarks :-



[ले०—सीताराम गुप्त 'विनोद' डी० काम ए० एम०
आई एस० ई०]

“प्राणनाथ,

प्राणनाथ ? यह क्या लिख दिया ? प्राणनाथ, प्राण वल्लभ, प्राणेश्वर आदि यह सब तो गँवारूँ भाषा हैं। ‘डियर’, ‘डार्लिंग’, ‘माई लव’ आदिमें जितनी मधुरता है उनके आगे ये शब्द शुष्क प्रतीत होते हैं तथापि मातृ-भाषा होनेसे बोलनेमें तो नहीं ; परन्तु लिखनेमें अवश्य ही लेखनीसे निकल ही पड़ते हैं। हमलोग विश्वविद्यालयमें प्रेम-परिणयके समय सदा अंग्रेजीहीके ‘डियर’ आदि प्रयोग करते थे। इन शब्दोंसे हमारी पुरानी स्मृति हरी हो जाती है। मैंने प्रथम बार आपको विश्व-विद्यालयके रंग-मंचपर विदूषकका अभिनय करते देखा था। दूसरे दिवस आप कालेज चले जा रहे थे। रात्रिका आपके चेहरेका पाउडर और काला रंग भलीभाँति छूटा नहीं था, इससे आपकी शक्त अजीब दिखाई

पड़ती थी। उसको देखकर मैं हँसी नहीं रोक सकी। मेरी मुस्कुराहटको आपने देख लिया और उसका कुछ और ही अर्थ लगा लिया। बस यहींसे नवीन नाटकका प्रथम दृश्य आरम्भ हुआ। आप मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गये। कौन जानता था कि एक दिन मेरी शादी उसी भाँड़से (क्षमा करना मिस्टर विदूषकसे) होगी। आप जहाँ मिलते, नेत्रोंसे संकेत करते, हृदयपर हाथ रखते, ठंडी साँस लेते। मैं नीची निगाह करके कभी-कभी मुस्कुराकर चल देती। मुझे आप निष्ठुर समझते। कभी-कभी आपकी जवानसे 'आह जालिम, मार डाला' के शब्द निकल जाते। उन शब्दोंको सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, अभिमान होता, गर्व होता। दिलमें खयाल होता, मैं बड़ी सुन्दरी हूँ। लोग मुझको चाहते हैं। आइनेके सामने खड़ी होकर अपना रूप अपने-आप निहारती और खुश होती थी। परन्तु मेरा हृदय भी पाषाण न था। मैं भी आपको चाहती थी; परन्तु कुछ कह नहीं सकती थी। दोनों ओरसे 'वायरलेस' चलती रही। अन्तमें 'कन्वोकेशन' (उपाधि वितरण) के दिन आपने समय निकाल ही लिया और अपना प्रथम पत्र मुझको दिया। बस, यहींसे बाँध टूट गया। हमारा पत्र-व्यवहार चला, छिप-छिपकर भेंट चली। आह, वह भी कितना सुन्दर समय था! हम चोरीसे मिलते, हृदय सशंक रहता, सदा भय रहता कि कोई देख न ले, वायुसे पत्तोंकी खड़-खड़ाहटके कारण हमलोग पीपलके पत्तोंकी तरह काँपने लगते, परन्तु तथापि वही चन्द मिनट भी हमारे लिये स्वर्गसे बढ़कर होते। हमलोग पुनः मिलनेका निश्चय कर पृथक होते और पुन-मिलनतककी घड़ियाँ किस प्रकार काटते, लिखना कठिन है।

मैंने बी० ए० पास किया, आपने एम० ए० । हमारी पढ़ाई समाप्त हुई । हमलोग बिछुड़ गये । आह उस रात्रिका वर्णन जबकि मैं आपसे पृथक हुई थी किस प्रकार करूँ । रातभर रोती रही । हृदयमें होता था उड़कर आपके पास पहुँचूँ । जब आपका पत्र मिला, कुछ तसल्ली हुई । आपके पिता तथा मेरे पितामें हमारे सम्बन्धके लिए पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ । यह सब आपकी कार्रवाई थी । आपके मित्रोंद्वारा मेरे पिताको प्रेरित किया गया । सब कुछ तय हो गया । हमारी भी आशायें फलीभूत होती हुई दिखाई पड़ने लगीं । परन्तु जब मैंने सुना कि आपके पिताने तिलकका धन कम समझकर शादी करनेसे नहीं कर दी, तब तो मैं मरणासन्न हो गई । हमारी दशा उन्हीं प्रेमियोंकी हुई जो प्रयागमें एक गंगामें और एक यमुनामें नौकापर सवार होकर संगमपर मिलनेकी आशासे आवें, परन्तु संगमपर इन दोनों नदियोंकी धाराओंके वेगसे दोनों नावें टकराकर अलग हो जावें । संयोग होते-होते रहा । आपके पिता इतने शिक्षित, समाजमें इतना बड़ा पद रखते हुए भी 'तिलक'के पक्षपाती थे । हा ! इस तिलककी प्रथाने पता नहीं कितनी युवतियोंका सत्यानाश किया, कितने ही माता-पिताओंका संहार किया । अब यह हमारे जीवनको नष्ट करनेवाला था । परन्तु ईश्वरकी कृपा हुई । समझौता हो गया ।

अन्तमें शादी हो गई । हमलोग एक सूत्रमें बँध गये । विचारा था, अब सब आपदायें दूर हो गईं । अब हमारे हृदयोंकी ज्वालायें शान्त होंगी । परन्तु विधिनाकी विधि कौन बतावे । कहाँ तो हमारे 'हनीमून' का समय आया, कहाँ आपको राजा

साहिबके यहाँका तार मिला कि आप प्राइवेट सेक्रेट्रीके पदपर नियुक्त हो गये, तुरन्त चले आइये। घरभरने इस समाचारसे प्रसन्नता मनाई, इधर अँधेरा हो गया। आप चले गये, मेरे हृदयकी ज्वाला अधिक बढ़ गई। मैं आपके वियोगमें तड़पने लगी। संसार सूना दिखने लगा।

आह, देखिये कोयल बोल रही है। इसका यह अर्थ है कि मैंने इतनी रात आपकी यादमें और इस पत्रमें बिता दी। पत्र लिखकर मैं अपने हृदयका उद्गार प्रकट कर रही थी। इससे मुझको कुछ सान्त्वना मिल रही थी। घाव भर रहा था; परन्तु इस पापिन कोयलने अपनी कूकसे उस भरते हुए घावको नोच डाला। उससे पुनः रक्तकी धारा प्रवाहित हुई। मेरी दशा तो इस समय उस पुरुषकी तरह है जोकि अपने सुन्दर उद्यानमें, जिसमें भाँति-भाँतिके सुन्दर सुगन्धित पुष्प लगे हुए हैं—टहल रहा हो, बाटिकाकी सुन्दरता देखकर मुग्ध हो रहा हो। एक सुन्दर गुलाबके पुष्पको तोड़कर सूँघना चाहता हो; परन्तु उसपर बैठी हुई शहदकी मक्खी उसको काट ले। हाय ! हमारे पास सबकुछ है, परन्तु किस कामका ? मुझसे तो वह भला है जिसके पास कुछ भी नहीं।

प्राणेश्वर, मुझसे तो कहकर गये थे कि अधिक-से-अधिक एक मासमें अवश्य बुला लूँगा, परन्तु अब तो तीन मास व्यतीत हो गये। आपने सुध भी न ली। सुध कैसे लें ? सुध लेनेकी सुध हो तो सुध लें। वहाँपर तो राजासाहबके साथ नई-नई 'मिसों' से भेंट करनेसे ही फुर्सत नहीं मिलती होगी। मुझको कौन पूछे। क्यों, कैसी पते कही ? खैर आप भ्रमर बनकर

भिन्न-भिन्न फूलोंके रस लें ; परन्तु इस पुष्पके लिये तो केवल एक ही भ्रमर है । यह पुष्प बनमें अकेला खिला रहकर मुर्मा जावेगा ।

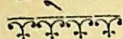
उक्त ! मैंने बहुत लिख डाला, परन्तु हृदयका बोझ अभी हल्का नहीं हुआ । कहाँ हमने विचारा था कि किसी बड़े शहरमें रहकर दोनों शिक्षाविभागमें कार्य करेंगे और कहाँ मुझे चूल्हे-चक्रीसे काम पड़ा ! जिन वस्तुओंके सम्बन्धमें मैंने केवल पुस्तकोंमें पढ़ा भर था आज वही हमारे सरपर पड़ी । मैं शिक्षिता हूँ, परन्तु मुझे रसोई बनाना पड़ता है । माताजी (सासजी) सदा बिगड़ा करती हैं कि मेरे घरमें मेम लाकर डाल दिया । एक दिवस सब कोई मुझसे नाराज थे, मैंने बड़े परिश्रमसे भोजन तैयार किया । दो तीन सज्जियाँ और खीर बनाई थी, परन्तु किसीने उसकी सराहना न की । मैंने तो खाना छुआ ही नहीं । नौकर भी खाकर हँसने लगा । कहने लगा कि, बहूजी, दाल और साग सब मीठे हैं और खीर नमकीन है । आपको नमक और चीनीकी पहचान नहीं । इसमें मेरा क्या कसूर था ? डिब्बोंपर 'नमक' और 'चीनी' लिख देना चाहिये था । अस्तु अब माताजी रसोईके समय सदा सरपर सवार रहती हैं । दिनभर तो काम करती हूँ और रातभर याद करती हूँ । हृदय मेरा भरा हुआ है यदि लिखती जाऊँ तो अन्त न होगा । प्राणनाथ, क्षमा करो, शीघ्र दर्शन दो ।

आपकी दर्शनाभिलाषिनी
कुसुम ।”

डार्लिंग,

पत्र तुम्हारा मिला। इसने बेकली पैदा कर दी। पुराना दृश्य, पुराना जीवन, सब आँखोंके सामने नाचने लगा। कालेजकी पढ़ाई, तुम्हारी याद, तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारा 'वियोग, तुम्हारा मिलन पुनः वियोग सिनेमाके चित्रपटकी तरह दिखाई पड़ रहा है। व्याकुलता बढ़ती जा रही है। क्या करूँ, विवश हूँ। तुलसीदासका वचन "पराधीन सपनेहु सुख नहीं" सत्य ही है। लोग मेरे पदको ईर्ष्याकी दृष्टिसे देखते हैं, परन्तु मैं जानता हूँ कि यह पद कैसा है। एक मिनटका भी समय अपना नहीं है। बोलो तो राजासाहिबके लिये, लिखो तो राजासाहिबके लिये, सोचो तो राजासाहिबके लिये, चलो तो राजासाहिबके लिये, अर्थात् मैं राजासाहिबका एक अंग हूँ। मैं उनका मुँह हूँ, हाथ हूँ, जिह्वा हूँ। करना तो सब कुछ मुझको ही पड़ता है। मुझे नींद आ रही हो, परन्तु राजासाहिबको जबतक नींद न आवे मैं कह नहीं सकता कि मुझको नींद आ रही है। इस नौकरीमें केवल अपने शरीरहीको नहीं परन्तु अपनी आत्माको भी बेचना पड़ता है। सेक्रेटरी देखता है कि राजासाहिब अनुचित कार्य कर रहे हैं परन्तु वह बोल नहीं सकता। उसको भी हाँ-में-हाँ मिलानी पड़ती है। यद्यपि मैंने केवल तीन मास ही यह नौकरी की है; परन्तु मुझको इससे घृणा हो गई है। मैं स्वतंत्रता चाहता हूँ परन्तु मैं परतंत्र हूँ। मेरी दशा सोनेके पिंजड़ेमें बन्द नाना भौतिके बहुमूल्य भोजन पानेवाले पक्षीकी तरह है; परन्तु वह भी मुझसे एक बातमें उत्तम है। उसको तो बोलनेकी स्वतन्त्रता है, परन्तु मुझको वह भी नहीं। मैं शीघ्र ही इस नौकरीको छोड़नेवाला हूँ।

‘प्रिये, तुमने विलायती’ ‘मिसों’ के संबंधमें लिखा है। वह तो तुम्हारे चरणोंकी धूलकी भी बराबरी नहीं कर सकती। उनमें केवल चमक दमक है, हृदय नहीं। वह तो तितलीके समान हैं। पंखके साथ तितली बड़ी सुन्दर दिखलाई पड़ती है। बच्चे पीछा करते हैं। बड़ी कठिनता व परिश्रमसे पकड़ पाते हैं। पकड़ते ही, पंखोंपर हाथ लगते ही, पंख टूट जाते हैं और केवल कीड़ा रह जाता है। बच्चे उस भयानक कीड़ेको देखकर ठुकराए देते हैं। समझदार मनुष्य तितलीको उड़ते हुए केवल देखकर ही प्रसन्न होता है उसके पीछे दौड़ता नहीं; क्योंकि वह उसकी वास्तविकताको भली भाँति जानती है। विलायती मिसों और हिन्दू रमणियोंमें विलायती तथा हिन्दुस्तानी पुष्पोंका-सा भेद है। विलायती पुष्प देखनेमें सुन्दर परन्तु गन्ध-रहित होते हैं। इनमें अनेक रंग होते हैं, तड़क-भड़क होती है जिससे यह साहबोंके बंगलोंकी शोभा बढ़ाते हैं। बहुत हुआ माली उनको तोड़कर गुलदस्ता बनाकर भोजनके कमरेमें अथवा बैठकमें सजा देता है। हिन्दुस्तानी पुष्प बेला, जूही, चमेली मोतिया आदिका सादा रंग होता है। इनमें विलायती पुष्पोंकी-सी चमक नहीं, रंग नहीं, परन्तु इनमें वह वस्तु है जो उनमें नहीं। इनमें सुगंध है। इनको तोड़कर रूमालमें बाँध लीजिये यह मुरझा जायँगे, नष्ट हो जायँगे परन्तु अपनेको नष्ट करके भी आपको अपना हृदय, अपना सार दे जायँगे। आपके रूमालमें हफ्तों उनकी खूशबू रहेगी। उनकी स्मृति बनी रहेगी। इनकी स्मृतिको सदाके लिये बनाये रखनेके लिये इनका अर्क (एसेंस) निकाला जाता है। परन्तु विलायतीका नहीं। विलायती पुष्प साहब लोगोंके कोटके ‘बटन होल’ की



शोभा बेशक बढ़ा लें, परन्तु हिन्दुस्तानी पुष्प अपने हृदयको छिदाकर मालाके रूपमें हिन्दुस्तानियोंके कंठसे ही लगते हैं और उनके हृदयपर झूलते हैं और अपनी सुगन्धको मस्तिष्कमें पहुँचाते अर्थात् उसके अन्दर और बाहर दोनों स्थानोंको सुख पहुँचाते हैं, उनके शरीर और आत्मा दोनोंको प्रसन्न करते हैं।

प्राणेश्वरी, घबराओ नहीं। मैं शीघ्र ही मिलनेवाला हूँ। तुम्हारा वियोग अब सहा नहीं जाता। यह कष्ट जो हमको प्रतीत होता है, केवल हमारी ही भूलसे। हम पूर्वाय होकर पश्चिमी शिक्षा और सभ्यताके फेरमें पड़े हैं। तुमने शिक्षा प्राप्त की मेमोंकी स्वच्छंदता प्राप्त करनेके लिये, और मैंने शिक्षा प्राप्त की दासताकी बेड़ीमें जकड़े जानेके लिये। दोनोंकी भूल थी। यह शिक्षा केवल मेमोंके लिये ही उपयुक्त है। उनके पति नौकरी करते हैं और मेम साहब लोग शिमला, मंसूरी आदि स्थानोंमें गुलछरें उड़ाती फिरती हैं। बच्चे होनेपर धायको सुपुर्द कर दिये जाते हैं। वह अपनी माताके प्रेमको जानतेतक नहीं। परन्तु हिन्दुस्तानी स्त्रियोंका स्थान है, अपने पतिके साथ। तुम्हारी भी शिक्षा यदि हिन्दुस्तानी घरके लिये हुई होती तो नमक और चीनीमें फर्क बतलानेके लिये उनको भिन्न-भिन्न डिब्बोंमें नाम लिखकर रखनेकी आवश्यकता नहीं होती। यदि मेरी भी शिक्षा ठीक रूपसे हुई होती तो मैं भी देशकी शिल्पकलाके लिये प्रयत्न करता फिरता न कि अपनी आत्मा बेचकर चार पैसे कमानेके लिये। मुझे खेद है कि हमारे देशवाले इस दशाको नित्य देखते हुए भी हाथ-पर-हाथ रखे बैठे हुए हैं और कुछ करते नहीं।

हृदयेश्वरी ! कालेजका प्रेम पश्चिमी प्रेम था। वह 'कोर्टशिप'

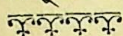
था। पश्चिमी प्रेमका अन्त 'डाइवोर्स' (विच्छेद) में होता है। मेरी आँखें खुल गई हैं। मैं अपने आपको समझ चुका हूँ। मैं इस प्रेमको पश्चिमी प्रेम नहीं बनाना चाहता जो कि क्षण-भंगुर हो बल्कि अमर प्रेम बनाना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि तुम भी इसी अमर प्रेमका स्वप्न देखती हो। हमारा पूर्वी प्रेम सदा एक समान रहता है। चाहे दोनों शरीर एक स्थानपर हों अथवा सहस्रों कोसकी दूरीपर हों, पर हृदय एक रहता है। देखनेसे, स्पर्श करनेसे, आलिंगनसे प्रेम बाँसों ऊपर नहीं उछलता और न ही वियोगके समय समुद्रकी पेंदीमें चला जाता है। यह तो भावनावों और उमंगोंकी दशा होती है। हमारेमें अमर प्रेम है, अविचल प्रेम है, स्थाई प्रेम है और देशीय प्रेम है।

मैं आशा करता हूँ कि तुम मेरे भावोंको भलीभाँति समझ गई होगी। माताजीकी देख-रेखमें शीघ्र ही आदर्श गृहिणी बन जाओगी। मैं अभी कुछ और लिखता। कितने दिनोंके पश्चात् यह लिखनेके लिये थोड़ा-सा अवकाश मिला है, लेकिन टेलीफोनकी घंटी बज रही है; ज्ञात होता है, राजा साहिबको इस एक बजे रातको भी मेरी आवश्यकता पड़ ही गई। हा, ईश्वर !.....

राजा साहिबके यहाँ तुरन्त आनेकी बुलाहट है। मोटर बाहर खड़ी है। मैं देर नहीं कर सकता। अच्छा प्रिये, तुमको मेरा प्यार, आलिंगन और सबकुछ।

तुम्हारा—

हृदयेश



प्राणेश्वर,

आपके प्रेम-पत्रने मेरी आँखें खोल दीं। प्रेम क्या है, संसार नहीं जानता। वह स्त्रियोंके रंग, रूप, मुस्कान, कटाक्ष, हाव-भाव-पर ही मुग्ध हो जाता और उनके पीछे दौड़ने लगता है। इसे ही वह प्रेम कहता है। इस नश्वर शरीरके बाहरी ठाट-बाटपर मरनेवाले भला क्या जानें प्रेम क्या है? अपनी इन्द्रिय लोलुपताको ही आज-कलके नवयुवक प्रेम कहते हैं। कालेजोंमें, विश्वविद्यालयोंमें हमारे युवक प्रेमका अभिनय करते हैं और पवित्र प्रेमको बदनाम करते हैं। आपके पत्रने मेरे दिलमें नवीन शक्ति उत्पन्न कर दी, नवीन भाव पैदा हो गये और अब मैं नया संसार देख रही हूँ। सारा संसार प्रेममय दिखलाई पड़ रहा है।

आज एक माताजीका विगड़ना, बकना-भकना मुझको बहुत बुरा ज्ञात होता था परन्तु मैं समझ गई। यह उनके केवल प्रेमके कारण था। वह मुझको आदर्श बधू देखना चाहती हैं। उनका प्रेम इस विगड़नेसे ही झलकता है। मैंने गृहस्थीका बहुत-सा कार्य सीख लिया है। माताजी भी प्रसन्न रहती हैं।

मेरे देवता ! आप दर्शन अवश्य देवें, परन्तु नौकरी छोड़कर नहीं। इससे पिताजीको दुःख होगा। मैं बड़ी स्वार्थिनी हूँ कि आपको आनेके लिये लिखती हूँ ; किन्तु क्या करूँ, हृदय नहीं मानता। आपके दर्शनके लिये हृदय अकुला रहा है। पत्नीका स्थान पतिके चरणोंमें है। मैं आपकी सेवा करके अपना तुच्छ जीवन सार्थक करना चाहती हूँ। आशा है आप इस दासीपर शीघ्र कृपा करेंगे।

चरण-सेविका—

कुसुम

डियर पुष्पा,

तुम्हारे पिताकी तबदीलीने मेरे संसारको अन्धेरा कर दिया । भला इन हाकिमोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भेजकर, उनको सदा 'खानाबदोश' बनाकर सरकारको क्या मजा आता है । जहाँ इन गरीबोंकी जरासी गृहस्थी जमी, कुछ मित्र बने कि सरकारका परवाना आया—तुम तबदील कर दिये गये । बस बाँधो बोरिया-बिस्तर, रवाने हो जाओ । सहस्रों रुपये व्यर्थके टी० ए० (राह खर्च) में इसी प्रकार व्यय होते हैं, परन्तु बेकारी दूर करनेके लिये सरकारके पास पैसे नहीं । पैसेका सवाल करो तो तुम्हारे ऊपर टैक्सका बोझ लाद दिया जावेगा ।

डार्लिङ्ग, मैं तो अपने सूने संसारका जिक्र कर रहा था परन्तु इस सरकारने बीचमें कहांसे टांग अड़ा दी ? तुम भी कहोगी कि कैसा पागल है । प्रेमकी बातें करता करता राष्ट्रीयता दिखलाने लगता है । परन्तु पुष्पे, जो हृदयमें रहता है निकल ही पड़ता है । हमारा तुम्हारा परिचय जब इसी राष्ट्रीय कार्यके सिलसिलेमें हुआ तो यह कीड़ा मेरे मस्तिष्कसे किस प्रकार निकल जाय ? जब मैं बाँधकर कैदीकी भाँति तुम्हारे पिताके सामने उपस्थित किया गया तो तुमने दया की । मुझ प्याससे तड़पतेको जल पिलाया । उस जलने जलकी तृष्णाको शान्त करके दूसरी तृष्णा आरम्भ कर दी । तुमने मुझको जल देकर मेरे हृदयको कदाचित् बाहरी रूपसे शान्त किया हो परन्तु उसमें उसी समय दूसरी ज्वाला उत्पन्न हो गई । वह ज्वाला जलसे शान्त होनेवाली न थी, न है । तुम्हारे उस जलने मेरे सूखते हुए हृदयके पौदेको हरा कर दिया । पुष्प तो तुम्हारा नाम व्यर्थ रखा गया है । तुम वास्तवमें माली हो ।

जबतक तुम यहाँपर थीं, दिनमें एक बार तो दर्शन अवश्य ही हो जाते थे। इसीके लिये मैं सदा अपनी कोठरीमें जँगलेके सामने बैठकर बाहरी रूपसे पुस्तकोंका ध्यान करता, परन्तु अन्दर तो तुम्हारा ध्यान रहता। पुष्प, जिस समय स्कूलके लिये तुम निकलती तो एक बार मेरी खिड़कीकी ओर देखकर मुस्करा देती ! उस समय मेरी हृदय-बाटिकाके सब पुष्प खिल उठते। परन्तु अब तो तुम्हारे चली जानेसे यह बाटिका सूख चली है। जिस बागका माली न होगा वह बाग भला कबतक हरा-भरा रहेगा ? हाय ! जिस दिलमें पुष्प ही पुष्प था वहाँपर अब सिर्फ काँटे ही रह गये। पढ़ाई समाप्त हो चुकी है। कालेज बन्द है, परन्तु तथापि मेरा स्थान अपनी खिड़कीपर ही है। मैं जानता हूँ कि तुम अब उस बँगलेमें नहीं हो और न ही इस खिड़कीसे तुम्हारे दर्शन हो सकते हैं। परन्तु हृदय नहीं मानता। खँचकर उसी स्थानपर ले जाता है। दिलमें आया था कि किसी बहानेसे तुम्हारे यहाँ आऊँ; पर कोई बहाना ही नहीं मिलता। मैं जानता हूँ कि हमारा तुम्हारा संबंध असम्भव है; परन्तु क्या करूँ, हृदय नहीं मानता। देखो कोई बहाना ढूँढ़ता हूँ। न होगा तो कालेजके लिये चन्दाके ही बहाने वहाँ पहुँचूँगा; परन्तु एक बार तुम्हारे दर्शन अवश्य करूँगा।

तुम्हारा—

प्रकाश

डियर प्रकाश,

पत्र तुम्हारा मिला। तुम बड़ी धृष्टता करोगे, यदि यहाँपर

किसी बहाने आओगे। तुम मेरा ध्यान छोड़ दो। मेरी शादी अब तय हो चुकी है और कुछ दिनोंमें शादी हो जावेगी। मैं किसी दूसरेके घर चली जाऊँगी। वही मेरा पति होगा। धर्मके अनुसार हमको उनके सिवा और किसीका चिन्तन न करना चाहिये। यह मैं जानती हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो और मैं भी इस पथपर कुछ अग्रसर हुई थी, परन्तु वह सब बचपनका खेल था।

प्रकाशका कार्य है तिमिरको दूर करना। प्रकाश, तुम मेरे पथ-प्रदर्शक बनो। मुझे अपने सच्चे मार्गपर जाने दो। मैं जानती हूँ कि मैंने बड़ी भारी भूल की कि तुम्हारे प्रेमको बढ़ानेका समय दिया, आशा दी; पर मैं परतन्त्र हूँ। भारतकी लड़कियाँ सदा परतन्त्र हैं। उनका भविष्य उनके माता-पिताके हाथमें है। चाहे वह डुबा दें अथवा उबार लें। बस, मैं तुम्हें भाई प्रकाशके सिवा और कुछ नहीं कह सकती। क्षमा करना, इस समाचारसे तुम्हारे हृदयको कष्ट पहुँचेगा, परन्तु मैं क्या करूँ, परवश हूँ। आशा है तुम मुझे धर्म-पथपर चलनेके लिये दृढ़ करोगे और इस कार्यमें सहायता ही दोगे।

अनुगृहीता—

पुष्पा

पुष्पे,

पत्र तुम्हारा मिला। हृदयको पत्थर बनाकर पड़ा। मुझको जो आघात पहुँचा है, तुम स्वयं ही समझ सकती हो। मैं तुमको पथ-भ्रष्ट करना नहीं चाहता। ईश्वर तुमको सदा सुखी रखे।

तुम्हारे सुखमें मेरा सुख है ! मैं तुम्हारे रास्तेमें कभी न आऊँगा ।
मैं अब देशभ्रमणको निकलता हूँ । देशसेवामें प्राण-अर्पण कर
दूँगा । ईश्वर जो करता है भला ही करता है । मेरी देश-सेवा-
में एक यही काँटा था वह भी निकल गया । मैंने जो कुछ धृष्टता
की थी, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ ।

तुम्हारा—

प्रकाश

❖ पत्र-पुष्पांजलि ❖

[रचयिता—श्री रामचन्द्रजी शुक्ल 'सरस']

सिद्धि श्रीयुत ! जोग लिखी गोकुल ते प्यारे !
राम राम बंचने श्याम ! गोपाल ! मुरारे !!
कृपा रावरी सौं इतै, सब विधि सब आनन्द !
रहौ द्वारिका में सदा, सकुशल हे ब्रज-चन्द—
—मनावै राधिका ॥ १ ॥

अहो भाग्य है आज, रावरी पाती पाई !
 कैसे हूँ तो भला सुरति, हमरी हू आई !!
 लिख्यौ कि जो अवकास कछु, मिलै न पाती हेत !
 तातैं जनि जानौ घट्यो हमरे हिय ते हेत—
 —सत्य यदुराज सों ॥ २ ॥

लिख्यौ कि रहि-रहि सुरति तिहारी हमको आवै !
 कैसे हू कहुँ कबों चैन चित चपल न पावै !!
 करि सुधि हमरी होत जो, हिय रावरो बिहाल !
 फिर-फिर विनती करि कहौं, इतनी रसिक रसाल—
 —बिसारौ तौ हठ हमैं ॥ ३ ॥

रहौ जौन विधि सुखी, श्याम जू सोई कीजै !
 सुनि-सुनि तुमको सुखी, दुखी हम तौ हू जी जै !!
 विरह-व्यथा वैसेहि दहै, सुनि पुनि तुम्हें बिहाल !
 होत हाल जो, का कहैं, जानत तुम गोपाल—
 —व्यवस्था प्रेम की ॥ ४ ॥

लखि निज हिय में तुम्हें विलोचन को सुख लेती !
 तव सुगना सौं बोलि, खोय रसना दुख देती !!
 रहो सहो सब दुरत दुख, लहि रावरो सँदेश !
 जानि परै नहिं नेक हू, हौ तुम बसे बिदेश—
 —मुदित यातैं हियो ॥ ५ ॥

हम सपनेमें नित श्याम तुम सौं मिलि लेती !
 तबहिं मनोरथ-लता, लगीं कलियाँ खिलि लेती !!

तरनि-त्तनूजा तीर पै, जहँ कदम्ब कल कुब्ज !
नित सुनि लेती बैठि कै, वह मुरली की गुब्ज—
—मधुर 'कानन' बसी ॥ ६ ॥

इतनी चिन्ता तजौ, सौंह है तुम्हें हमारी !
मुदित रहौ तुम नित, चित्त में विपिन-बिहारी !!
हैं तुममें, तुम बसत हौ, हमरे हिये हमेस !
और अधिक अब का लिखैं दरस आस प्रानेस—
—शान्ति अब इति शुभम् ॥ ७ ॥



कृष्ण पक्ष शुभ दुइज दिन, मङ्गल है मधु मास !
दिव्य द्वारिका-नगर में, पहुँचै श्रीहरि पास—
—पत्रिका प्रेम की ॥ ८ ॥



देवदासी

[ले० स्वर्गीय श्री० जयशंकर 'प्रसाद']

प्रिय रमेश !

परदेशमें किसी अपनेसे घर लौट आनेका अनुरोध बड़ा सान्त्वना देता है, परन्तु अब तुम्हारा मुझे बुलाना एक अनिय-
नय-सा है। हाँ, मैं कटूक्ति करता हूँ, जानते हो क्यों ! मैं
झगड़ना चाहता हूँ ; क्योंकि संसारमें अब मेरा कोई नहीं है। मैं
उपेक्षित हूँ। सहसा अपनेकासा स्वर सुनकर मनमें शोभ होता
है। अब मेरा घर लौटकर आना अनिश्चित है। मैंने '.....'
के हिन्दी-प्रचार-कार्यालयमें नौकरी कर ली है। तुम तो जानते
ही हो कि मेरे लिए प्रयाग और '.....' बराबर है। अब
अशोक विदेशमें भूखा न रहेगा ! मैं पुस्तक बेचता हूँ।

यह तुम्हारा लिखना ठीक है कि एक आनेका टिकट लगाकर
पत्र भेजना मुझे अखरता है, पर तुम्हारे गाल यदि मेरे सस्योप
होते तो उनपर पाँचों नहीं तो मेरी तीन उँगलियाँ अपना बिह

अवश्य बना ही देतीं । तुम्हारा इतना साहस ! मुझे लिखते हो कि बेयरिङ्ग पत्र भेज दिया करो ! ये सब गुण मुझमें होते तो मैं भी तुम्हारी तरह.....प्रेसके प्रूफ-रीडरका काम करता होता । सावधान ! अब कभी ऐसा लिखोगे तो मैं उत्तर भी न दूँगा ।

लल्लूको मेरी ओरसे प्यार कर लेना, उससे कह देना कि पेटसे बचा सकूँगा, तो एक रेलगाड़ी भेजूँगा ।

यद्यपि अपनी यात्राका समाचार बराबर लिखकर मैं तुम्हारा मनोरञ्जन न कर सकूँगा, तो भी सुन लो '.....'में एक बड़ा पर्वा है, वहाँ '.....'का देव-मन्दिर बड़ा प्रसिद्ध है । तुम तो जानते होगे कि दक्षिणमें कैसे-कैसे दर्शनीय देवालय हैं, उनमें भी यह प्रधान है । मैं वहाँ कार्यालयकी पुस्तकें बेचनेके लिए जा रहा हूँ ।

तुम्हारा—

अशोक ।

पुनश्च:—

मुझे विश्वास है कि मेरा पता जाननेके लिए कोई उत्सुक न होगा । फिर भी सावधान ! किसीपर प्रकट न करना ।

[२]

“.....”

१०-२-२५

प्रिय रमेश !

रहा नहीं गया, लो सुनो ! मन्दिर देखकर हृदय प्रसन्न हो

गया। ऊँचा गोपुरम्, सुदृढ़ प्राचीर चौड़ी परिक्रमाएँ और विशाल सभा-मण्डप भारतीय स्थापत्यकलाके चूड़ान्त निदर्शन हैं। यह देव-मन्दिर हृदयपर गम्भीर प्रभाव डालता है। हम जानते हैं कि तुम्हारे मनमें यहाँ के पण्डोंके लिए प्रश्न होगा। फिर भी उत्तरीय भारतसे वे बुरे नहीं हैं। पूजा और आरतीके समय एक प्रभावशाली वातावरण हृदयको भारावनत कर देता है।

मैं कभी-कभी एकटक देखता हूँ। उन मन्दिरोंको ही नहीं, किन्तु उस प्राचीन भारतीय संस्कृतिको, जो सर्वोच्च शक्तिको अपनी महत्ता, सौन्दर्य और ऐश्वर्यके द्वारा व्यक्त करना जानती थी। तुमसे कहूँगा कि कभी रूपए जुटा सको तो एक बार दक्षिणके मन्दिरोंको अवश्य देखना। देव-दर्शनकी कला यहाँ देखनेमें आती है। एक बात और है, मैं अभी बहुत दिनोंतक यहाँ रहूँगा। मैं यहाँकी भाषा भलीभाँति बोल लेता हूँ। मुझे परिक्रमाके भीतर ही एक कोठरी संयोगसे मिल गई है। पासमें ही एक कुआँ भी है! मुझे प्रसाद भी मन्दिरसे ही मिलता है। मैं बड़े चैनसे हूँ। यहाँ पुस्तकें बेच भी लेता हूँ। सुन्दर चित्रोंके लिए पुस्तकोंकी अच्छी बिक्री हो जाती है। गोपुरम्के पासहीमें दूकान फैला देता हूँ और महिलाएँ मुझसे पुस्तकोंका विवरण पूछती हैं। मुझे समझानेमें बड़ा आनन्द आता है। पास ही बड़े सुन्दर-सुन्दर दृश्य हैं। नदी, पहाड़ और जंगल—सभी तो हैं। मैं कभी-कभी घूमने भी चला जाता हूँ। परन्तु उत्तरीय भारतके समान यहाँके देव-विग्रहोंके समीप हमलोग नहीं जा सकते। दूरसे ही दीपालोकमें उस अचल मूर्तिकी भाँकी हो जाती है। यहाँ मन्दिरोंमें संगीत और नृत्यका भी आनन्द रहता है। बड़ी चहल-पहल है। आजकल

अवश्य बना ही देतीं । तुम्हारा इतना साहस ! मुझे लिखते हो कि बेयरिङ्ग पत्र भेज दिया करो ! ये सब गुण मुझमें होते तो मैं भी तुम्हारी तरह.....प्रेसके प्रूफ-रीडरका काम करता होता । सावधान ! अब कभी ऐसा लिखोगे तो मैं उत्तर भी न दूँगा ।

लल्लूको मेरी ओरसे प्यार कर लेना, उससे कह देना कि पेटसे बचा सकूँगा, तो एक रेलगाड़ी भेजूँगा ।

यद्यपि अपनी यात्राका समाचार बराबर लिखकर मैं तुम्हारा मनोरञ्जन न कर सकूँगा, तो भी सुन लो '.....'में एक बड़ा पर्व है, वहाँ '.....'का देव-मन्दिर बड़ा प्रसिद्ध है । तुम तो जानते होगे कि दक्षिणमें कैसे-कैसे दर्शनीय देवालय हैं, उनमें भी यह प्रधान है । मैं वहाँ कार्यालयकी पुस्तकें बेचनेके लिए जा रहा हूँ ।

तुम्हारा—

अशोक ।

पुनश्च:—

मुझे विश्वास है कि मेरा पता जाननेके लिए कोई उत्सुक न होगा । फिर भी सावधान ! किसीपर प्रकट न करना ।

[२]

‘.....’

१०-२-२५

प्रिय रमेश !

रहा नहीं गया, लो सुनो ! मन्दिर देखकर हृदय प्रसन्न हो

गया। ऊँचा गोपुरम्, सुदृढ़ प्राचीर चौड़ी परिक्रमाएँ और विशाल सभा-मण्डप भारतीय स्थापत्यकलाके चूड़ान्त निदर्शन हैं। यह देव-मन्दिर हृदयपर गम्भीर प्रभाव डालता है। हम जानते हैं कि तुम्हारे मनमें यहाँ के पण्डोंके लिए प्रश्न होगा। फिर भी उत्तरीय भारतसे वे बुरे नहीं हैं। पूजा और आरतीके समय एक प्रभावशाली वातावरण हृदयको भारावनत कर देता है।

मैं कभी-कभी एकटक देखता हूँ। उन मन्दिरोंको ही नहीं, किन्तु उस प्राचीन भारतीय संस्कृतिको, जो सर्वोच्च शक्तिको अपनी महत्ता, सौन्दर्य और ऐश्वर्यके द्वारा व्यक्त करना जानती थी। तुमसे कहूँगा कि कभी रुपए जुटा सको तो एक बार दक्षिणके मन्दिरोंको अवश्य देखना। देव-दर्शनकी कला यहाँ देखनेमें आती है। एक बात और है, मैं अभी बहुत दिनोंतक यहाँ रहूँगा। मैं यहाँकी भाषा भलीभाँति बोल लेता हूँ। मुझे परिक्रमाके भीतर ही एक कोठरी संयोगसे मिल गई है। पासमें ही एक कुआँ भी है। मुझे प्रसाद भी मन्दिरसे ही मिलता है। मैं बड़े चैनसे हूँ। यहाँ पुस्तकें बेच भी लेता हूँ। सुन्दर चित्रोंके लिए पुस्तकोंकी अच्छी बिक्री हो जाती है। गोपुरम्के पासहीमें दूकान फैला देता हूँ और महिलाएँ मुझसे पुस्तकोंका विवरण पूछती हैं। मुझे समझानेमें बड़ा आनन्द आता है। पास ही बड़े सुन्दर-सुन्दर दृश्य हैं। नदी, पहाड़ और जंगल—सभी तो हैं। मैं कभी-कभी घूमने भी चला जाता हूँ। परन्तु उत्तरीय भारतके समान यहाँके देव-विग्रहोंके समीप हमलोग नहीं जा सकते। दूरसे ही दीपालोकमें उस अचल मूर्तिकी भाँकी हो जाती है। यहाँ मन्दिरोंमें संगीत और नृत्यका भी आनन्द रहता है। बड़ी चहल-पहल है। आजकल

तो यात्रियोंके कारण और भी सुन्दर-सुन्दर प्रदर्शन होते हैं ।

तुम जानते हो कि मैं अपना पत्र इतना सविस्तार क्यों लिख रहा हूँ ? तुम्हारे कृपण और संकुचित हृदयमें उत्कण्ठा बढ़ानेके लिए । मुझे इतना ही सुख सही ।

तुम्हारा—

अशोक ।

[३]

.....?

१७-३-२५

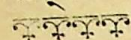
प्रिय रमेश !

समयको उलाहना देनेकी प्रचीन प्रथाको मैं अच्छी नहीं समझता । इसलिए जब यह शुष्क मांसपेशी अलग दिखलाने-वाला, चौड़ी हड्डियोंका अपना शरीर लठियाके बलपर टेकता हुआ, चिदम्बरम् नामका पण्डा मेरे समीप बैठकर, अपनी भाषा-में उपदेश देने लगता है, तो मैं घबरा जाता हूँ । वह समयका एक दुर्दृश्य चित्र खींचकर, अभाव और आपदाओंका उल्लेख करके विभीषिका उत्पन्न करता है । मैं उनसे मुक्त हूँ । भोजन-मात्रके लिए अर्जन करके सन्तुष्ट घूमता हूँ—सोता हूँ ! मुझे समयकी क्या चिन्ता ? पर मैं यह जानता हूँ कि वही मेरा

सहायक है—मित्र है। इतनी आत्मीयता दिखलाता है कि मैं उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। अहा ! एक बात तो लिखना मैं भूल ही गया था। उसे अवश्य लिखूंगा, क्योंकि तुम्हारे सुने बिना मेरा सुख अधूरा रहेगा। मेरे सुखको मैं ही जानूँ। तब उसमें धरा ही क्या है, जब तुम्हें उसकी डाह न हो ! तो सुनो:-

सभा-मण्डपके शिल्प-रचनापूर्ण स्तम्भसे टिकी हुई एक उज्ज्वल श्याम वर्णकी बालिकाको अपनी पतली बाहु-लतासे एक घुटनेकी छातीसे लगाए प्रायः बैठी हुई देखता हूँ। स्वर्ण-मल्लिका-की माला उसके जूड़ेसे लगी रहती है। प्रायः वह कुसुमाभरण भूषिता रहती है। उसे देखनेका मुझे चस्का लग गया है। वह मुझसे हिन्दी सीखना चाहती है। मैं तुमसे पूछता हूँ कि उसे पढ़ाना आरम्भ कर दूँ ? उसका नाम है पद्मा, चिदम्बरम् और पद्मासे खूब पटती है। वह हिरनीकी तरह भिन्नकती भी है। पर न-जानें क्यों मेरे पास आ बैठती है, मेरी पुस्तकें उलट-पलट देती है। मेरी बातें सुनते-सुनते वह ऐसी हो जाती है, जैसे कोई आलाप ले रही हो, और मैं प्रायः आधी बात कहते-कहते रुक जाता हूँ, जैसे कोई संगीत सुन रहा हूँ। इसका अनुभव मुझे तब होता है, जब मेरे दृष्टि-पथसे वह हट जाती है। उसे देखकर मेरे हृदयमें कविता करनेकी इच्छा होती है, यह क्यों ? मेरे हृदयका सोता हुआ सौन्दर्य जाग उठता है। तुम मुझे नीच । सकभोगे और कहोगे कि अभागे अशोकके दरिद्र-हृदयकी स्पर्धा तो देखो ! पर मैं सच कहता हूँ, उसे देखनेपर मैं अनन्त ऐश्वर्यशाली हो जाता हूँ।

हाँ, वह मन्दिरमें नाचती और गाती है। और भी बहुत-सी



हैं, पर मैं कहूँगा, वैसी एक भी नहीं। जो लोग उसे देवदासी पद्मा कहते हैं, वे अधम हैं। वह देववाला पद्मा है।

वही—

अशोक

[४]

.....

२८-३-२५

प्रिय रमेश !

तुम्हारा उलहना निस्सार है। मैं इस समय केवल पद्माको समझ सकता हूँ। फिर अपने या तुम्हारे कुशल-मङ्गलकी चर्चा क्यों करूँ ? तुम उसका रूप-सौन्दर्य पूछते हो। मैं उसका विवरण देनेमें असमर्थ हूँ। हृदयमें उपमाएँ नाचकर चली जाती हैं, ठहरने नहीं पाती कि मैं उन्हें लिपिवद्ध करूँ। वह एक ज्योति है, जो अपनी महत्ता और आलोकमें अपना अवयव छिपाए रखती है, केवल तरल, नील, शुभ्र और करुण आँखें मेरी आँखोंसे मिल जाती हैं। मेरी आँखोंमें श्यामा कादम्बिनीकी शीतलता छा जाती है, और संसारके अत्याचारोंसे निराश इस भँकरीदार कलेजेके वातायनसे वह स्निग्ध मलयानिलके भोंकैकी तरह घुस आती है। एक दिनकी घटना लिखे बिना नहीं रहा जाता।

मैं अपनी पुस्तकोंकी दूकान फैलाए बैठा था। गोपुरम्के समीप ही वह कहींसे झपटी हुई चली आती थी। दूसरी ओरसे एक युवक उसके सामने आ खड़ा हुआ। वह युवक मन्दिरका

कृपा-भाजन एक धनी दर्शनार्थी था। यह बात उसके कानोंके चमकते हुए हीरेके टैपसे प्रकट थी। वह बेरोक-टोक मन्दिरमें चाहे जहाँ आता-जाता है। मन्दिरमें उससे लोगोंको प्रायः कुछ मिलता है। सब उसका सम्मान करते हैं। उसे सामने देखकर पद्माको खड़ी होना पड़ा। उसने बड़ी नीच मुखाकृतिसे कुछ बातें कहीं, पद्मा कुछ न बोली। फिर उसने स्पष्ट शब्दोंमें रात्रिको अपने मिलनेका स्थान निर्देश किया। पद्माने कहा—‘मैं नहीं आ सकूँगी।’ वह लाल-पीला होकर वकने लगा। मेरे मनमें क्रोधका धक्का लगा। मैं उठकर उसके पास चला आया। वह मुझे देखकर हटा तो, पर कहता गया कि ‘अच्छा देख लूँगा।’

उस नील-कमलसे मकरन्द-विन्दु टपक रहे थे ! मेरी इच्छा हुई कि वे मोती बटोर लूँ। पहली बार मैंने उन कपोलोंपर हाथ लगाकर उन्हें लेना चाहा। आह ! उन्होंने वर्षा कर दी। मैंने पूछा—उससे तुम इतना भयभीत क्यों हो ?

“मन्दिरमें दर्शन करनेवालोंका मनोरञ्जन करना मेरा कर्तव्य है। मैं देवदासी हूँ।”—उसने कहा।

“यह तो बड़ा अत्याचार है। तुम क्यों यहाँ रहकर अपनेको अपमानित करती हो।”—मैंने कहा।

“कहाँ जाऊँ, मैं देवताके लिए उत्सर्ग कर दी गई हूँ।”—उसने कहा।

“नहीं-नहीं, देवता तो क्या, राक्षस भी मानव-स्वभावकी बलि नहीं लेता, वह तो रक्त-मांससे ही सन्तुष्ट हो जाता है। तुम अपनी आत्मा और अन्तःकरणकी बलि क्यों करती हो ?”—मैंने कहा।

“ऐसा न कहो, पाप होगा; देवता रुष्ट होंगे—उसने कहा ।

“पापोंको देवता खोजें, मनुष्यके पास कुछ पुण्य भी है पद्मा ! तुम उसे क्यों नहीं खोजती हो ? पापोंका न करना ही पुण्य नहीं । तुम अपनी आत्माकी अधिकारिणी हो; अपने हृदयकी तथा शरीरकी सम्पूर्ण स्वामिनी हो, मत डरो । मैं कहता हूँ कि इससे देवता प्रसन्न होंगे । आशीर्वादोंकी वर्षा होगी ।” मैंने एक साँसमें कहकर देखा कि उसके मस्तकमें उज्ज्वलता आ गई है । वह एक स्फूर्तिका अनुभव करने लगी है । उसने कहा—
अच्छा, तो फिर मिलूंगी ।

वह चली गई । मैंने देखा कि बूढ़ा चिदम्बरम् मेरे पीछे खड़ा मुस्करा रहा है । मुझे क्रोध भी आया, पर कुछ न बोलकर मैंने पुस्तक बटोरना आरम्भ किया ।

तुम कुछ अपनी सम्मति दोगे ?

अशोक

[५]

“.....”

१-४-२५

रमेश !

कल संगीत हो रहा था । मन्दिर आलोक-मालासे सुसज्जित था ! नृत्य करती हुई पद्मा गा रही थी:—

“नाम समेतं वृत संकेतं वादयते मृदु वेणु” ओह !
वे संकेत मदिराकी लहरें थीं । मैं उसमें उभचुभ होने लगा ।

उसकी कुसुम-आभरणसे भूषित अंग-लताके सञ्चालनसे वायु-मण्डल सौरभसे भर जाता था। वह विवश थी, जैसे कुसुमिता लता तीव्र पवनके झोंकेसे। रागोंके स्वरका स्पन्दन उसके अभिनयमें था। लोग उसे विस्मय-विमुग्ध देखते थे। पर न-जानें क्यों मेरे मनमें उद्वेग हुआ, मैं जाकर अपनी कोठरीमें पड़ रहा। आज कार्यालयसे लौट आनेके लिए पत्र आया था। उसीको विचारता हुआ कबतक आँखें बन्द किए पड़ा रहा, मुझे विदित नहीं। सहसा साँयँ-साँयँ, फस-फसका शब्द सुनाई पड़ा, मैं ध्यान लगाकर सुनने लगा।

ध्यान देनेपर मैं जान गया कि दो व्यक्ति बातें कर रहे थे—चिदम्बरम् और रामस्वामी नामका वही धनी युवक। मैं मनो-योगसे सुनने लगा।

चिदम्बरम्—तुमने आजतक उसकी इच्छाके विरुद्ध बड़े अत्याचार किए हैं, अब जब वह नहीं चाहती तो तुम उसे क्यों सताते हो ?

रामस्वामी—सुनो चिदम्बरम्, सुन्दरियोंकी कमी नहीं, पर न-जानें क्यों मेरा हृदय उसे छोड़कर दूसरी ओर नहीं जाता। वह इतनी निरीह है कि उसे मसलनेमें आनन्द आता है। एक बार उससे कह दो कि मेरी बातें सुन ले, फिर जो चाहे, करे।

चिदम्बरम् चला गया और बातें बन्द हुईं। और सच कहता हूँ, मन्दिरसे मेरा मन प्रतिकूल होने लगा। पैरोंके शब्द हुए, वही जैसे रोती हुई बोली—‘रामस्वामी, मुझपर दया न करोगे ?’ ओह ! कितनी वेदना थी उसके शब्दोंमें। परन्तु रामस्वामीके हृदयमें तीव्र ज्वाला जल रही थी। उसके वाक्योंमें

लू जैसी मुलस थी । उसने कहा—पद्मा ! यदि तुम मेरे हृदय-
की ज्वाला समझ सकती तो तुम ऐसा न कहती । मेरे हृदयकी
तुम अधिष्ठात्री हो, तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता । चलो, मैं
देवताका कोप सहनेके लिए प्रस्तुत हूँ, मैं तुम्हें लेकर कहीं
चल चलूँगा ।

‘देवताका निर्माल्य तुमने दूषित कर दिया है, पहले इसका
तो प्रायश्चित्त करो । मुझे केवल देवताके चरणोंमें मुरझाए हुए
फूलके समान गिर जाने दो । रामस्वामी, ऐसा स्मरण होता है
कि मैं भी तुम्हें चाहने लगी थी । उस समय मेरे मनमें यह
विश्वास था कि देवता यदि पत्थरके न होंगे तो समझेंगे कि यह
मेरे माँसल यौवन और रक्तपूर्ण हृदयकी साधारण आवश्यकता
है । मुझे क्षमा कर देंगे, परन्तु मैं यदि वैसा पुण्य परिणय कर
सकती ! आह ! तुम इस तपस्वीकी कुटी समान हृदयमें इतना
सौन्दर्य लेकर क्यों अतिथि हुए ? रामस्वामी, तुम मेरे दुखोंके
मेघमें वज्रपात थे !’

पद्मा रो रही थी ! सन्नाटा हो गया । सहसा जाते-जाते
रामस्वामीने कहा—‘मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता !’ रमेश !
मैं भी पद्माके बिना नहीं रह सकता । मैंने भी कार्यालयमें त्याग-
पत्र भेज दिया है । भूखों मरूँगा, पर उपाय क्या है ?

—अभागा अशोक

*It is a good thing
you require it*

लव लेटर्स
५५५५५५

[६]

.....

Memorandum

२-४-२५

रमेश !

मैं बड़ा विचलित हो रहा हूँ । एक कराल छाया मेरे जीवन-पर पड़ रही है ! अदृष्ट मुझे अज्ञात पथपर खींच रहा है, परन्तु तुमको लिखे बिना रह नहीं सकता ।

मधुसास, जंगली फूलोंकी भीनी-भीनी महक सरिताके कूलकी शैल-मालाको आलिङ्गन दे रही थी । मस्त्रियोंकी भन्नाहटका कलनाद गुञ्जित हो रहा था । नवीन पल्लवोंके कोमल स्पर्शसे नवस्थली पुलकित थी । मैं जंगली जर्द चमेलीके अकृत्रिम कुञ्जके अन्तरालमें बैठा, नीचे बहती हुई नदीके जलके साथ वसन्तकी धूपका खेल देख रहा था । हृदयमें आशा थी । अहा ! वह अपने तुहिन-जालसे रत्नाकरके सब रत्नोंको, आकाशके सब मुक्ताओंको निकाल, खींचकर मेरे चरणोंमें उमल देती थी । प्रभातकी पीली किरणोंसे हेम-गिरिको घसीट ले आती थी; और ले आती थी—पद्माकी मौन प्रणय-स्वीकृति । मैं भी आज वन-यात्राके उत्सवमें देवताके भोग-विग्रहके साथ इस वनस्थलीमें आया था । बहुतसे नागरिक भी आए थे । देव-विग्रह विशाल वट-वृक्षके नीचे स्थित हुआ और यात्री-दल इधर-उधर नदी-तटकी नीची शैल-माला, कुञ्जों, गह्वरों और घाटियोंकी हरियालीमें छिप गया । लोग आमोद-प्रमोद, पान-भोजनमें लग गए । हरियालीके भीतरसे कहीं पिकलू, कहीं क्लॉरेनेट और देवदासियोंके कोकिल-कण्ठका सुन्दर स्वर निकलने लगा । वह कानन नन्दन हो रहा था और मैं उसमें

विचरनेवाला एक देवता । क्यों ? मेरा विश्वास था कि देववाला पद्मा यहाँ है । वह भी देव-विग्रहके आगे-आगे नृत्य-गान करती हुई आई थी ।

मैं सोचने लगा—‘अहा ! वह समय भी आएगा, जब मैं पद्माके साथ एकान्तमें इस काननमें विचरूँगा । वह पवित्र, वह मेरे जीवनका महत्तम योग कब आएगा ?’ आशाने कहा—‘उसे आया ही समझो ।’ मैं मस्त होकर बंसी बजाने लगा । आज मेरी बाँसकी बाँसुरीमें बड़ा उन्माद था । बंसी नहीं, मेरा हृदय बज रहा था । चिदम्बरम् आकर मेरे सामने खड़ा हो गया । वह भी मुग्ध था । उसने कभी मेरी बाँसुरी नहीं सुनी थी । जब मैंने अपनी आसावरी बन्द की, वह बोल उठा—‘अशोक, तुम एक कुशल कलावन्त हो ।’ कहना न होगा कि वह देवदासियोंका सङ्गीत-शिक्षक भी था । वह चला गया और थोड़ी ही देरमें पद्म-को साथ लिए आया । उसके हाथोंमें भोजनका सामान भी था । पद्माको उसने उत्तेजित कर दिया था । वह आते ही बोली—‘मुझे भी सुनाओ’ । जैसे मैं स्वप्न देखने लगा । पद्मा और मुझसे अनुनय करे ! मैंने कहा—‘बैठ जाओ ।’ और जब वह कुसुम-कङ्कण-मण्डित करोंपर कपोल धरकर मल्लिकाकी छायामें आ बैठी तो मैं बजाने लगा । रमेश, मैंने बंसी नहीं बजाई । सच कहता हूँ, मैं अपनी वेदना श्वासोंसे निकाल रहा था । इतनी करुण, इतनी स्निग्ध, मैं ताने ले-लेकर उसमें स्वयं पागल हो जाता था । मेरी आँखोंमें मद-विकार था, मुझे उस समय अपनी पलकें बोज मालूम होती थीं !

बाँसुरी रखनेपर भी उसकी प्रतिध्वनिका सोहाग वन-लक्ष्मी-

सप्रेम बन्दे ! यही बन्दना तुमने मुझे सिखाई है । कल
फिर लिखूँगा ।

तुम्हारा ही,
कृष्ण

२

बरकल

५-७-१९२३

देवि,

सप्रेम बन्दे ! चलते समय तुमसे अच्छी तरहसे बिदा भी न हो सका । लोग थे । मैं बद्दहवास, भल्लाया हुआ, क्षोभ, संताप तथा वेदनासे खिन्न और व्यथित; ऊपरसे इस बातकी कोशिश कि मेरे कलेजेमें उथल-पुथल मचानेवाले बक्कलको कोई भाँप न ले । इन सबके कारण मेरी जो दशा थी, उसमें चलते-चलाते मैं जी भरकर अन्तिम बार तुम्हें निहार भी न सका । सिर घुमाये, आँखें नीचे गड़ाये, भरी हुई आवाजमें मैंने तुमसे नमस्कार किया, और जल्दीसे भाग गया । न भागता तो रो पड़ता । सवारीपर बैठते ही आँसू बह पड़े । कबतक रोया किया, मुझे याद नहीं ।

रोता था और उन बातोंको बिसूरता जाता था, जो पिछले दिनोंमें बीती थीं । प्रेम-दान देकर पहले तो स्वर्ग दिखाया, लेकिन बादमें ऐसी बातें सुनाईं कि उनकी चोट मेरे कलेजेको रह-रहकर तेज छुरीकी तरह करोती है । तुमने अपने साथ पाप किया

और मुझे अविश्वासी कहकर सदाके लिए कलंकित । इसीलिए मैं अपनेको दण्ड देने जा रहा हूँ । अकेला, निर्जनमें बैठकर, अपने प्रेम और अपने हृदयको टटोलूँगा कि देखूँ, उसमें कहाँ और कितना मैल है, जिसके कारण ऐसी घटना हुई । बताओ, क्यों तुमने इतना घोर अनर्थ किया ? क्यों अपने मुँह अपनी सफाई देखकर अपनेको जलील बनाया और मुझे काँटोंमें घसीटा ? मेरे लिए जो भी अपशब्द तुमने कहे थे उनका मुझे क्षणिक मलाल जरूर हुआ था; लेकिन मुझे गालियाँ देने और मुझपर अपलोक लगानेसे यदि तुमको मजा मिलता है तो, जैसा मैंने तुमसे कहा था, मुझे कोई ऐतराज नहीं है । मैं तुम्हारा हूँ । अपनी वस्तुको जिस तरह चाहो बरतो—किसी दूसरेको बीचमें बोलनेकी क्या जरूरत ? कोई बोले तो उसे हजार सुनाओ, मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा, पर तुम्हें वह अधिकार कहाँ कि तुम अब अपनी बदनामी करती फिरो । तुम तो मेरी हो । मेरे लिए यह असह्य है कि मेरी देवीको कोई भी कुछ कहे-सुने । तुम्हें भी अब यह अधिकार नहीं रहा । तुम्हारी इसी बेजा हरकतसे मुझे अपार दुःख हुआ है । मैं घण्टों रोता रहा हूँ । इस समय भी उसकी यादसे काँप उठता हूँ ।

कल रातको सोनेके लिए लेटा तो, पर रात जैसे कटी, मैं ही जानता हूँ । एक बार तुमने कहा था कि सपनेमें तुमने मुझे कई दिन देखा । तुम्हारे लिए यह नई बात होगी । मेरे सामने तो बरसोंसे सोते-जागते तुम्हारी मूर्ति विद्यमान रहती है । मैंने यह बात तुमसे नहीं कही । कहनेकी जरूरत भी न थी । मैंने कब तुमसे अपने प्रेमका बखान किया है ~~कहना भी अगर~~

चाहा तो कह न पाया। दिलकी बात न-जानें क्यों, दिलहीमें रह जाती है। गलस-तो बहुत-सी बातें निकलती हैं, पर हृदय मूक ही रहना प्रसन्न करता है।

कल रातको कई बार सोनेकी चेष्टा की, पर नींद न आई। रह-रहकर पिछली बातोंका ताँता स्मृतिके चौगानमें बँधता, विलीन होता और फिर बँधने लगता। इसी उधेड़-बुनमें सारी रात गुजरी। बहुत रात गये, जब झपकी लगी तब तुम, आँखोंके सामने हँसती हुई, व्यंग-भरी निगाहोंसे मुझे उद्विग्न करने लगीं। उठा, जल्दी-से उठा कि दौड़कर तुम्हारे चरण चाप लूँ, चूम लूँ, पर उठते ही आँख खुली और सपना सपनेमें विलीन हो गया। हाय! जागरण भी तुम्हारा साथी बनकर तुम्हारा बदला मुझ गरीबसे चुकाता है। × × ×

आज दिनभर तुम्हारे और अपने बीचकी बातोंपर विचार करता रहा। यदि यही हाल बना रहा तो पागल हो जाऊँगा। इसलिए सोचता हूँ कि स्वस्थ—स्वस्थकी एक ही रही!—चित्तसे बैठकर इस विषयपर अपने विचारोंको स्थिर करूँ। आगे भी तो साथ रहना ही है! मुझे अपना कर्तव्य निश्चित कर लेना चाहिए। इसके लिए यह जरूरी है कि पुरानी बातोंको एक बार दोहरा जाऊँ।

कबसे हमदोनोंकी प्रेम-कहानीका आरम्भ होता है? इसका जवाब न तुम दे सकती हो और न मैं। तुमने खुद अपने पत्रमें यह लिखा था, 'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। कबसे, कुछ ज्ञात नहीं।' और मैं तो कम-से-कम नौ सालसे तुम्हारा पुजारी रहा ही हूँ। तुम्हें याद होगा कि एक बार तुम्हारी दाहनी कलाईमें चोट लगी

थी और खून बह निकला था । मैं पास ही बैठा था । खून देख-कर चौंका और दौड़कर पट्टी बाँधी । इतना व्यथित और व्याकुल हो गया था कि पागल-सा हो उठा । उसी पगलाहटमें मैं नत-मस्तक होकर तुम्हारी कलाईको एकाएक चूमने लगा । इस चुम्बन-में कितनी भक्ति थी, कितना सम्मान उससे टपकता था ! वह तो एक वशंबद भक्तकी, अटल भक्तिकी प्रतिज्ञा थी—प्रेमकी शपथ और आमरण आत्म-समर्पणका प्रण था । यूरोपमें पुराने जमानेसे लेकर आजतक यही प्रथा चली आई है कि रानियों-महारानियोंके कर-कमलोंको भक्त चूमकर अपनी अनन्य भक्तिका प्रदर्शन करता है । याद है, हमदोनों उस समय थर-थर काँपने लगे थे । इसके बाद मैंने फिर तुमसे कर-चुम्बनकी प्रार्थना की । उदारतासे तुमने मुझे बायाँ हाथ दिया, जिसे मैंने सत्कारके साथ, विनम्रताके साथ चूमा था । लेकिन उसके बाद, तुम खिंच गई । क्यों, मुझे नहीं मालूम । चोट तो लगी, पर मैंने उस घड़ीसे फिर कभी सालोंतक न बचनसे, न निगाहसे और न किसी चेष्टासे तुम्हें छेड़ा । क्योंकि मैं ऐसे प्रेमका लोभी नहीं, जो बरबस बलसे छीना जाय । प्रेमका सौदा खुले बाजार होता है, परवशताका वहाँ सवाल नहीं । जिसको जी चाहे दे, न जी चाहे न दे । रोक-थाम, छीना-भपटी-का वहाँ काम नहीं । मैंने देखा कि तुम्हारी कृपा क्षणिक थी—भादोंकी अँधियारी घटामें बिजुली चमकी और चमककर एक पलके लिए उजियाला कर गई और फिर वही घटाटोप, हाथ-टटोल अँधियारा छा गया । अपने करमको ठोंका, पर घायल होते हुए, तुम्हें अपने दुःख, अपनी पीड़ाका हाल सुनाकर मैंने फिर कभी न सताया । है यह सच या नहीं ? बताओ ! चुप

क्यों हो ? चुप्पीसे काम न चलेगा । न बोलोगी तो गवाही पेश करूँगा । याद है, पत्र लिखनेके दूसरे दिन जब तुमसे मेरी बातें हुई थीं, तब तुम ऊपरकी सब बातोंको सही मान चुकी हो ।

हमदोनोंके प्रेमका बीज उसी दिन बोया गया था । चुम्बन, कम्पन, भक्तिका दान और उसकी स्वीकृति—सब उस उद्देश्य-सिद्धिकी सहायक क्रियाएँ थीं—मन्त्रको जगानेके विधान थे ।

बीजको हृदयके भीतर गाड़कर तुम और मैं, एकदमसे या थोड़े समयके बाद, उसे भूल-से गये । पर वह न मरा और न सड़ा । किसने उसे सींचा और प्रतिकूल परिस्थितियोंमें उसकी रक्षा की, न तुम्हें मालूम और न मुझे ही ज्ञात है । पृथ्वीके गर्भमें या माताके उदरमें, बीजकी रक्षाका प्रबन्ध जैसे प्रकृति करती है, वैसे ही हृदयके गर्भमें प्रेमके बीजकी देख-रेख भी कोई-न-कोई शक्ति अवश्य करती होगी । उसीकी संरक्षतामें वह संसारसे अदृष्ट और लोगोंके अनजानमें पनपा—उसमें अङ्कुर निकला । इसीलिए तुम कहती हो कि यह तुम्हें ज्ञात नहीं कि कब, कहाँ, कैसे प्रेम-मेरे लिए प्रेम—तुम्हारे हृदयमें अङ्कुरित हुआ । प्रकृति अपने सारे काम लुक-छिपकर परदेके अन्दर अन्धकारमें करती है । उसके अङ्कुर ही हमें दिखाई देते हैं । हमारे जीवनके संस्कारोंकी यही जन्म-कथा है । इसीको लोग भाग्य, प्रारब्ध या पिछले जन्मके सञ्चित कर्मोंका फल कहते हैं । कौन जाने कि यदि तुम्हें उस समय इस बीजके बोनेका पता चल जाता तो तुम उसे निकालकर फेंक न देतीं और फिर बादकी सारी घटनाओंका क्रम ही एकदमसे बदल जाता लेकिन विधनाके मनमें तो कुछ और ही था । मुझे तुम्हारा प्रेमी बनाना उसने ठान लिया था । देवि,

भाग्यकी रेखाको आजतक मिटानेमें कौन समर्थ हुआ है ? हम दोनों संसारके अदृष्ट, अव्यक्त, बहुत ही पहले, परन्तु अत्यन्त मजबूत डोरोंसे एक दूसरेके साथ कसकर बाँध दिये गये हैं। उन्हें तोड़कर आजाद होनेकी सारी चेष्टा वैसे ही विफल होगी, जैसे चुम्बकके आकर्षणसे लोहेका भागना या दीप-शिखासे पतङ्ग-को बचानेका प्रयत्न। हम एक दूसरेके लिए जहाँ चुम्बक और दीप-शिखा हैं, वहाँ लोहा और पतङ्ग भी हैं। (करमगति टारे नाहिं टारै) दीनतासे, श्रद्धाके साथ मैं तो उस आदि-शक्तिको नमस्कार करता हूँ, जिसने मुझे तुम्हें दिया, और तुम्हें पाकर मैं तो सन्तुष्ट हूँ। क्यों दिया, इसकी उधेड़-बुनमें पड़कर व्यर्थकी माथापच्ची करनेकी हमें क्या जरूरत ? दर्द-दिल ही क्या कम है, जो ऊपरसे सिर-दर्द भी बैठे-बैठाये मोल लूँ ?

एक और भी पहलू है, जिससे इस बाजके अज्ञात रूपमें परिस्फुटनका महत्व हमारी आँखोंके सामने स्पष्ट हो जाता है। यदि बीज जमीनके ऊपर पड़ा रहे तो उसे चारों तरफसे खतरा ही खतरा रहेगा। चिड़ियाँ उसे चुन लें, गर्मीकी कड़ाकेकी धूप उसे सुखा डाले, बरसातकी झड़ी उसे बहा ले जाय और सड़ा डाले, जाड़ेकी ठण्डक और पाला-ओस उसे ठिठुरा सकती है। इसी तरहसे हम दोनोंके प्रेमको—यदि दुनिया उसे उगते देखती—तो पड़ोसियोंकी हँसी, घरवालोंकी नाराजी, स्वजनोके आँसू, लोक-लाजकी फिड़की और सौतोंकी डाह उसे भला कहाँ पनपने देती ? पलमें उसे रौंद-राँदकर खत्म कर डालती। सच कहना, अमानुषिक माताकी तरह तुम्हीं क्या उसका गला न घोंट देती ? लेकिन अब जब उसने काफी जड़ें छोड़ दी हैं और वे खूब मज-

बूत भी हो गई हैं, तब न तो तुम इस पौधेको समूल उखाड़कर फेंक ही सकती हो और न कुल्हाड़ीसे उसे काट डालनेहीको तुम्हारा जी चाहता है। हृदयके रक्तसे पाला-पोसा, हृदयके जीते तन्तुओंमें वह इतना लिपट गया है कि जैसे जीता नाखून कोई नहीं कटवाता, वैसे ही तुम अब उसे काटकर फेंक नहीं सकती। ठीक ही हुआ, जो तुम्हें यह नहीं मालूम कि कबसे तुम मुझे प्यार करने लगीं। नहीं तो मुझे भय है कि तुम उसे बढ़ने न देतीं और तब मैं फिर तुम्हारी खोजमें जन्म-जन्मान्तरोंतक इधर-उधर भटकता, खाक छानता फिरता। अब मिल गई हो, देखूँ तो सही कि तीन लोकमें वह कौन शक्ति है, जो तुमसे मुझे जुदा कर सकती है या मेरे जीते-जी कैसे कोई दूसरा तुमपर अधिकार जमा सकता है ?

तुम बदल जाओगी ? असम्भव ! तुम्हें मैं पहचानता हूँ। तुम्हारी प्रकृति पक्के पत्थरसे अधिक दृढ़ है। कोई हँसी-खेल नहीं कि उसपर अङ्कित चित्रको कोई मिटा सके। तुम न नदीकी धार हो और न पुलिनकी रेणुका, जिसपर चित्र खिंचा नहीं कि बिगड़ गया। तुम सच्ची हो, बातकी धनी हो, जल्दी भूलतीं नहीं। जिसे पकड़ा उसे सदाके लिए पकड़ लिया। यह न समझना कि मैं तुम्हारी तारीफ चापलूसीसे कर रहा हूँ। नहीं देवि, मैं यदि तुमसे झूठ बोलना भी चाहूँ तो नहीं बोल सकता। प्रेम और सत्यमें अन्यतम सम्बन्ध है। दोनों एक ही वस्तुके दो पहलू हैं। जो मैं कहता हूँ, वह सत्य है। मैं तुम्हारा पुजारी हूँ, इसलिए कि तुममें अद्भुत नैतिक गुण हैं। रूप भी है, जिसमें अजीब तरहकी मादकता भरी है। परन्तु मैं वह भौंरा नहीं, जो ऊपरी रूपका

लव लेटर्स

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

उपासक हो। भौंरा भी चम्पासे दूर ही भागता है। क्या मैं भौंरे-से भी गया-गुजरा हूँ कि चञ्चल सौंदर्यकी तलाशमें गुणोंके अचल (स्थायी) लावण्यको तुच्छ समझूँ? मुझे तुम्हारा शरीर प्यारा है, बहुत प्यारा है; परन्तु प्यारा है इसीलिए कि मैं तुम्हारी अन्तरात्माका प्रेमी, पुजारी, उपासक—जो कहो सो—हूँ। सच मानो, तुम्हारी नैतिक विशिष्टता इतनी अधिक मुझे प्यारी है कि केवल रूपकी अप्सराको मैं तुम्हारे पद-रजके मोलमें हेय समझता हूँ। आगे चलकर दिखा दूँगा कि जो मैं कहता हूँ वह ठीक है या नहीं। इसीलिए मैं तुम्हारे रूपको कम प्यार नहीं करता, परन्तु तुम्हारी आत्माका अधिक प्यार करता हूँ, जिसकी महज छाया बाहरी कान्ति है।

बहक गया। माफ करना। चित्त चञ्चल हो रहा है। उसपर मेरा कोई वश नहीं। अङ्कुश तो तुमने मेरे हाथसे छीन लिया, उसे सँभालूँ तो कैसे?

हाय! क्या करूँ? बीच-बीचमें क्षीण लपट-सी मेरे सारे शरीरसे निकलने लगती है। तुम्हारे भयको इस कागजपर देखकर वह कटु-मधुर वेदना टीसने लगती है कि न मरते बनता है और न जीते। हे देवि, तुम कहाँ हो? क्यों मुझे तुमने अपने चरणोंसे हटा दिया? मुझसे कोई अपराध जान या अनजानमें तो हुआ नहीं। यदि हुआ भी, तो फिर क्यों इतनी रूठ गईं? जब अपनाया था तभी तुम्हें मालूम था कि मैं कितना दुर्बल हूँ और कितनी बार ठोकर खाकर गिर चुका हूँ। सब कुछ जानकर, तुमने मुझे हाथ बढ़ाकर अपनी ओर खींचा। तब क्यों रूठती हो, खफा होती हो। भयसे आज भी कलेजा काँप रहा है। देवि, देवि,

दया करो ! बहुत रुलाया । कब तक रुलाओगी ? प्रेम तो क्षमा-
का नाम है । अनन्त प्रेममें अनन्त क्षमा है । तुम्हींने तो यह पाठ
मुझे पढ़ाया और अब तुम्हीं उसे भुला रही हो । मैंने तो तुमसे
एक बार नहीं, अनेक बार कहा है कि मुझ निर्बलका तुम्हीं बल
हो, मुझ अनाथको तुम्हीं सनाथ बना सकती हो । मुझमें जो दोष
हैं, उन्हें अपने प्रेम और सहनशीलतासे तुम्हीं दूर कर सकती हो ।
छोड़ दोगी तो मैं और भी नीचे गिर जाऊँगा । मेरी मुक्तिकी
आस तुम हो । तुम्हीं मेरी जीवन-नौकाकी कर्णधार बन सकती
हो । न छोड़ो, न त्यागो । अपना लो ; प्यारी, प्रिये, अपना लो ।
तुम मुझे सुधारो ! जो कहो करूँगा ; जैसे कहो रहूँगा । लेकिन
अपने पास तो रहने दो । पापीको भगवान् भी उठाता, उबारता
है । फिर, तुम क्यों मेरे उद्धारकी चेष्टासे हाथ खींच रही हो ?
प्रभो, स्वामिनि, दयानिधे, कुछ तो दया करो । अधिक नहीं, चरण
ही छू लेने दो । मेरे लिए तुम्हीं धर्म हो, कर्म हो । तुम्हीं स्वर्ग हो
और स्वर्गकी सच्ची साक्षी हो । मैं ईश्वरमें विश्वास करता हूँ,
क्योंकि मेरा तुममें विश्वास है । जिस दिन तुमसे विश्वास हट
जायगा या तुम मेरे साथ दगा करोगी, उसी दिनसे मैं समझूँगा
कि विश्वमें धर्म नहीं, स्थिरता नहीं, सत्य नहीं और प्रेम नहीं—
सब ढोंग है, ढकोसला है, कल्पनाका प्रपञ्च है, स्वार्थियोंकी दूसरों-
को ठगनेकी चाल है । तुम्हीं मेरे भविष्यकी आशा हो और उसी
भविष्यकी तुम्हें शपथ है कि तुम मेरे साथ छल न करो, कपट न
करो । यदि करोगी—? नहीं, नहीं, दुनिया उठ जाय, सूरज सदा-
के लिए अस्त हो जाय, आग जलाना बन्द कर दे और वायुमें
गति न रहे, परन्तु तुम छल न करोगी, न करोगी । तुम्हारा सत्य

अटल है—उतना ही अटल—अचल है, जितना मेरुदण्ड । तुम बातको निबाहना जानती हो । नेहकी मर्यादाका अगर तुम न समादर करोगी, तो दुनियामें और कौन करेगा ? सप्रेम बन्दे !

तुम्हारा दीवाना,

कृष्ण

३

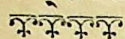
८-७-१९२३

मेरी राधे,

सप्रेम बन्दे ! कितना रुखा-सूखा यह अभिवादन है । मन तो चाहता है कि ध्यानमें तुम्हें अपने अङ्कमें भरकर सिरसे पैर-तक तुम्हारे ऊपर चुम्बनोंकी वर्षा करूँ, लेकिन तुमने मना किया है कि ऐसा मैं न करूँ । मन पापी है, माफ़ करो । पढ़ाये हुए सुएकी तरह मैं भी वही कहूँगा जो तुमने मुझे सिखाया है—सप्रेम बन्दे ! अब तो सन्तुष्ट हुई ? देखो तो मैं कितना पटु शिष्य हूँ ! इसपर भी तुम प्रसन्न नहीं होतीं । अब तो खुश हो जाओ । कहती हो कि खुश हो । तो, आओ, हियेसे मुझे एक बार—बस, एक बार—लगा लो । फिर, वही भूल ? खता हुई, क्षमा करो । न्यायशीले, दोष तुम्हारा है कि मैं रह-रहकर बहकने लगता हूँ ; तुममें अजीब जादू है । इस समय मेरे सामने खड़ी, तुम अपनी आँखोंको ऐसे अद्भुत ढङ्गसे नचा रही हो कि उन्हें देखकर मैं चन्मत्त हो जाता हूँ । आँखोंमें अप्रसन्नता तो प्रत्यक्ष है, परन्तु

उसके पीछे गुप्त मुस्कान और निमन्त्रण भी तो साफ-साफ झलक रहे हैं। निर्दयी कहींकी ! पहले फुसलाना, इशारेसे बुलाना और फिर मुकर जाना—यह तुम्हींको छफ़ता होगा। इसीको प्रेम यदि कहती हो तो कहो; दुनिया इसे किसी दूसरे नामसे पुकारती है। बिल्ली भी, कहते हैं, चूहेके साथ कभी-कभी इसी तरहका निष्ठुर खेल खेला करती है। दिन हैं, खेल लो। मुझे शिकायत करनेका अधिकार ही क्या ? जब प्रेमका सौदा किया तब हृदय तुम्हारे हाथ सौंपा और जवान काटकर पासंगेमें डाल दी थी। बे-जवान हूँ, फरियाद करूँ तो कैसे ? और यदि इशारोंसे फरियाद करूँ भी तो उसे सुनने कौन लगा ? ऐसी दशामें चुप रहना ही उचित है।

तीन दिन पत्र नहीं लिख सका। क्षमा चाहता हूँ। इसके दो कारण हैं। एक तो सफ़रमें दो दिन निकल गये, तब कहीं वहाँ पहुँचा, जहाँपर ठहरनेका निश्चय मैंने किया था। तुम्हें भी न बताऊँगा कि इस स्थानका नाम क्या है ! दुनियाके लिए तो मैं लोप हो ही गया हूँ। दूसरे, ये पत्र तुम्हें भेजे भी नहीं जाते। ये तो २४ घण्टेमेंसे एक घण्टे तुम्हारे साथ बैठकर बात कर लेनेकी हविशको मिटानेके साधन-मात्र हैं। दिन-रात अकेले बैठे रहनेसे जी घबराने लगता। दिलकी तपन, मनकी चञ्चलता, प्रेमकी आतुरताको कम करनेकी यह एक औषधि है। कुछ शांति मिल जाती। थोड़ी देर यही समझने लगता हूँ कि यदि तुम्हारे पास नहीं हूँ, तो इन पत्रोंद्वारा मैं तुमसे रोज एक बार मिल तो लेता हूँ। यही क्या थोड़ा है ? यदि सचमुच मैं रोज तुम्हें पत्र भेज सकता तो तूफ़ान या भूकम्पमें भी मैं तुम्हें खत लिखता। लेकिन दुर्भाग्यसे मेरे करममें इतना बड़ा सुख नहीं लिखा है। इसलिए



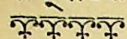
न लिखनेसे किसीका कुछ बना बिगड़ा नहीं। रेलके भग्भङ्गमें लिखना असम्भव था। और जहाँसे रेलको छोड़ा, वहाँ से काफी पैदल चलना था। आज वहाँ पहुँच गया, जहाँ अब चिमटा गाड़, कुछ दिनोंके लिए मैं धूनी रमाने जा रहा हूँ। कोई पास-पड़ोसमें नहीं है। एकदम निर्जन स्थान है। तुम्हारी स्मृति मेरे साथ है। किसी दूसरे साथीकी मुझे जरूरत नहीं। तुम्हीं तो मेरे लिए सम्पूर्ण विश्व हो। तुम्हारे बिना सारा जगत् मेरी आँखोंमें भाँय-भाँय करते हुए मरघटसे भी अधिक निर्जन है। अब नियमपूर्वक शामको चार बजे प्रतिदिन तुम्हें पत्र लिखा करूँगा। ठीक एक घण्टे लिखूँगा। क्या कभी वह दिन भी आयेगा, जब ये पत्र तुम्हारे पास पहुँचेंगे और तुम इन्हें पढ़ोगी। आशा कम है, लेकिन यदि कभी इनके पहुँचनेकी नौबत आ जाय, तो इन्हें करुणाकी दृष्टिसे देखना और दयाके दो वूँद आँसू इनके लिखने-वालेके नामपर बहाना, जो आज दिन तुम्हारे प्रेमके कारण बिया-वान जंगलमें बैठा-बैठा तुम्हारे नामका अलख जगा रहा है। याद करना कि जितना वह तुम्हारा प्यार करता है, उतना कभी किसी दूसरेने किसी रमणीका प्यार न किया और न आगे कभी कोई करेगा।

पिछले पत्रमें मैंने तुम्हें अपने सम्बन्धकी कहानी कहनी शुरू की थी। लेकिन बीजके बोनेके आगेकी कथा वहाँ मैं न कह पाया था। जहाँसे बातोंका तार टूटा था, वहींसे, अब मैं कथाको फिर छेड़ता हूँ।

जिस घटनाका उल्लेख मैं कर चुका हूँ, उसे हुए आजसे कमसे-कम छः साल बीत गये। इस अरसेमें हम दोनोंका एक दूसरेके

साथ बहुत ही साधारण व्यवहार रहा। परस्पर सौजन्य था, सम्मान था—स्नेह भी था। इससे अधिक तो कभी प्रकट नहीं होने पाया। दो घटनाओंका जिक्र यहाँपर कर देना अनुचित न होगा, क्योंकि उनसे अब पता चलता है कि हम दोनों किस ओर वह रहे थे। तीन सालकी बात है, तुम मुझसे अकेलेमें मिलते भिन्नकती थीं। यदि कोई चीज भी देनी होती थी तो हाथको जल्दीसे खींच लिया करती थीं। मानों यह डर लगा रहता था कि कहीं मैं उसे पकड़ न लूँ। लेकिन धीरे-धीरे तुम्हारी यह शक्का दूर हो गई। तुम्हें विश्वास होने लगा कि मैं इतना नीच नहीं हूँ कि छीना-भपटी करूँ।

इसके सालभर बाद मैं एक भारी विपत्तिमें पड़ गया था। मेरे प्राणोंकी बाजी उसमें लग चुकी थी। तब तुमने उदारतासे, मेरी प्रार्थनापर, मेरी सहायता की और मेरे प्राण तथा मेरी इज्जत दोनोंको बचाया। तुम्हारे इस उपकारका मेरे ऊपर जो असर हुआ, उसीको लक्ष्य कर मैंने कई बार कहा था कि इस एहसानके बदले मैं सारी जिन्दगी तुम्हारी सेवा करूँगा। तुमने तो तभी मुझे सब दिनके लिए खरीद लिया था। कौन जानता था कि सौदा करनेमें भी तुम अपूर्व उदारता दिखाकर मुझ कंगालको सदाके लिए शर्मा दोगी। मुझे खरीदा तो था अपने उपकारके बदलेमें; लेकिन इतना देकर भी तुम्हें सन्तोष न हुआ। फैयाजी की हद कर दी, जब तुमने बदलेमें अपने आपको भी मुझे दे डाला। धन्य हो देवि ! धन्य ! परोपकार, उदारता, दानशीलता—सबको तुमने लज्जित कर दिया। ऐसी अनुपम राधापर मैं यदि सर्वस्वको भी निछावर कर दूँ—अपनी आत्माको, अपने धर्मको,



अपने भविष्यको, अपने अनन्त जन्मोंको—तो भी पासंगके बराबर भी वह न उतरेगा। इसीलिए लज्जा और शोकसे मेरा सिर तुम्हारे सामने उठ नहीं पाता। क्या दूँ, क्या करूँ, जिससे तुम्हारे इस ऋणसे उच्छ्रय हो सकूँ ? मेरे पास जो कुछ था, उसे तो बिन-बिनकर तुमने लूट लिया, और उसके बाद, ऊपरसे इतने भारी-भारी उपकारोंके बोझको मेरे सिरपर लाद दिया। जलेपर नमक छिड़कना इसीका नाम है।

मैं तुच्छ हूँ, अपनी तुच्छता जानता भी हूँ। लेकिन अपनी निगाहोंमें, सच मानना, मैं इतना तुच्छ कभी न जँचा था, जितना तुम्हारी इस अपूर्व करुणापूर्ण उदारताके बाद। लेकिन इस नीचा देखनेमें भी आनन्द है, गौरवकी अनुभूति है। दुनिया मुझे निर्धन, निकम्मा और नगण्य समझे तो समझे। तुम्हारे प्रेम-प्रसादको पानेके बाद तो मैं अपनेको संसारमें सबसे अधिक भाग्यवान समझने लगा हूँ। जो चाहता है कि तुम्हारे चरणोंपर नत-मस्तक होकर तुम्हारी बन्दना करूँ। है मञ्जूर ?

इस घटनाके एक साल बाद, दूसरी घटना हुई। तुम्हें याद होगा कि सन् १९२१ में खिलाफत और सत्याग्रहकी आँधी सारे देशमें आई थी। मैं नौकर था। तुम स्कूलमें थीं। सब छोड़-छाड़-कर मैं जेल चला गया। वहाँसे जब लौटा तब तुम्हारा इम्तिहान करीब था। तुमने किसीसे कहलाया कि महीने दो महीने मैं तुम्हें पढ़ा दूँ। पहले तो मुझे यह बात हँसी-सी मालूम हुई। लेकिन तुमने कई बार दूसरोंकी जबानी इसी बातको दोहराया। तब मैंने हँसकर कहा कि 'खुद क्यों नहीं कहती हो देवि ! कहकर आजमा लो कि तुम्हारा मेरे ऊपर कितना अधिकार है और कहाँतक मैं

तुम्हारी सेवा करनेको तैयार हूँ ।' जवाबमें तुरन्त तुमने कहा—
'कहती तो हूँ, पढ़ा दीजिए ।' मैंने कहा—'पढ़ा दूँगा, पर एक
बात सुन लो ।' 'सुनती हूँ—कहिए न ।' बात काटकर मैं बोल
उठा—'जल्दी क्या है ? कह दूँगा ।' वहींपर यह बातचीत समाप्त
हो गई ।

एक-दो दिनके बाद तुमने फिर वही बात छेड़ी । मैंने कहा—
'मुझे एक बार जेल फिर जाना है । साथियोंसे कह चुका हूँ ।
यदि कहो तो जेल न जाऊँ ।' तुमने कहा—'यदि ऐसी बात है
तो अवश्य जाओ । मैं खुद जाती, यदि घरवालोंकी रुकावट न
होती, पर मजबूर हूँ । तुम जरूर जाओ ।' मैंने हृदयसे तुम्हें
प्रणाम किया और तुम्हारी बीरताको मन-ही-मन सराहा । तुम्हारी
आत्माकी एक खूबीका और पता उस दिन लगा । मेरी श्रद्धा
और भक्ति तुम्हारे चरणोंमें अत्यधिक बढ़ गई ।

मैं सालभरके लिए जेल गया । सजा तो काफी लम्बी-चौड़ी
हुई थी । परन्तु १९२३ के मईमें एक सालके ऊपर सजा भुग-
तनेके बाद बीमारीके कारण मैं मुक्त कर दिया गया । यह दूसरी
जेल-यात्रा थी !

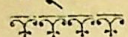
जेलका हाल मैं लिखने नहीं बैठा हूँ । इसलिए जेल-जीवनकी
कोई बात न लिखूँगा । पर एक बात तो कहनी पड़ेगी, क्योंकि
उसका तुमसे घना सम्बन्ध है । जेल जानेके पहलेहीसे मेरे दिल-
में तुम्हारे प्रति श्रद्धा तो थी, लेकिन वह पुराने प्रेमका महज
रूपान्तर थी । प्रेम धीरे-धीरे बढ़ता और गढ़ियाता गया । ज्यों-
ज्यों तुम्हारी आन्तरिक भलाइयोंका मुझे बोध होने लगा, त्यों-त्यों
वह प्रेम भक्तिमें बदलने लगा । तुम्हारे अद्भुत गुणोंके खिंचावमें

इतना बल था कि यदि इच्छा न भी होती तो मैं लाख चेष्टा करनेपर भी तुम्हारे चरणों तक नत-मस्तक पहुँच जाता। लेकिन उसे कैदी बनानेमें किसीको क्या कठिनाई हो सकती है, जो खुद ही कैदी बननेको कमर कसे तैयार बैठा हो। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे गुण-लावण्यने मेरे ऊपर अकथ जादू किया। इसीके अभावने मुझे, तुम्हें बता चुका हूँ, किसीसे विमुख कर दिया था। X X X जाने भी दो, इन गड़े मुर्दोंको उखाड़नेसे लाभ ही क्या? खैर, इसका जिक्र मैंने किसीकी बुराई करनेकी नीयतसे नहीं किया। मैं तुम्हें बता रहा हूँ कि वे कौनसे कारण हैं, कौन-सी वे घटनाएँ हैं, जिनके प्रभावसे मेरे हृदयमें तुम्हारा स्थान दिनपर दिन बढ़ता गया। जब मैं जेल पहली बार गया था, तबसे या उससे बहुत पहलेसे मैं तुम्हारा गुलाम बन चुका था।

जेलमें प्राणायाम शुरू किया। सुबह-शाम, दिनमें दो-दो बार। ध्यानमें तुम्हारी मूर्ति आँखोंके सामने आने लगी। धीरे-धीरे प्राणायामके आगे-पीछे भी वही प्यारी, मनोहर मूर्ति मेरे सामने आँख बन्द करते ही आ खड़ी होने लगी। बात प्रिय थी, आनन्द आता था, इसलिए अभ्यास बढ़ाया। कुछ दिनोंमें यह दशा हो गई कि सोते-जागते, चलते-फिरते, पढ़ते-लिखते तुम्हारा ही ध्यान और तुम्हारी ही याद। किसी काममें मन न लगने लगा। मजा सिर्फ इसीमें मिलता था कि लेटकर आँखें बन्द कर लूँ और तुम्हें देखूँ। दूसरोंसे बोलना भी भारु हो गया। लोग इस अनमनेपनकी शिकायत करने लगे। समझते थे कि मैं उनकी बातें इसलिए ध्यानसे नहीं सुनता कि मैं अभिमानी हूँ, या उनका तिरस्कार करना चाहता हूँ। उन्हें क्या मालूम कि मेरे हृदयमें

कितनी वेदना भरी थी और मेरे ऊपर क्या बीत रही थी ? इसे तुम सुनकर हँसोगी । समझोगी कि ये सब बनावटी बातें हैं, पर है ऐसा नहीं । मैं तुम्हारी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुमसे मैं स्वप्नमें भी झूठ न बोलूँगा ।

महीनोंतक यही हाल जारी रहा । सिरसे पैरतक मैं तुम्हारे प्रेमसे रँग गया । रोम-रोममें तुम्हारी कमनीय मूर्ति अङ्कित हो गई और तुम्हारे नामकी मधुर ध्वनिसे सारा शरीर गूँज उठा । तब मैंने जाना कि राधा कृष्णको कितना प्यार करती रही होंगी । मेरे जीवनमें यह एकदमसे नया अनुभव था । इसके पहले जिसे प्रेम समझ रक्खा था, वह प्रेम न था, प्रेमका कपट-रूप था । वह तो वासना या कामनाका भौंका-भर था । उपन्यासोंको पढ़कर श्रृंगारकी मानसिक विलासिताका उफान था । अभीतक आगसे खेलनेका स्वाँग करते हुए मनोरञ्जन किया करता था, परन्तु अब मालूम हुआ कि प्रेमकी ज्वाला कितनी भयंकर होती है । ज्वालामुखीमें उतर जाना आसान है, लेकिन प्रेमकी धधकती ज्वालामें पड़कर सही-सलामत निकल आना आसान नहीं । पतङ्गकी तरह मैं जल-भुन गया । मेरी वासना, मेरी कामना, मेरे विकार, मेरी ममता और मेरी लालसा, सभी जल-भुनकर खाक हो गई । मेरे विकार सब नष्ट हो गये, मेरे व्यक्तित्वका अब पता नहीं । तुम्हीं अब मेरी लालसा हो, आकांक्षा हो, मेरे प्राण और मेरा जीवन हो । मेरा अब कुछ नहीं शेष रहा । जो बचा है, वह तुम्हारे लिए प्रेम । तुम्हींमें मेरा अस्तित्व है, तुम्हीं मेरे लिए संसार हो । जो नाच नचाओ, नाचूँगा; जो कहो, करूँगा । न कहोगी तो निर्जीवकी तरह पड़ा रहूँगा । तुम्हीं मुझे ऊपर उठा सकती हो और यदि



चाहो तो रसातलमें भेज सकती हो। तुम्हारे रङ्गमें, मैंने कहा है, मैं रँग गया हूँ। यह ठीक नहीं। प्रिये, तुम्हारे प्रेमने मुझे इतना रगड़ा है कि मेंहदीकी पत्तीसे बदलकर मैं अब रङ्ग हो गया। तिल था, अब तेल बन गया। खुदड़ा सबका सब निकालकर प्रेम भी भट्टीमें जला दिया गया।

हाँ, इसको वह नहीं समझ सकता, जिसपर खुद न बीती हो। उसे मैं बताने भी तो नहीं जाता। मेरा प्रेम गूँगेका गुड़ है। खानेहीसे उसका मजा मिल सकता है। लेकिन जहाँ उसमें मिठास है, वहाँ वह कड़ुवा भी कितना है! कितना रुलाता है, कितनी पीड़ा पहुँचाता! सचमुच, जेल तो मेरे लिए अमावस्याकी विकट अँधियारी रात-सा हो गया था, यद्यपि सारी दुनिया दिनके प्रकाशमें आनन्द मनाया करती थी। और अँधियारी भी कैसी कि उसमें आशाके टिमटिमाते हुए नखतकी एक किरनका भी पता न था। मुझे आशा कैसी? क्या वहाँ स्वप्नमें भी मैं यह आशा कर सकता था कि जिसके लिए मैं तड़प रहा हूँ, वह कभी भी मेरा प्यार करेगी। मैं इतना मनहूस कि कोई मेरी ओर यदि एक बार धोखे-से भी देख ले तो दोबारा फिर कभी उस ओर न देखना चाहेगी। न रूप, न गुण; न धन, न यौवन; न पद और न नाम। मुझसे अधिक दीन और निकम्मा बिरला कोई तुम्हें दुनियामें मिलेगा। उसपर खोटे काम। तुम्हें मेरी खोटाईका पूरा-पूरा पता था। जहाँ विधनाने मुझे उन तमाम गुणोंसे वञ्चित रक्खा, जिनकी बदौलत संसारमें पुरुष स्त्रियोंकी निगाहोंमें आदरणीय और आकर्षक होता है, वहाँ तुम्हें उसने रूप भी दिया, यौवनकी मादकता भी दी और तरह-तरहके एकसे-एक सुन्दर गुणोंसे

विभूषित और अलंकृत किया। तुम्हारे प्रेमको पानेकी चेष्टा उसी तरहसे उपहासके योग्य थी, जैसे मेरी आकाशको हाथसे छूनेकी कोशिश ! कौन जानता था—कमसे-कम जेलमें तो इसका स्वप्न भी नहीं देख सकता था—कि तुम कभी मेरे ऊपर इतनी दया करोगी कि मेरी कङ्गालीके ऊपर अपने गुणोंकी चादर डालकर मेरे सारे ऐवोंको छिपा दोगी। अचंभेके दिन, लोग कहते हैं, बीत गये। मैं भी यही मानता था और मानते हुए अपने कर्मोंपर रोता और सिर धुनता था कि हे भगवन्, मैंने कौनसे पाप किये हैं, जिसकी सजामें मैं इस तरह बेरहमीके साथ सताया जा रहा हूँ।

कितनी मुश्किलोंमें वे दिन एक-एक करके गुजरे थे। आज भी जब उनकी याद आती है, तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दुश्मन-को भी इतनी व्यथा न कभी सहना पड़े। मैं महीनोंतक दुःखकी कन्दरामें पड़ा-पड़ा कराहा किया। निर्दय निराशा छातीपर हर वक्त सवार रहती थी। भीतरसे वेदना हृदयको रह-रहकर करोया करती। सचमुच जीवनकी वे घड़ियाँ अमावस्याकी रातसे भी अधिक काली और डरावनी थीं। मैंने प्राणायाम करना बन्द कर दिया। गीताको नमस्कार किया। सोचा, कहीं पागल तो न हो जाऊँगा। अकेले बैठनेमें भय मालूम होने लगा। अपनेहीसे मुझे डर लगने लगा। कोशिश करने लगा कि किसी घड़ी अकेले न रहूँ। दूसरोंके पास जाता और छेड़-छेड़कर उनसे बातें करनेकी कोशिश करता। इधर-उधर जहाँ कोई मिलता उसके पास जा खड़ा हो जाता। लेकिन सब बेकार था। रातमें तो अकेले रहना ही पड़ता। तब नरककी यातना फिर शुरू हो जाती। फिर वही विचार आकर घेर लेते। फिर वही वन्दना, फिर वही जलन,

फिर वही निराशाकी काली-काली घटाएँ और दिन तो ज्यों-त्यों कट भी जाते, परन्तु रात पहाड़-सी भारू हो जाती। उसका एक-एक पल कितने धीरे-धीरे लँगड़ेकी चालसे खिसकता था।

वेदना असह्य हो गई। शरीर इस भीषण खींचातानीको अधिक दिनोंतक बर्दाश्त न कर सका। मैं बीमार पड़ गया। जब हालत ज्यादा खराब हुई तो और जल्द सुधरनेकी आशा न रही, तब जेलके अधिकारियोंके कहनेसे मैं सजाकी मीयादके पहले ही छोड़ दिया गया।

उठूँ। अँधेरा हो चला। यहाँ रोशनी भी नहीं है कि अधिक लिख सकूँ। अब फिर लिखूँगा।

तुम्हारा अभागा,

कृष्ण

कृष्णका राधाके नाम अन्तिम पत्र*

[प्रेषक—श्री० वेंकटेशनारायण तिवारी, एम० ए०]

३०

“मैं ढूँढ़ थकी हूँ बनमें, तुम छिपे छली हो मनमें ।
मैं विरह-गीत तज दूँगी, बिखरे आँसू गूँथूँगी ।
प्रियतमके प्रेम-मिलनमें, फिर अब न थकूँगी बनमें ।
मैं मग क्यों अधिक निहारूँ, तमकी ठोकरसे हारूँ ।
तुम ध्रुव नक्षत्र गगनमें, फिर अब न छिपोगे मनमें ।”

❀ पत्र-प्रेषक महोदयका कथन है कि नं० ४ से लेकर नं० २९ तकके पत्र लुप्त हो गये । इसलिए इस ३०वें पत्रको अन्तिम-पत्र समझना चाहिए ।

अज्ञात-वास

२७-८-१९३३

प्रियतमे,

सप्रेम बन्दे ! लो, आज यह अन्तिम पत्र लिखने बैठा हूँ । मेरे अज्ञात-वासकी अवधिका आज अन्तिम दिन है । जिस लिए यहाँ आया था, वह संकल्प पूरा हुआ । मनका मैल टटोला और उसे यथाशक्ति धो भी डाला । प्रेमकी समस्यापर भी सोचा, खूब ही सोचा । यह कहना तो भूल होगी कि उस अगम्य, अथाह रहस्यकी मैंने अच्छी तरहसे पड़ताल कर डाली । दुनिया-में ऐसा आजतक कौन समर्थ माईका लाल हुआ, जो प्रेमके मन्त्रकी महिमाको समझ सके ? प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है । ऐसी दशामें नेति-नेति ही वेदोंके साथ कहना उचित होगा । प्रेमके पारावारका पता लगाना मेरे-से दुर्बल पुरुषके लिए बिलकुल असम्भव है । हाँ, यह ठीक है, लेकिन पिछले ३३ दिनोंमें मैंने तुम्हारे और अपने विषयमें काफी सोच-विचार किया और कई छोटी-मोटी बातोंको, जिन्हें पहले न समझता था, अब समझने लगा हूँ । क्या सोचा और क्या विचारा इसको पिछले २९ पत्रोंमें मैंने विस्तारके साथ तुम्हें लिखा है । पर, हाय ! वे पत्र तुम्हारे हाथोंमें तो न पहुँचेंगे । मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि पत्रोंको मैंने इस आशासे नहीं लिखा था कि उनपर इस जीवनमें कभी निगाह पड़ेगी और न यही मुझे विश्वास है कि इस अन्तिम पत्रको भी तुम्हारे हाथोंमें पड़नेका कभी सौभाग्य प्राप्त होगा । फिर, क्यों मैंने पत्र लिखे ? महज इसलिए कि शाम-को जब इन्हें लिखता था, तब रात-दिनकी उलझनसे कुछ-कुछ

छुटकारा मिल जाता था। एक और भी कारण था। इसी बहाने अपने दिलके गुबारोंको आसानीसे निकाल भी लेता था। व्यथाकी बात दूसरेसे कहकर लोग अपने दर्दको हलका कर लेते हैं। यहाँ मेरे पास कौन था, जिसके कानोंमें मेरी करुण-कहानीका रोना पहुँचता ? और यदि कोई होता भी तो उससे मैं कहने ही क्यों लगा ! बात तो तुम्हारे-मेरे बीचकी थी। फिर, किसी दूसरेसे कहनेसे लाभ ही क्या था ? कोरी सहानुभूति चाहे वह भले ही दिखा देता, पर बादको मनमें हँसता और कहता कि अच्छे आये यह भी प्रेमके एक नये शिकार। जग-हँसाईसे मैं बेहद डरता हूँ। तुम्हारी बदनामीका भी विचार मेरे ओठोंमें ताला डाल देता। ऐसी दशामें चुपचाप ही सब सहता और दिल विरहकी भयङ्कर ज्वालामें जला करता। पत्र लिखकर कुछ-न-कुछ शान्ति अवश्य मुझे मिल जाती थी। और यदि कुछ न होता तो इतना ही क्या कम था कि इसी बहाने, तुमसे चौबीस घण्टोंमें कुछ देरके लिए बातें कर लेता था, तुम्हारे नामके जापके साथ-साथ तुम्हें खरी-खोटी सुना लेता था। खफा न होना ; प्रेमीकी खरी-खोटी बातें भी सिर्फ मिन्नत-आरजूके अलावा और कुछ नहीं होतीं। उसके बिगड़नेमें भी दीनताकी पुकार है, रुठनेमें भी शिक्षाकी अदा है।

खैर, जाने दो इन बातोंको। इनमें क्या धरा है। आज अन्तिम-पत्र लिख रहा हूँ। तुम तक पहुँचे या न पहुँचे, मुझे अब इसकी कुछ परवाह नहीं है। क्यों ? आश्चर्यसे तुम पूछ सकती हो ! इसका उत्तर मैं और कुछ न दूँगा। इसी पत्रके ऊपर मैंने किसी अज्ञात कविकी जो पंक्तियाँ लिखी हैं, उन्हींमें

मेरा उत्तर तुम्हें मिलेगा । बहुत दिन हुए, जब मैंने इन पंक्तियों-को पहली बार सुना था । उस समय मैंने इन्हें अपनी नोट-बुक-में नकल कर लिया था । उसके बाद बरसोंतक उन्हें भूल-सा गया ! जब यहाँ आया तब कुछ किताबें और पुरानी नोट-बुकें अपने साथ लेता आया था । उन्हींमेंसे प्रातःकाल कुछ भजन या गीत पढ़ा करता था । एक दिन अकस्मात् इस गीतपर नजर पड़ गई । उस दिनसे इसीको दोहराने लगा । इसकी ध्वनि मेरे कानों-में समा-सी गई और मैं जहाँ अँधेरेमें भटक रहा था, वहाँ एका-एक प्रकाश-सा फैलने लगा । तुम्हारी ओरसे जो शङ्काएँ मेरे हृदयमें बहुत दिनोंसे उछल-कूद मचातीं और व्यर्थमें परेशान किये रहती थीं, उनका भी जवाब इस गीतसे मुझे मिला । फिर क्या था ? यही गीत मेरी गीता बन गई और मौके-बे-मौके इसीके पदोंको गुनगुनाया करता था । परन्तु मैंने इसमें कुछ उलट-फेर कर लिया था, थोड़ेसे शब्द बदल दिये । अज्ञात कविसे अपनी इस धृष्टताके लिए मैं माफी चाहता हूँ । जो रूपान्तर मैंने इस गीतका किया है, उसे तुम्हारे विनोदके लिए नीचे लिखता हूँ :—

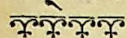
“मैं ढूँढ़ थका हूँ बनमें । तुम छिपी छली हो मनमें ॥
मैं विरह-गीत तज दूँगा । बिखरे आँसू गूँथूँगा ॥
राधाके प्रेम-मिलनमें । फिर अब न थकूँगा बनमें ॥
मैं मग क्यों अधिक निहारूँ । तमकी ठोकरसे हारूँ ॥
तुम तो हो मेरे मनमें । क्यों ढूँढ़ थकूँ मैं बनमें ॥”

दुनियामें इससे कहीं सरस और मर्मस्पर्शी गीत हैं । इससे कहीं अच्छे गीत तुमने और मैंने अपने जीवनमें एक बार नहीं,

अनेक बार सुने हैं। लेकिन अवसरने इस गीतको मेरी निगाहमें अनमोल बना दिया। इसलिए मुझे तो यह बहुत ही प्यारा मालूम होता है। मनमें रमती है जो देवी, उसको बनमें ढूँढ़ने जाना और व्यर्थकी तलाशमें थकना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? सचमुच, तुम्हारी भूर्त्तिने तो मेरे हृदयमें अपना सिंहासन जमाया है। पागल ही तो था कि तुमसे भगकर यहाँ जङ्गलमें तुम्हें ढूँढ़ रहा था। 'मैं ढूँढ़ थका हूँ बन में।' और तुम विराजमान थीं मेरे मनमें। कितनी छलिया निकलीं? कितना निठुर कपट किया? या दोष मेरा ही था कि मैंने अपनी भूल इतने दिनोंके बाद पकड़ पाई। प्रेमको कवियोंकी कल्पनाने आँखोंसे वञ्चित रक्खा है। मैं भी प्रेममें अन्धा हो गया था। इसीलिए सत्यसे इतनी दूर भटक गया। खैर, भला हो उस कविका, जिसने मेरी भरी हुई आशा-आँको फिरसे हरा-भरा कर दिया। बनमें आया था मनके मैलको टटोलने। मनका मैल धुला नहीं कि तुम मुझे मनके अन्दर ही मिल गई। और क्या श्रीगौरीका सीताजीको यह वरदान कभी असत्य हो सकता है—“जिहिकर जिहिपर सत्य सनेहू। सो तिहि मिलै न कछु सन्देहू।” प्रेमकी अजेय शक्तिके सामने क्या सम्भव नहीं है? इसके प्रभावसे तो नन्ददासके शब्दोंमें—

“सिला सलिल है चलीं सलिल है रह्यौ सिला पुनि।”

पाषाण भी पिघलकर बह निकलता है और पानी भी पथरा जाता है—यदि प्रेम सच्चा हो। फिर, क्यों इधर-उधर मारा-मारा भटकता फिरूँ? तुम्हारे द्वारपर धूनी रमा चिमटा न गाड़ूँ? इस दृष्टिसे मेरा तुम्हें छोड़कर यहाँ आना सरासर भूल ही थी।



लेकिन नहीं, इस अनुभवका अनमोल मोल है ; क्योंकि इस गूढ़ सत्यको जितनी आसानीसे अब मैं समझ सका हूँ, उतनी आसानीसे तब न समझ सका था और न तुम्हारे पास ठहरकर ही दिन-रातके झमेलोंमें आत्म-निरीक्षणका काफी मौका मिलता कि मैं अपने-आपको पहिचानता या तुम्हारे प्रेमके सच्चे स्वरूपको जान पाता ।

मैं किस परिणामपर इतने दिनोंकी तपश्चर्याके बाद आया हूँ, सो भी तुम्हें एक बङ्गाली कविकी नीचे दी हुई पंक्तियोंमें व्यक्त ही क्यों न कर दूँ :—

“सती असती, तोमाके विदित

भालो मन्दो जानी नाई ।

कहे चण्डीदास, पाप-पुण्य सम,

युगल चरन मानी ॥”

ठीक है, मुझे सती समझो, असती समझो, यह तुम्हारी मर्जीपर निर्भर है ; मुझे तो अब इस प्रेमके प्रभावके कारण इतनी बुद्धि रही नहीं कि मैं स्वयम् भले-बुरेके भेद-भावको समझ सकूँ । तुम्हारे चरणोंको पकड़कर मैं तो अब बैठा हूँ । यदि जो कुछ मैं कर रहा हूँ, वह पाप है तो भी वह पाप मेरे लिए पुण्यहीके समान है । प्रेमकी धारामें अपवित्र भी पवित्र हो जाता है, यदि लगन सच्ची हो, यदि उसमें तन्मयता हो और साथ ही यदि उसमें फामुक्ताकी दुर्गन्धि न लिपटी हो । मैंने अपने हृदयको खूब अच्छी तरहसे टटोला है और मैं बलपूर्वक अब यह कहनेका दावा करता हूँ कि कामुकताका मेरे प्रेममें नामोनिशान भी नहीं

है। त्याग ही प्रेमकी कसौटी है और तुम्हारे हितमें मैं सर्वस्वको त्यागनेके लिए तैयार हूँ। कामना भी मुझे किसी बातकी नहीं है—सिर्फ एक ही बातकी कामना है और वह है, तुम्हें सुखी बनानेकी अभिलाषा। जिसमें तुम्हारा हित हो, जिसमें तुम्हारी बात बने, जिससे तुम सुखी हो, वही मैं करूँगा, उसीमें मैं अपना सुख समझूँगा। मेरे अलग रहनेहीमें यदि तुम्हारा सुख सम्भव है, तो राधे, मैं वह भी करनेको तैयार हूँ। प्रेम किया; फिर आगा-पीछा देखनेकी कौन-सी बात? उसकी पुनीत पुकारसे आनाकानी यदि कोई करना भी चाहे तो कैसे कर सकता है? 'प्राणन बाजी राखिए, हार होय या जीत।'।

आओ, चलते-चलते तुम्हारे साथ मेरा जो सम्बन्ध है, उस पर एक सरसरी नजर तो दौड़ा लें।

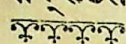
तुम्हारे साथ मेरा सात्विक सम्बन्ध है। मैं उसे प्रकट रूपमें देखना चाहता हूँ। तुम उसे गुप्त ही रखना चाहती हो। तुम्हें सूरदास-से अनुभवी कविके वचनमें कुछ भी विश्वास नहीं है कि 'दुरै न प्रेम अरु सुगन्धिकी चोरी।' तुम समझतो हो कि अभी कुछ दिनोंतक यह प्रेम-कथा गुप्त ही रहे। घरवाले भी न जानें। लेकिन जीवनमें सचाई और सफाईसे अच्छी नीति और कोई नहीं है। लाख मैं सिर धुन चुका, पर तुमने एक न सुनी। खैर, जैसी तुम्हारी इच्छा। जो चाहो वही होगा। मैं अपनी जबान न खोलूँगा; परन्तु क्या तुम इस चोरीको बहुत दिनोंतक छिपा सकोगी? क्या अभी तुम्हारी बातों और बातोंसे भी बढ़कर तुम्हारी हरकतोंसे लोगोंमें इस सम्बन्धमें कानाफूसी नहीं जारी है? चवाइनोंमें चर्चा तुमने नहीं सुनी? फिर तुम्हीं बताओ,

उस रहस्यको रहस्य कहना कहाँकी बुद्धिमानी है, जिसका भगड़ा रोज ही सैकड़ों जबानोंसे फूटता रहता है ? तुम सरासर अपने आपको धोखा देती हो कि जो मैं करूँ उसे खुदा भी नहीं जानता । खुदाकी कौन कहे, तुम्हारे पड़ोसीतक तो तुम्हारे नेहकी बाबत आपसमें कानाफूसी करने लगे हैं । परन्तु मुझे न तो इसका भय है, और न इसकी चिन्ता । तुम्हारा प्रेम कोई ऐसी-वैसी चीज नहीं है, जिसको पाकर मैं अपनेको इन्द्रसे अधिक सौभाग्यशाली न समझूँ । फिर उसे छिपानेकी मुझे क्या जरूरत ? कहती हो कि अभी थोड़े दिनोंतक उसे अप्रकट ही रहने दो । आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु उसका अर्थ होगा कि मैं तुमसे कोसों दूर रहूँ । है स्वीकार ? स्वीकार न होता तो मुझे अपने पाससे खदेड़ ही क्यों देती ?

दूर तो रहूँगा, पर क्या इसके कारण तुम मुझे भूल न जाओगी ? कहते हैं कि 'आँखिन देखे चेतना, मुख देखे व्यवहार ।' यदि यह सत्य है और इस बातका खतरा है कि तुमसे अगर मैं बराबर न मिलता रहा तो तुम मुझे भुला दोगी—यदि यह सत्य है तो फिर मेरा दूर रहना और भी अधिक आवश्यक है । सच्चा प्रेम घटता नहीं, उल्टे बढ़ता है, यदि प्रेमीकी गैर-हाजिरीका सबब उसकी लापरवाहीके वजहसे नहीं, किन्तु प्रेमिकाकी हित-चिन्तनाकी वजहसे हो । मैं तुम्हारी कीर्तिको सदा उज्ज्वल देखना चाहता हूँ । तुमने एक बार मुझसे कहा था कि यदि मान न रहा तो मर जाना अच्छा है । ऐसी दशामें तुम्हारे प्रेमीका कर्तव्य और उसका धर्म यही सीख देगा कि मैं तुमसे दूर ही रहूँ, ताकि पड़ोसियोंकी आँखोंमें हम दोनों खटकने

न लगें। काश्मीरकी बात दूसरी थी। अब तुम अपने घरपर हो। तुम्हारे साथ जो नौकर-नौकरानियाँ पहाड़पर गये थे, उनमें हम दोनोंके प्रेमकी बाबत काफी चहल-पहल मची थी। अपने प्रेमके आवेशमें, मदके उद्रेकमें, तुमने उधर ध्यान भी न दिया था। देखा भी तो परवा नहीं। सुनीको अनसुनी कर गईं। घर लौटकर यह निश्चित है, वे विटियाके प्रेमकी कहानी काफी नमक-मिर्च लगाकर दूसरोंसे कहेंगी। उसपर यदि मैं भी तुम्हारे घर जाऊँ तो फिर किसी दूसरे प्रमाणकी जरूरत ही न रह जायगी। इस बातकी सचाईको साबित करनेके लिए कि हम दोनों अब ऐसे पुनीत पाशमें बँध गये हैं कि मृत्युके अलावा कोई दूसरी शक्ति उसे खोलनेमें समर्थ नहीं हो सकती। फिर, तुम्हारी सहेलियाँ क्यों चुप बैठने लगीं? अतएव, तुम्हारी आज्ञाके पालनहीका यह पहला उपहार मिल रहा है कि मैं तुमसे दूर रहूँ। जब प्रेमका वाग्दान न हुआ था, तब तो मैं तुम्हारे पास महीनों रह सकता था और अब आज, जब संसारमें सबसे अधिक मैं तुम्हारे करीब हूँ, तब विवश होकर मुझे खुद ही तुमसे दूर रहना पड़ रहा है। बलिहारी है इस प्रेमकी, जिसके राज्यमें मुझे देश निकालेकी यह आज्ञा मिल रही है! भगवान् तुम्हारा भला करें! इससे अधिक और मैं कही क्या सकता हूँ? फिर भी यही कहूँगा कि “दुरै न प्रेम अरु सुगन्धिकी चोरी।”

सचमुच, पागल हो गया हूँ। देखो न, कैसी बातें कर रहा हूँ। आया हूँ तुमसे लड़कर; और बातें ऐसी करता हूँ कि मानों दोनोंमें पहलेहीका-सा प्रेम मौजूद है। आशा भी खूब छलना जानती है। ऊपर जो कुछ मिलने-न-मिलनेके सम्बन्धमें मैंने लिखा



है, उससे तो यही टपकता है कि हम दोनोंमें कोई अन्तर पड़ा ही नहीं। कितनी घातक व्यञ्जना है, आशाका कैसा भुलावा है। स्वप्नको भी कितनी जल्दीमें मैं सत्य समझ बैठता हूँ। असलियत तो यह है कि तुमने मुझे ठुकरा दिया, दुत्कार दिया, अपने पास-से निकाल भगाया। तरह-तरहके झूठे लाञ्छन लगाये। विकल होकर मैं महीनेसे अधिक वहाँपर पड़ा-पड़ा तड़पा और जमीन-को अपने गर्म आँसुओंसे सींचता रहा। मेरे पास कोई दूसरा चारा न था। बेचारी वेदना करुणासे दुःखित होकर मेरे पास बैठी-बैठी रोती रही और सहानुभूतिसे मेरी संगिनी बनकर मेरा दुःख उसने बँटाया। मेरी इस दोन दशापर तुम्हें न तो तरस आया और न दयासे तुम पिघलीं। वेदना रोई भी, साथ और पास रही भी। तुम्हारे स्थानको उसने पूरा किया। कहो, इसका हृदय अधिक कोमल है या उसका ?

याद है, तुमने मेरे ऊपर क्या इलजाम लगाया था ? तुमने कहा था कि मैं वासनाका गुलाम हूँ और प्रेमका ढोंग रचता हूँ। पिछले तीन पत्रोंमें मैं वासनाके विषयमें अपने विचारोंको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर चुका हूँ। मुझमें वासना है। पर वासना होती किसमें नहीं ? कामुकताको मैं वासना नहीं कहता। मैं न विरक्त बननेका दम्भ ही रचता हूँ। मैं तुम्हारा प्रेमी हूँ। प्रेममें सौदा नहीं और प्रेममें तन और मनका भेद नहीं। जैसा मैं कह चुका हूँ, मैं तो प्रेमके माध्यमिक पन्थका पन्थी हूँ—इसी पथका पथिक हूँ। मैं न तो कुत्ता-पन्थी हूँ और न हिजड़ा-पन्थी। तनसे मुझे न घृणा है और न मैं उसे लज्जाकी वस्तु ही समझता हूँ। हाँ, मनका लोभी नहीं और न हाड़-मांसकी दूकानपर उसका

आजतक कभी सौदा ही किया। शुद्ध निष्ठा और भक्तिसे मैंने जिस देवीके चरणोंमें मन अर्पित किया, उसीका सदाके लिए न केवल मनहीसे, किन्तु तन-मनसे हो गया। पतिव्रतका हमारा आदर्श भी तो यही है।

×

×

×

मैंने तुम्हें जो अन्तिम पत्र लिखना शुरू किया था, वह कई कारणोंसे अधूरा ही रह गया था; उसीकी पूर्ति करता हूँ। अन्तिम पंक्तिमें मैंने ज्यों ही लिखा कि “मैंने जिस देवीको अपना मन दिया है, उसीको ‘तन’ भी अर्पित करता हूँ”, ज्यों ही, वे पुरानी बातें फिरसे वरबस जाग उठीं, जिनके कारण तुम मुझसे रूठी थीं। मुझसे तुम्हारी लड़ाई इसी ‘तन’ शब्दके ऊपर हुई थी। तुम चाहती हो कि तुम तन दूसरेको दो और मन मुझे; क्योंकि मन वरबस तुम्हारे काबूसे बेकाबू हो गया और उसे यदि वापिस लेना भी चाहो तो नहीं ले सकती हो। तुम्हारे विचारसे, प्रेमकी पवित्रताके लिए यह जरूरी है कि परस्परका सम्बन्ध एकदम निरिन्द्रिय हो—ऐसा सम्बन्ध हो, जिसमें शरीरका नाम भी न आने पाये। दो आत्माओंका सम्मिलन, मैं भी मानता हूँ, सच्चे प्रेमका नाम है। मैं यह जानता हूँ कि संसारमें इन्द्रिय-लोलुपोंने इन्द्रियोंकी उपासनाहीको प्रेमके पवित्र नामसे पुकारा है। परन्तु आत्मा तो शरीरसे भिन्न है। क्या तुम या मैं यह नहीं देखता हूँ कि दुनियामें कितनी अशान्ति और कितना भीषण कलह फैल रहा है? आजके दो प्रेमी, कलके प्राणोंके प्यारे दुश्मन हो जाते। जहाँ कल दो व्यक्ति एक दूसरेको बिना देखे जीवित नहीं रह सकते थे, वहाँ आज वे ही एक दूसरेका नाम नहीं

सुनना चाहते । इसका कारण सिर्फ यही है कि अधिकांश लोगों-
के विषयमें कामकी तृष्णा, रूप और यौवनकी चाह एकको दूसरे-
की ओर खींच लाई थी । प्यास थी, पानी मिला, तृप्ति हुई और
चाहकी जगहपर विरक्ति या उदासीनताने आकर अड्डा जमा
लिया । इसीलिए ऐसे सम्बन्ध कभी स्थायी नहीं होते । किसीकी
जवानी सदा नहीं टिकती और न किसीका रूप ही एक-सा बना
रहता है । जहाँ रूपके जादूने किसीको अपनी ओर खींचा, वहाँ
उस रूपके ढलनेपर उस जादूका खिंचाव जाता रहता है । बाजार-
में बैठनेवाली स्त्रियोंकी करुण-कहानी ऐसे सम्बन्धोंकी निस्सारता
और अनस्थिरताका सबक हमें नित्य पढ़ाती है । इसलिए मैंने
अपने जीवनमें तनकी पूजाको कभी कुछ भी महत्व नहीं दिया
है ; क्योंकि उसका निश्चित परिणाम है—असन्तोष, श्रद्धाका
ह्रास, विरक्ति और अन्तमें विच्छेद । यह वह पङ्क है, जो हमें न
केवल गन्दा करता है, किन्तु जो फिर कभी छुड़ाये भी नहीं
छूटता । नहीं-नहीं, हाड़-चामके बाजारमें भूलकर भी मैं कभी
सौदा करने नहीं गया ; और न मैं चाहूँगा कि मेरा कोई स्वजन
ही इसकी तड़क-भड़कके भुलावेमें फँस, सुखके फेरमें दुःखको,
अपनी आत्माको बेचकर खरीदे । हिन्दू-संस्कृति और हमारी
जातिके आदर्शोंके यह बिल्कुल विपरीत है । विवाह-संस्कार दो
प्राणियोंका आजन्म मेल है—आजन्म ही मेल क्यों—युग-
युगान्तरोंके लिए अमिट और अटूट बन्धन है । लेकिन उसके
असली रूपको हम भूलकर आज-दिन अक्षरकी पूजामें, अनन्त
परिवारोंकी सुख-शान्तिकी कलहकी ज्वालामें आहुति करते हैं ।
हमारा विवाह-संस्कार भी क्या खूब ढोंग है ! संस्कार है या

पापाचारका खुला पट्टा ? दो प्राणियोंका मेल है या इन्द्रियोपासनाका एक सरल साधन ? धर्म है या अधर्म ? कन्या-दानसे अधिक पवित्र दान संसारमें कोई नहीं । लेकिन वही दान सच्चा दान है जिसे कन्या खुद दे । असलमें कन्या-दान था कन्याद्वारा दिया गया दान । वह देती थी अपनी स्वेच्छासे अपने प्रेम और तनका दान । परन्तु अब उसका अर्थ हमारे समाजमें हो गया है कन्याके तनका दान, और दान देनेका अधिकार उस बेचारीके हाथसे छीनकर अपने हाथमें ले लिया है उसके घरवालोंने ! क्या ढोंग है, क्या ढकोसला ; क्या जाल है और कितनी मक्कारी ! और सबसे अचरजकी बात तो यह है कि तुम भी इस तरहके सौदेका स्वागत करनेके लिए तैयार हो ! इतना ही नहीं, बल्कि जब मैं तुमसे चिरस्थायी आमरण प्रणयकी भिक्षा माँगता हूँ, तब कहती हो कि प्रेम तुमसे करूँगी, लेकिन तन उसका होगा, जिसे घरवाले देनेको कहेंगे । सावित्रीकी कथा तो तुमने कई बार मुझे सुनाई है, दमयन्तीका नाम और कथानक भी तुम्हें मालूम है । श्रीसीता सतीशिरोमणि थीं । उमाकी आराधना हमारे घरोंमें प्रचलित है । तुम्हीं सोचो कि तुम जो करने जा रही हो, क्या वह ठीक है ? मेरी बात न मानो, क्योंकि स्वार्थके कारण उसमें पक्षपात हो सकता है । परन्तु अपने हृदयसे पूछ देखो । जो वह सलाह दे, उससे तो आनाकानी न करो । मुझे छोड़ना चाहती हो, छोड़ दो । मुझे वही मञ्जूर है, जिसमें तुम्हारा हित हो, जिससे तुम्हें सुख मिले । परन्तु, ईश्वरके लिए, विवाहमें संस्कारको सुविधाका सौदा न समझो । यह उस पुरुषके साथ अन्याय और पापाचार होगा, जिसे तुम बरोगी, अपने मनके साथ नहीं ;

किन्तु मनके विरोध होते हुए महज दूसरोंके खुश करनेके लिए । तुम कुलवती हो, शिक्षिता हो और तुम्हें भले-बुरेका ज्ञान भी है । सोचो तो सही, ऐसे विवाहसे बाजारू सम्बन्ध किस तरहसे अधिक घृणित और त्याज्य है ? भेद केवल इतना ही है कि एक स्थायी और दूसरा अस्थायी होता है । परन्तु दोनोंहीकी तहमें अर्थ-लाभ ही प्रेरक भाव होता है । तो फिर क्या हमारा विवाह-संस्कार स्त्रीके लिये रोटी-कपड़े कमानेका एक व्यवसाय-मात्र है ? यदि मन मुझे दिया हो तो तुम्हें मेरी ही होना चाहिए । नहीं तो मुझे भूलकर किसी दूसरेको अपने प्रेमके दानसे कृतार्थ करो । मैं तुमसे दूर ही रहूँगा, तुम्हें दुःख देने पास भी न फटकूँगा । हाँ, सेवाका अधिकार मैं अवश्य चाहूँगा ; परन्तु वह भी एक ही शर्त-पर कि मेरे कारण तुम्हें किसी तरहका भी संकोच न हो ।

खफा न होना, और न यही समझना कि मैं चिढ़कर जली-कटी बातें लिख रहा हूँ । किससे चिढ़ूँगा, और किस मुँहसे जली-कटी बातें करूँगा ? जो कुछ ऊपर मैंने लिखा है वह केवल तुम्हारी हित-चिन्ताके वशमें होकर ही लिखा है, तुम मानो या न मानो । प्रेमको लोग अन्धा कहते हैं, लेकिन उसके इस अन्धेपनको वह ठीक-ठीक समझ नहीं पाये हैं । उनकी बुद्धिमें, वह स्वार्थ और वासनासे मदान्ध होकर परहित-अनहितको देखनेकी शक्ति गँवा बैठता है । इसलिए वह उसे अन्धा कहते हैं । परन्तु वह तो प्रेमका उपहास करना है । यह प्रेम नहीं—खालिस बुतपरस्ती है, क्षणिक रूप-यौवनको भोगनेकी सर्व-ग्राहिणी लालसा-रूपिणी ज्वाला है । इसीको कामुकताकी मदान्धता समझना चाहिए । सच्चा प्रेमी तो प्रेमिकाके प्रेममें इतना डूब जाता है कि उसे अपना

या अपने स्वार्थका कुछ खयाल भी नहीं रहता—

“जब मैं था तब तुम नहीं, अब तुम हो मैं नाहिं ।
प्रेम-गली अति साँकरी, यामें दो न समाहिं ॥”

कबीरके दोहेको उलटकर, ऊपरका उद्धृत रूपान्तर जो मैंने दिया है, वही सच्चे प्रेमका असली मन्त्र है । ठीक है, क्योंकि—

“लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ।”

क्यों ऐसा होता है ? इसलिए कि—

“लाली मेरे लाल की, जहँ देखो तहँ लाल ।”

अतएव कबीरके शब्दोंमें सच्चे प्रेमकी यही चाह रहती है कि वह अपना शीश काटकर प्रेमिकाके चरणोंपर अर्पित करनेके लिए सदा ही तैयार रहे—तनका शीश नहीं, किन्तु अपने स्वार्थके शीशको जो काट डाले, वही इस पथका पथिक बन सकता है, क्योंकि—

“यह तो घर है प्रेमका, खालाका घर नाहिं ।
सीस काटि भुईंमें धरै, तब पैठै घर माहिं ॥
सीस काटि भुईंमें धरै, तापर राखै पाँव ।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥”

तभी तो मन्सूरने सूलीपरसे चिल्लाकर प्रेमियोंको ललकारा था :—

“चढ़ा मन्सूर सूलीपर, पुकारा इश्कबाजों को ।
यही है बामका जीना, वह आये जिसका जी चाहे ॥”

प्रेम सचमुच अन्धा है। उसे अपने वनने-विगड़नेकी कुछ भी चिन्ता नहीं रहती। अपना सर्वस्व लुटानेहीमें उसे परमानन्द मिलता है; अपनेको खोकर ही वह प्रेमिकाके हृदयका अधिकारी बन सकता है। प्रेम जहाँ क्षमाका नाम है, वहाँ वह त्यागकी अन्तरात्मा है। वेदना उसका सगा भाई और संयम उसका सहायक है। करुणा उसकी जननी है। सौन्दर्यका सहचर होते हुए भी, वह आत्म-विस्मृतिका समूर्त अवतार है। बलिदानके लिए अपनेको, अपनी इच्छाओं और कामनाओं, अपने अरमानों और हसरतोंको वह सदा समर्पित करनेकी टोहमें रहता है। उसमें वासना तो केवल इस बातकी बच रहती है कि प्रेमिकाके हितमें कब और कैसे वह अपने आपको मिटा सकता है। 'लला ला' का उसे ज्ञान मरणान्त भी नहीं होता। दिन-रात वह एक ही अक्षर रटा करता है, और वह अक्षर है, 'दा दा'। तभी उसमें तन्मयता और तल्लीनताका होना सम्भव होता है। नहीं तो अधकचरा ही, पथ-भ्रष्ट होनेके बाद, आप कामके पङ्कमें फँसकर वह प्रेम, प्रेमिका और अपनी आत्माको खो देता है। यही इस पथके पथिकका बाना है, यही सनातनधर्म है, यही अनुभव-सिद्ध सत्य है। फिर, तुम्हें मेरी बातें क्यों अटपटी मालूम हों? अपने दिलसे तो पूछ देखो। 'अपने हियसे पूछिए, मेरे हियकी बात।'

जाने भी दो। हमदोनोंको तो अपने आपसी भगड़ोंको तय करनेके लिए, भगवान्ने यदि चाहा तो, हजारों अवसर अभी हाथ लगेंगे। तब आरामसे बैठकर इनका निबटारा आसानीसे कर लेंगे। लेकिन इस समय तो कामकी बातें ही मैं करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यदि हमदोनोंको फिर मिलना है तो पारस्परिक

सम्बन्धके मूल सिद्धान्तोंको तो समझ लें। यदि तुम्हारी राय इन मामलोंमें मेरे मतसे भिन्न है, तो मैं अपना ही दुर्भाग्य समझूंगा, तुम्हें दोष न दूँगा। लेकिन यह भी समझ लूँगा कि जीवनमें तुम मेरे साथ कदमपर-कदम बढ़ाना नहीं चाहती हो, किसी दूसरे ही मार्गसे और किसी दूसरेहीके साथ चलना तुम्हें अधिक पसन्द है। मैं रोऊँ भले ही, पर तुम्हें न कोसूँगा और न भला-बुरा ही कहूँगा। यही सोचूँगा कि यही क्या कम सौभाग्यकी बात है कि कुछ क्षणोंके लिए हमदोनोंकी जीवन-रेखाएँ मिलकर साथ-साथ चलें। इसीकी स्मृति मुझे अपनी निराशा और विषम वेदनासे टूक-टूक की हुई जिन्दगीको गुजारनेमें ढाढ़स बँधायेगी और पीड़ामें सुखकी झलक दिखाई देगी। वह पीड़ा भी मुझे प्यारी मालूम होगी, क्योंकि उसे तुम्हीं-से मैंने पाया होगा। मैं कितना अभाग होऊँगा, यदि मैं तुम्हारे इस उपकारका बदला उपालम्भसे दूँ या इस उपहारको गलेमें पहनकर भी तुम्हारी निन्दा कर कृतघ्नताका भागी बनूँ। फिर, तुम यदि पीड़ा और वेदनाका विष-प्याला पीनेको दोगी तो 'मान'से दोगी और उसे पीकर मैं भी शङ्कर बन जाऊँगा, क्योंकि—

“मान सहित विष खाय कै, सम्भु भये जगदीस।

बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस॥”

याद रखना देवि, 'मान' में यदि तुम मुझे हटा भी दोगी, किन्तु मनसे नहीं, तो भी मैं 'जगदीश' ही बना रहूँगा; पर प्रेम-रूपी मानके बिना जिसे तुम रूप-सुधा पिलाओगी, वह बेचारा राहुकी तरह जीकर भी अधमरा ही घूमेगा। इसीलिए फिर कहता

लव लेटर्स
❦❦❦❦❦

९८

हूँ, जिसे मन दिया उससे मान करना छोड़ दो और मानपूर्वक उसे अपना लो, उसके प्रेमकी प्रार्थनाको अङ्गीकार करनेका परम अनुग्रह करो। मानकी भी हद होती है। बहुत रुला चुकीं, बहुत आजमा भी लिया। मानको भूल जाओ, मनकी ओर निहारो। मनका अन्तर निकालकर मेरी बिनतीका और अपने हृदयकी गोहारका मान करो। नेहकी नीति बर्तो, अनीतिको छोड़ो, और नरमें जहाँ नारायणकी पूजा करती हो, वहाँ नारायणमें नरका अपमान करना न सीखो। मनुष्य यदि आत्मा है तो उसके तन भी है। न वह विशुद्ध आत्मा है, और न निरी हाड़-मासकी लोथ ही है। जैसे सितारमें सङ्गीत और पुष्पमें सुगन्धि है, चाँदमें चाँदनी और दीपमें प्रकाश है, वैसे ही तनमें आत्मा है। दोनों-हीका इस जीवनमें अभिन्न संयोग है और आत्माका आत्मासे पूर्ण सम्मिलन तभी सम्भव है, जब मन और तनके झूठे भेदको भुलाकर दुर्दमनीय उत्कण्ठा दोनोंको तन्मयताकी सिद्धिकी ओर द्रुत गतिसे बढ़नेके लिए आकुल कर दे। वियोगकी तीव्रता संयोगकी पूर्णताको सूचित करती है। यदि यह ठीक है तो फिर नाराजी किस बातकी ?

बहुतसे लोग निरिन्द्रिय प्रेमका ढोंग रचते हैं। ग्रीसके प्रसिद्ध दार्शनिक प्लैटोने इस तरहकी प्रीतिपर बहुत कुछ लिखा है। इसीलिए इसका नाम प्लैटानिक प्रेम पड़ गया है। लेकिन हमें यह न भूलना चाहिए कि जिस देश और युगमें प्लैटोका जन्म हुआ, उसमें युवकोंके रूप-लावण्यको, युवतियोंके सौन्दर्यसे अधिक महत्त्व दिया जाता था। हिजड़ा-पन्थियोंकी उसी समयसे संसारमें काफी आवभगत रही है। विशिष्ट आत्माएँ अनादि-

कालसे मनुष्यके जामेको पापका धाम मानती चली आई हैं। इसीलिए उन्होंने वे उग्र तप निकाले, जिनका हाल पढ़कर रोंगटे आज भी खड़े हो जाते हैं। परन्तु यह कितने अचरजकी बात है कि ऐसे ही पुरुष भगवानकी भक्तिमें भी अग्रगण्य हुए हैं— उसी भगवानकी, जिसने विश्वकी अनन्त सुन्दर विभूतियोंके साथ-साथ नर-तनकी भी रचना की और उसीमें अपने अंशका आत्मा-के रूपमें निवास कराया। प्रभुकी प्रभुताका बखान करनेवाले ही प्रभुकी बनाई हुई एक वस्तुका इतना घोर अपमान करें और उस-पर भी उसकी अनन्त पवित्रता और अभिज्ञताकी दुहाई दे— यह आसानीसे स मझमें नहीं आता। जिन्होंने संसारको छोड़ने-पर अधिक जोर दिया है, उन्हें भी रूप-लावण्यके प्रलोभनका भूत रात-दिन इतना सताता रहा कि वे उससे भागनेहीमें, अपनी सारी शक्तिको खर्च करनेमें लगे रहे।

सच तो यह है कि मनुष्य-तन न पवित्र है और न अपवित्र, जैसे प्रकृतिके सारे पदार्थ न पवित्र और न अपवित्र होते हैं। उनके उपयोगका ढंग उन्हें पवित्र या अपवित्र कर देता है। कामी-का शरीर अपवित्र इसलिए माना गया है कि उसका अनुचित कामोंमें उपयोग होता है। लेकिन पवित्रताके शरीरपर कबीरदास-के शब्दोंमें 'मैं तो वारों रूप करोड़' चाहे वह कितना ही मैला-कुचैला क्यों न हो ! तन तो उस लोहेकी तरह है, जिसमें पूजा-का पानी एक भक्त भरकर अपने आराध्यके चरणोंमें चढ़ाता है। जितनी ही उस भक्तकी श्रद्धा प्रगाढ़ होगी, उतना ही अधिक वह उसे माँज-माँजकर चमकायेगा और उसे शुद्ध रखनेकी चेष्टामें रत होगा। तन मन्दिर है, जिसमें आत्माका निवास है। जितनी ही उच्च

लव लेटर्स
१००

और उज्ज्वल आत्मा होगी, उतनी अधिक शुचिता और पवित्रता-का उसे ध्यान रहेगा। कौन पूज्यदेवके स्थानको निरन्तर साफ न रखना चाहेगा ? स्वस्थ मन और प्रेममें पगी आत्मा जिस तनमें होगी, वही तन कान्ति, शुचिता और निर्मलताका आकर होगा। उसमें वह अपार कान्ति होगी कि देखते ही लोगोंका हृदय उसकी ओर आपसे-आप खिंच जाता है। इसीलिए कामी जहाँ कुत्ता-पन्थी होता, वहाँ पवित्रताके शरीरको यदि पापी छू ले तो वह 'भस्म' हो जायगा। लेकिन सतीके तनपर उसके प्रेम-पात्रका अनियन्त्रित अधिकार है।

ऊपर जो मैंने कहा है, उससे यह बात तो स्पष्ट है कि शरीर-का आत्मापर नहीं, किन्तु आत्माका शरीरपर नियन्त्रण होना आवश्यक है। इसीका नाम संयम है, इसको लोग कायिक शुद्धताके नामसे पुकारते हैं। जिसने प्यार किया, किसीसे नेह लगाया, उसके लिए यह असम्भव है कि वह कुत्ता-पन्थका मुरीद बने। उसके लिए प्रणयका व्रत उस महायज्ञके समान है, जिसमें आत्मा अपने दोषों, कामनाओं और कमजोरियोंकी आहुति चढ़ाता और अपने 'सीस'को काटकर अपने स्वार्थकी बलि देता है। जो इस अग्नि-परीक्षामें पूरा न उतरेगा, वह प्रेमके मन्त्रका न तो अधिकारी है और न उसका प्रीतिके लोकमें प्रवेश करनेका कुछ हक।

मैं न तो कुत्ता-पन्थी हूँ और न हिजड़ा-पन्थी। जैसा मैं अपने पहले पत्रोंमें कह चुका हूँ, मैं तो माध्यमिक मार्गका अनुगामी हूँ। न तो मुझे तनसे घृणा है और न मैं मनको तनसे इस जीवनमें भिन्न मानता हूँ। मेरी सम्मतिमें जहाँ सच्चा प्रेम है वहीं सच्चा संयोग है—वही सच्चा विवाह है। जिसे मन दे, उसीको तन

दे । दो तनोंका मिलन, मनमें अन्तर होते हुए, आत्माके प्रति विश्वासघात है, अन्तर्ज्योतिका घोर अनादर है । यह विशुद्ध अनाचार है, नम्र व्यभिचार है ; आत्माकी हत्या और पापकी अर्चना है । जो इस रास्तेपर चलेगा, वही अपने-आपको इस लोक और परलोकमें दुःख और पश्चात्तापका पाहुन बनायेगा ।

हरिद्वार

२३-९-१९२३

मानिनि,

सप्रेम बन्दे । मैंने जो अन्तिम पत्र लिखना शुरू किया था, उसे समाप्त न कर सका ; वह अधूरा हो पड़ा रहा । आज कई दिनोंके बाद, उसे पूरा करने बैठा हूँ । कई बार मनमें यह बात आई कि अब और अधिक न लिखूँ । सनक थी, लिखने लगा । परन्तु इन पत्रोंके लिखनेसे लाभ ही क्या ? तुम्हारे तो पास ये कभी पहुँचेंगे नहीं । पहुँचें भी तो तुमको इनसे सरोकार ही क्या ? कहती तो हो कि तुम मुझे प्यार करती हो और समय यह दिखा देगा कि तुम्हारा प्यार कितना सच्चा है । होगा, मुझे नहीं मालूम । मुझे तो सिर्फ इतना ही मालूम है कि जिसे तुम प्यार कहती हो, वह मेरे प्रति तुम्हारे हृदयमें सिर्फ सम्मानका भाव है । तुमने मुझे निठुर भी कहा और देव-देव भी पुकारा । परन्तु क्षमा करना, अभी तक तुम्हें तो यह भी नहीं मालूम कि प्रेम किस वस्तुका नाम है । उसका ककहरा भी तुमने नहीं पढ़ा । ककहरा तो

दूरकी बात है। अ आ इ ई तकका तुम्हें बोध नहीं है। खेल-तमाशका नाम न तो प्रेम है और न किसी व्यक्तिके हृदयके उप-हासमें कोई सहृदय क्रीड़ा या मनोविनोदकी तलाश ही करता है। चोचले करना और दूसरोंको सताना प्रेम नहीं, हिंसा है; करुणा नहीं, निर्दयता है; सहानुभूति नहीं, दूसरेके दुःखका अनुभव है। नहीं, सच्चे प्रेमका अभीतक तुम्हारे हृदयमें उदय नहीं हुआ। मानसिक विनोद और यौवनपर इतराना ही अभीतक तुमने जाना है। ईश्वर करे, प्रेमरूपी रोगसे तुम बरसों बची रहो। जिस दिन उसका धावा होगा, उस दिन तुम्हारी यह सारी मस्ती काफूर हो जायगी; और तुम, मेरी ही तरह घायल होकर तड़प-तड़पकर रोती फिरोगी। तब न तनकी सुध रहेगी और न मनपर काबू। बेचैन, पागल-सी तुम दूसरेकी इच्छापर नाचोगी, उठो-बैठोगी; अपनापन खोकर, दूसरेके रंगमें रँग जाओगी। उसकी खुशीमें तुम्हें स्वर्ग दिखाई देगा; उसके आँसुओंपर तुम्हारा खून बहेगा। वही अकेला तुम्हारा विश्व होगा और सारा विश्व उसके सामने तुम्हारी आँखोंसे विलीन हो जायगा। परन्तु घबरानेकी कोई बात नहीं है। उसे तुम मन दे देना; तन उसे देना जिसके साथ रहनेमें तुम्हें जीवनकी सारी संसारी सुविधाएँ मिल सकें। तनका सौदा ठोंक-बजाकर करना, ताकि पछताना न पड़े। यह न समझो कि मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ या कोसना चाहता हूँ। कदापि नहीं। तुमने तो अपने भविष्यका यही चित्र खींच रक्खा है कि “राजी हैं हम उसीमें, जिसमें तेरी रजा हो।” प्रेमकी वैरागिन तुम नहीं बनना चाहती हो और यदि क्षणिक उत्साह या उन्मादमें तुम जोगिया जामा पहन भी लो तो फिर तमाम जिन्दगी अपनी

भूलके लिए पछताती फिरोगी। ऐसी दशामें तुम्हें जानते हुए मैं क्यों तुम्हें अस्तुरेकी धारसे भी पतली और कटीली दुर्गम घाटी पार करनेकी सलाह दूँ। जोग रमानेकी कहानी पढ़ना और दो आँसू कमरेमें बैठे-बैठे बहाना एक बात है और खुद जोगी होकर जोग साधना दूसरी बात। दुनियामें एक ही राधा हुई हैं। नाम तो तुम्हारा भी राधा है, परन्तु उतनी न तो तुम नासमझ हो और न पागल। तुम्हारी बुद्धिमत्ताहीपर तो मैं मुग्ध हूँ। हानि-लाभ-का जितना खर हिसाब तुम लगा सकती हो, उतना तो कोई बनिया भी न लगाता होगा। स्थिर-बुद्धिकी संसारको सख्त जरूरत है। खवितियोंसे कोई क्या आशा कर सकता है? तुम्हारी इसी खूबीपर मैं तो दिलोजानसे फिदा हूँ। एक पागल काफी है। तुम भी अगर पागल हो जाओगी तो काम कैसे चलेगा? घरमें एक-आध सरेख भी होना चाहिए। तुम सरेख हो! और मैं?—मैं तो पागल हूँ, वह दीवाना हूँ, जिसे अपने दीवानेपनका नाज है। मैं इसीमें खुश हूँ, तुमको वही मुबारक हो!

X

X

X

मैं कहाँ से कहाँ बहक गया? क्षमा चाहता हूँ। मैं कितना पापी हूँ, कितना नीच, कितना अधम हूँ, कि तुम्हारे प्रेम-दानका इतना अनादर करता हूँ, तुम्हारी बातोंको नहीं पतियाता, तुममें इस तरहसे अविश्वास और अश्रद्धा प्रकट करता हूँ। मैं रोषमें या क्षोभमें इस तरहकी जली-कटी बातें क्यों लिख डालता हूँ, जिसको पढ़कर मुझे अपने ऊपर खुद ही क्रोध आता है? माफ करना। मेरी मूर्खताको, मेरे खल्लको भूल जाना। मैं बिछोहसे पागल हो गया हूँ। मेरी बुद्धि हर गई है। सनकमें बह जाता

हूँ। उन्माद ही तो ठहरा। तुम दयाकी मूर्ति हो, करुणाकी अवतार हो। देखो, तुम्हारे निष्ठुर व्यवहारसे मुझे कितनी गहरी चोट पहुँचती है। रह-रहकर उसकी सुध मुझे टीसा करती है, काँटेकी तरह खटकती है। उसी पीड़ासे जब तकलीफ हृदयसे अधिक बढ़ जाती है, तब अनाप-शनाप बकने लगता हूँ। क्षमा करो, क्षमा करो। अब ऐसी भूल कभी न होगी।

मैंने अपने पिछले खतमें 'तन'पर लिखा था। आओ, आज उसी मसलेको जहाँ छोड़ा था, वहींसे फिर उठाकर जो कुछ अभी और कहना बाकी है, उसे भी कह सुनाऊँ।

तनपर जो कुछ मैंने लिखा है, उसे देखकर, देवि, यह न समझ बैठना कि मैं 'तनका पुजारी हूँ।' नहीं, ऐसा नहीं है। मैं कुत्ता-पन्थी नहीं। मेरे मनमें, जहाँ तन नगण्य नहीं है, वहाँ वह प्रेमका प्रधान कारण भी नहीं है। उसका मान तो इसलिए है कि वह पात्र है उस आत्माका, जिसका मैं प्रेमी हूँ। मैं अघोरी नहीं कि शवसे प्रीति करता फिरूँ। रूप भी अनित्य और अस्थायी है। गुलाबका फूल प्यारा है, इसलिए जरूर कि उसका रूप आँखोंको लुभा लेता है, लेकिन, वास्तवमें, उसकी सुरभि मनको हरती है। यदि ऐसा न होता तो टेसूके फूलको लोग गुलाबसे अधिक प्यार करते होते। कञ्चनसे अधिक रत्नकी प्रतिष्ठा है। सुन्दर शरीर तभी सुन्दर होगा जब उसमें सुन्दर आत्माका बास हो। नहीं तो यदि कनक-घटमें अमृतके स्थानमें सुरा भरी हो तो कल-वरियाको छोड़कर, दूसरी कौन-सी वह जगह है, जहाँके लोग उसे लेनेके लिए आतुर होंगे। इसी तरह, वे लोग भी उसे अपनानेके लिए दौड़ पड़ेंगे, जो उसके सोनेको बेचकर रुपया कमाना

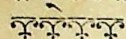
चाहते हैं। समाजमें ऐसे आदमी हैं, जो नर-तनका क्रय-विक्रय करते फिरते हैं। परन्तु उनके घृणित व्यापारकी न तुम प्रशंसा करती हो और न मैं। इसलिए यदि तन नगण्य नहीं है, तो वह, यथार्थमें, गौण, अति गौण है। प्रेमके जगत्में आत्माहीका आधिपत्य है। दो आत्माओंका संयोग ही नर-योनिमें परम पवित्र माना गया है। क्योंकि इन दो भिन्न जीवोंके मिलनसे दोनोंकी कमी मिट जाती है; दोनों जो पहले अपूर्ण थे, मिलकर सम्पूर्ण हो जाते हैं। दोनों एक प्राण होकर जीवनकी सिद्धि लाभ करते हैं; इस संसारमें अपने आपको सार्थक बनाते हैं, और जहाँ पहले खण्डित होनेके कारण वे असमर्थ और अपाहिज थे, वहाँ वे, संयोगके बाद, पूर्ण होकर अपने जीवन-धर्मको निवाहनेके लिए समर्थ और सबल हो जाते हैं। प्रेममें यही तो खूबी है कि दो अनमेल आत्माओंको वह उसी तरह एक रूप और एक रस कर देता, जैसे संसारमें तन-मनका संयोग है। एक होते हुए भी वे दोनों भिन्न हैं; और उनकी भिन्नतामें भी एकता है। 'दो तन एक प्राण'की कहावत प्रसिद्ध है। मनुष्य था पशु और पशु आज भी बना है। लेकिन जहाँ पहले वह निरा पशु था, वहाँ अब उसमें वही दैवी, वही ईश्वरीय अंश सजग और सचेत हो गया, जो उसको पशुसे देवता बना सकता है। प्रेमहीमें यह अपार शक्ति है कि हममें जो कुछ खोटापन है उसे जला दे और जो कुछ खरा है उसे अधिकाधिक निखारता जाय। मानव-समाजके विकासका यही रहस्य है। माँको देखो। बच्चेकी रक्षामें वह अपने प्राणोंकी परवा नहीं करती, यद्यपि प्राणोंकी ममताके आगे दुनिया-की सारी चीजोंको आदमी हँसी-खुशी छोड़नेके लिए तैयार हो

जाता है। सावित्रीने इसी तरह अपने प्राणोंको जोखिममें डालकर अपने प्रियतमकी जान बचाई थी। अपनी खुदोको भुलाकर, दूसरे-के हितमें अपने जीवनकी सफलता, अपना सुख और कल्याण, देखना हमें पहले-पहले प्रेम ही सिखाता है।

तुम कह सकती हो कि इसी प्रेमके कारण अनादि कालसे स्त्रियोंको पुरुष छलते आए हैं। तुम उन अनेक उदाहरणोंको दे सकती हो, जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि पुरुषकी नीचताने स्त्रीके प्रेमसे सदा अनुचित लाभ उठाया। स्त्री सचमुच पुरुषकी पशुताका शिकार आज भी बनी हुई है। ऐसी दशामें तुम्हें यदि मेरे प्रेममें अविश्वास है या कभी-कभी उसके बारेमें तुम्हारे हृदयमें शंका उत्पन्न हो आती हो तो कौन-सी अचरजकी बात है? जो कुछ तुम कहती हो, वह ठीक है। अपनी महारानी-की बात काटनेकी मुझमें हिम्मत कहाँ? फिर, तुमसे तो जवान लड़ाना भी नहीं चाहता। इतनी बे-अदबी मुझसे न होगी। मैं मानता हूँ कि पुरुष नीच है, लेकिन उसे नीचताके पङ्कसे उठानेकी शक्ति, स्त्रीको छोड़कर और किसमें मिलेगी। दोनों ही प्रकृतिके हाथके रचे हुए खिलौने हैं। दोनोंहीको उसने अपना मतलब पूरा करनेके लिए गढ़ा है। लेकिन गढ़ा है इस खूबीसे कि जबतक दोनों एक न हों, तबतक उसका काम नहीं चल सकता। इसीलिए उसने एकमें दूसरेके लिए वह कशिश भर दी है कि जबतक वे मिलते नहीं, तबतक छटपटाते रहते हैं। इसी कशिश, इसी खिंचाव, इसी आकर्षणको प्रेम या आसक्ति कहते हैं। यह ठीक है कि स्त्री या पुरुष अपनी अपूर्णताके कारण इसी आसक्तिके फन्देमें फँसकर प्रायः अर्थका अनर्थ कर डालते हैं, जिसकी वजहसे

उन्हें अपने प्राणोंतकसे भी हाथ धोना पड़ता है। भूल-चूककी माफ़ी प्रकृतिके राज्यमें नहीं मिलती। चूके नहीं कि मारे गए।

इन सबके होते हुए भी, क्या तुम्हें इस बातसे इन्कार है कि स्त्री पुरुषसे भिन्न और बड़ी है? पुरुष, एक लेखकके शब्दोंमें, जहाँ विराम चिह्न है वहाँ स्त्री अल्प-विराम ही है। पुरुष वह पहेली है, जिसका आदि-अन्त सभीको मालूम है। परन्तु स्त्री तो उस पहेलीका नाम है, जिसका कोई उत्तर नहीं। वह सवाल है जिसका कोई जवाब नहीं; वह समस्या है जिसका कोई समाधान नहीं। नारी एक अज्ञात रहस्य है—वह रहस्य है, जो अज्ञेय सौर अगम्य है। संसारकी सारी शक्तियोंकी जहाँ वह अजस्र स्रोत हैं, वहाँ उस स्रोततक पहुँचनेवाला आजतक कोई माईका लाल पैदा नहीं हुआ, उसपर अधिकार जमाना दूरकी बात है। और पुरुष वैसा ही तो होगा, जैसा उसकी जननी और प्रेमिका उसे बनाएगी। अपने बलपर हम कुछ भी तो नहीं कर-धर सकते। क्योंकि तुम्हीं तो हमें पुरुषार्थ देकर पुरुष बना सकती हो, तुम्हींसे बल पाकर हम बलवान् हो सकते हैं। तुम्हीं, माताके रूपमें हमें जीवनका दान देती हो और प्रेयसी बनकर तुम्हीं हमें स्वार्थको भुलाकर दूसरेके सुख-दुःख के लिए जीना-मरना सिखाती हो। हमारी अपात्रता तुम्हारा कलंक है। हमारी दुर्बलता तुम्हारी देन है। तुम यदि अपने असली स्वरूपको न भूलो और अपात्रोंको उत्साहित करनेकी टेवको छोड़ दो, तो देवि, पुरुष अपना कमीनापन छोड़ दे और स्त्रीकी अनुचित करुणासे उत्तेजित होकर अपने स्वार्थोंकी पूजा करना भूल जाय। तुम्हीं तो हमें स्वर्ग भेजती और तुम्हारी ही बदौलत हम नरकके अतिथि बन जाते हैं। अपनी इस अगम्य,



अपार, अज्ञेय शक्तिको यदि तुमने न भुलाया होता तो पुरुष अपनी पशुता और पुरुषताको सदियों पहले त्याग चुका होता ।

आत्मसमर्पण प्रेमका परिणाम है । परन्तु, देवि, प्रेमके अभावमें कितनी स्त्रियाँ आत्म-समर्पण करनेसे हिचकती हैं । तुम भी तो मन एकको देकर भी तनका समर्पण किसी दूसरेको करने जा रही हो, जिसे समर्पणके लिए तुमने नहीं चुना ; बल्कि दूसरे चुन देंगे । ऐसी दशामें यदि कुछ स्त्रियाँ एकसे अधिकको तन देती फिरें तो अजरजकी कौन-सी बात होगी ? इससे पुरुषके हौसले बढ़ते और वह नित्य नए शिकारकी खोजमें इधर-उधर व्याकुल घूमा करता है । जब स्त्री अपनी आत्माके खिलाफ दूसरोंके कहनेसे अपने पवित्र तनका सौदा करनेके लिए रजामन्द हो सकती है, तब वह क्षणिक उन्माद या मोहमें गैरोंको भी अपने तनके उपयोगका अवसर प्रदान कर सकती है । दोष स्त्रीका, पर दोषी पुरुष समझा जाय । बिगाड़ें आप, बिगाड़नेपर भला-बुरा कहें पुरुषको । यह नीति नहीं, अनीति है ; न्याय नहीं, अन्याय है ; सत्य नहीं, असत्यका समादर है । तुम तो समझदार हो । विचार तो करो कि जो कुछ मैंने ऊपर कहा है, वह ठीक है या गलत । प्रेमकी हत्या स्त्री करतो है या पुरुष ? यदि स्त्री इस हत्यामें हाथ बँटानेके लिए राजी न हो तो पुरुष बहुत जल्द इस पथसे मुँह फेर चुका होता । सीता और ताराको देख लो । रावणने लाख कोशिशें कीं, साम, दाम, दण्ड, भेद, सभी कुछ तो उसने बरता; परन्तु उसकी एक भी चाल न चली । सीताके तनपर उसीका अधिकार था, जिसे वह मनसे दे चुकी थीं । यदि उन्होंने भी मन एकको दिया होता और तन दूसरेको, तो रावणको

निराश न होना पड़ता । ताराकी कहानी मेरी बातकी सत्यताका प्रमाण है । क्या तुमने अपने पास-पड़ोसहीमें किसी ऐसी देवी-को नहीं देखा, जो मनसे तो एकको प्यार करती है, लेकिन तन-पर अधिकार दूसरेका है ? इसका क्या यह परिणाम नहीं हुआ कि उनका तन सिर्फ दूसरेका नहीं रहा—हो गया वह दूसरेसे दूसरोंका भी । यही 'अघटित' घटना हमारे संसारमें नित्य नए रूपोंमें रोज ही घटा करती है । इससे तुम लाख इन्कार करो, इन्कार करना भी चाहो तो इन्कार नहीं कर सकती हो । इस पहलूपर अधिक मैं कुछ न लिखूँगा । अपनी गुस्ताखीके लिए मैं माफी माँगता हूँ । यदि कोई ऐसी बात कह गया हूँ, जिससे तुम्हें चोट पहुँचे तो क्षमा करना । अप्रिय सत्यके भी कहने और सुननेकी जीवनमें जरूरत होती है । फिर, यदि उसे तुमसे मैं न कहूँगा तो दूसरा और कौन कहने आयेगा । तुममें मेरी जो अगाध श्रद्धा है, जो अपार प्रेम है, उसके नाते मुझे—और सिर्फ मुझे ही—इस संसारमें आज यह हक हासिल है कि मैं साफ-साफ सब बातोंको तुमसे कह दूँ । तुम भी तो मेरा प्यार करती हो । और तुम्हारे ही मुखारविन्दसे तो मैंने यह अटल सत्य सीखा है कि अनन्त प्रेममें अनन्त क्षमा होती है । इसलिए तुम मेरी बे-अदबीको देखकर भी अनदेखी कर जाओगी और अपने अनन्त प्रेममें, मुझे अपराधी मानते हुए भी, क्षमाके कणोंसे मेरे दोषोंको धो डालनेकी अनुकम्पा दिखाओगी ।

देवि, मानिनि, बहुत मान हो चुका । बहुत रुलाया, बहुत ही सताया । क्या मेरे लिए यह सजा कम है कि इतने दिनोंसे मैं तुम्हारे दर्शनोंसे विमुख हूँ और तुम्हारी, रसभरी, सलोनी आँखों-

लव् लेटर्स
❦❦❦❦❦

के देखनेके लिए तड़प रहा हूँ । बहुत हुआ । अब तो पसीजो और दयाकी भीख देकर मुझे निहाल कर दो । तुम्हीं बताओ, तुम्हें छोड़कर मैं अब और कहाँ जाऊँ ? तुम्हारा हूँ और तुम्हारा ही सदा रहूँगा । जहाँ कहीं जाऊँगा, तुम्हारे नामसे बिकूँगा ।

सुनिए, बिटपवर, पुहुप तिहारे हम,
राखिहौ हमें तो सोभा रावरी बढ़ावेंगे ।
तजिहौ हमें तो हू बिलग न मान कछू;
जहाँ जहाँ जैहैं, तहाँ दूनो जस गावेंगे ॥
सुरनि चढ़ेंगे, नर-सिरनि चढ़ेंगे नित,
सुकवि 'अनीस' हाट-बाटनि बिकावेंगे ।
देश में रहेंगे, परदेश में रहेंगे,
काहू भेसमें रहेंगे, तऊ रावरै कहावेंगे ।

ठीक है, देश हो या परदेश हो, जहाँ कहीं भी मैं रहूँगा ; वहीं तुम्हारा ही कहाऊँगा, और तुम्हारा ही 'दूनो जस गावेंगे ।' फिर, यह मान किसपर और किस लिए ? दुतकारा, ठुकराया, कठोरसे कठोर बातें सुनाईं । लाख माफी माँगी, मिन्नतें-आरजू हर तरहसे कीं ; पर किसी बातका कुछ भी असर न हुआ । पत्थर-की मूर्ति बनकर मेरी विनतियोंको सुनी-अनसुनी कर गईं । महीनों ही दूर पड़ा-पड़ा तुम्हारे नामका जप करता और तुम्हारे प्रेमकी याद कर किसी तरह अपने बेचैन मनको समझाता रहा हूँ । एक-एक दिन पहाड़से भी भारी मालूम होते थे, परन्तु किसी-न-किसी तरह एक-एक करके वे भी अन्तमें कट ही गए । लेकिन अब तुम्हारे पास जानेकी हिम्मत नहीं होती । जाऊँ तो किस आशा

से ? बोलोगी या नहीं ? देखकर तुम्हें खुशी होगी, या मुँह घुमा-
लोगी ? तुम्हें देखते ही—इतने दिनोंके बिछुड़नके बाद, तुम्हें
देखते ही—मेरी क्या दशा होगी । कहीं खुशीसे पागल तो न
हो उठूँगा ? अनाप-शनाप कुछ कर तो न डालूँगा ? क्या कहूँगा,
क्या न कहूँगा ? क्या कहना उचित होगा, क्या मुझे करना
पड़ेगा ? अपराधी तो मैं, दोषी तो मैं, फिर कैसे बिना बुलाए
तुम्हारे सामने जानेकी मुझे हिम्मत हो ? लाख इच्छा होते हुए
भी तो पैर नहीं उठते । दिल चाहता है कि दौड़ चलूँ, पर पिंडु-
लियाँ भयसे थर-थर काँप उठती हैं । तुम्हीं बुलाओ तो आऊँ ।
अभय-दान दो, प्रेमका फिरसे सन्देश दो, तब मुझे ढाढ़स
बँधेगा । नहीं तो मरना भला ; परन्तु दोबारा तुम्हारी रुखाईका
सामना करना मेरेसे आहत आदमीकी सामर्थ्यके बाहर है ।
इसीलिए कहता हूँ, बहुत हुआ, बहुत सताया । मान कर चुकीं ।
उसका अब अन्त होना चाहिए । संसारमें और सब चीजों-
का अन्त है, यदि अन्त नहीं है तो तुम्हारे एक मानका । यदि
वह अनन्त है तो फिर क्यों पहले यह विश्वास दिलाया था कि
मेरे लिए तुम्हारी क्षमा भी अनन्त है ? उस वचनको तो अब पूरा
कर दिखाओ । मैं इतने दिनोंमें मर मिटा, मेरा मान चकनाचूर
होकर धूलमें पड़ा है । तुम्हारे प्रेमका जो गर्व था, वह अब
मलीन हो गया । इतनेपर भी 'ना मलीन तेरो मान री !'

मान छोड़ो, न छोड़ो, 'तुम्हार मरजी ।' मैंने तो जिस दिन
दिल-बदलौवलकी रस्म अदा की थी, उसी दिन अपने जीवनके सारे
दिन भी तुम्हारे चरणोंमें अर्पित कर दिए थे । तुम्हें जब मैंने
अपने प्रणयकी अधखिली कली भेंट की थी, तभी उसका फूल

लव् लेटर्स
❦❦❦❦❦

११२

और फल भी समर्पित कर दिया था। जीवनकी जो आशाएँ, अभिलाषाएँ और आकांक्षाएँ अनन्त धारोंसे अनन्त दिशाओंमें बहतीं, उन सबको उस दिन एक धारमें लाकर एक ही ओर मैंने बहा दिया। वे अब न तो फिर कभी विभिन्न धाराएँ हो सकती हैं, और न उनके बहावकी दिशा ही बदल सकती है। मेरा सब सुख-दुःख तुम्हारे हाथ है। तुम्हारी कृपासे सुखी होऊँ, तुम्हारी अकृपासे रोऊँगा। तुम्हें दुःखित देखकर दुखी रहूँगा, और तुम्हारे सुखसे सुखी होऊँगा। अपनाओ तो बाह-बाह, न अपनाओ तो भी बाह-बाह। जीवनमें सुखी बिरले ही होते हैं। मनुष्य दुःखका कीड़ा है। फिर मैं क्यों अपने आपको दुनियाके बाहर समझूँ। तुम्हें प्यार करनेहीमें मुझे सुख है। मैं अपने धर्मको निबाहूँगा। तुम्हें जो उचित समझ पड़े, वह तुम करना।

तुलसी वृन जल कूलकी, निर्धन निपट निकाज।
का लावै, का जाय सँग, बाँह गहेकी लाज॥

तुम्हारा कातर प्रेमी,
—कृष्ण

राधाका एक पत्र कृष्णके नाम

[प्रेरक—श्री० पण्डित कृष्णकान्त मालवीय]

[जेलखानेसे आनेके बादसे अस्वस्थताके कारण प्रायः घरपर ही रहता हूँ। अगर शरीर कुछ अच्छा हुआ तो प्रातःकाल थोड़ा-सा टहल लेता हूँ। एक रोज टहलता हुआ द्रौपदीघाटकी ओर जा निकला। गङ्गा-तटसे कुछ दूर ही था कि दृष्टि सड़कके किनारे पड़े एक सुन्दर लिफाफेपर पड़ी। कौतूहल-वश मैंने उसे उठा लिया। लिफाफा खुला था और उसपर किसी-का नाम-पता कुछ न था। अन्दर एक पत्र रक्खा हुआ था। चलते-चलते मैंने उसे खोलकर पढ़ना आरम्भ किया। पत्र राधा नामकी किसी प्रेमिकाने अपने कृष्ण नामके प्रेमीको लिखा था। मैंने पत्रका कुछ अंश पढ़ा और सोचने लगा, शायद किसी स्नानार्थिनीका पत्र है और असावधानीसे गिर गया है। बेचारीको याद पड़ेगा तो अवश्य ही ढूँढ़ती आयेगी। असम-जसमें पड़ वहीं ठहर गया। जब आध घण्टेतक कोई न आया तो लाचार घर पहुँच कर पत्रको मैंने मेजकी दराजमें डाल दिया।

इस घटनाके कई दिन बाद जब मार्चके 'चाँद' में मैंने 'राधा-
के नाम कृष्णका पत्र' छपा देखा तो मुझे उस पत्रका खयाल
आया। दराजसे निकालकर पढ़ा तो मेरा कौतूहल और भी बढ़
गया क्योंकि पढ़नेसे स्पष्ट मालूम हुआ कि इसका सम्बन्ध
उन्हीं पत्रों से है, जो 'चाँद' में छपे हैं। मैंने इसलिए यह उचित
समझा कि यह भी 'चाँद' में छप जाये। मुझे आशा है, पत्रकी
लेखिका महोदया इसके लिए मुझे क्षमा करेंगी। इसके सिवा
उनके पत्रका दूसरा सदुपयोग मैं कर नहीं सकता था।]

—कृष्णान्त मालवीय

लिखी जायेंगी किताबें दिलकी तफसीरें बहुत।
होंगी ऐ खाबे-जवानी, तेरी तावीरें बहुत ॥

कृष्ण,

काश मैं भी तुम्हारी-सी रङ्गीली भाषा लिख सकती। तुम-
सा ही भाषापर मेरा अधिकार होता। तुम्हारा-सा ही कुबेरके
भण्डारके सदृश मेरा भी शब्द-भण्डार होता। क्या खानी है,
गंगाकी धारा-सी भाषा प्रवाहित होती है। कालिन्दीका कलकल
नाद कहीं सुनाई नहीं देता। शब्दोंमें टीसोंकी टीसन है। वेदना-
का चीत्कार हृदयको हिला देता है और पढ़ते-पढ़ते ऐसा मालूम
होता है कि तुम्हारे बाहुपाश मदान्धतासे आलिङ्गन करनेको
बढ़ते आ रहे हैं। मुझे चाटुकारीकी आदत नहीं। तुम स्वयम्

नहीं। यह पानीकी उस छोटी बूँदके समान है जो बूँद-बूँदकर पहाड़से टपकती है, किन्तु जो आगे बढ़कर एक महान् नद बन जाती है। यह वह महान् नद है, जो सुखके दरिया बहाता, झूलाता, थिरिकता, चारों ओर आनन्दकी वर्षा करता, फैलता चला जाता है, जो मनुष्योंके हृदयको आनन्दसे पूर्ण करनेवाले बेड़ोंका वाहक है, जो वीरान मैदानों और जंगलोंको रंगविरंगे सुन्दर सुमनोंकी बनस्थली बना देता है और जो उत्सुक किसानोंके लहलहाते खेतोंको प्रफुल्लित कर देता है। इसके साथ ही साथ स्त्रीका प्रेम, एक भोषण जल-प्रपात है जो वर्षाके तूफानमें आशाकी क्यारियोंको डुबोकर नष्ट कर देता है, जो विचारके बाँधोंको तोड़कर मनुष्यकी पश्चिमाके मन्दिरों और धर्मके देवालयोंको मिट्टीमें मिला देता है और जो अपने प्रचण्ड वेगमें गाँवोंके मवेशियों और गरीब किसानोंके भोषड़ोंको बहाता, नाश करता चला जाता है। स्त्री क्या है, यह कौन कह सकता है, किन्तु यह सत्य प्रतीत होता है कि सृष्टिके आरम्भमें जब अन्तर्यामीने संसारके क्रमका विचार किया, उस समय रचना-क्रमके साँचेमें उसने स्त्री-प्रेमके बीजको डाल दिया, क्योंकि यह अपनी विषम और अचिन्तनीय उत्पत्ति और वृद्धिसे समानताको जन्म देनेवाला है। यह युद्ध और सन्धि कराता है और इस तरहसे भी समानता स्थापित करता है। कभी यह नीचोंको अकथनीय आश्चर्यजनक उँचाईपर पहुँचा देता है और कभी उँचोंको धूल-धूसरित कर मिट्टीमें मिला देता है। इसलिए जबतक स्त्री, प्रकृतिकी विस्मयजनक बेटी, संसारमें मौजूद है, पुण्य और पाप अलग-अलग नहीं उदय हो सकते या चग सकते, क्योंकि स्त्री सदा प्रेममें मदमत्त प्रेमके तीरोंको लिए,

सामने खड़ी रहती है और हमारे भाग्यका निबटारा किया करती है। कभी यह अमृत समान मीठे शब्द-जलको कटुता और जहरके प्यालेमें डाल देती है और कभी इच्छाके हलाहल से जीवनकी स्वच्छ, पवित्र स्वाँसको विषमय कर देती है। बगावत व्यर्थ है, पुरुष जिधर चाहे भागे, हर तरफ उसीका सामना है। स्त्रीकी निर्बलता, उसका प्रेम, उसकी कोमलता पुरुषकी शक्ति है। उसका साहस, उसका हठ, उसकी विरक्तता, उसकी निडरता पुरुषके विनाशका कारण है; पुरुष उसका है और उसीका होकर रह सकता है। स्त्री आकाशके समान अनन्त, समुद्रके समान गम्भीर, विद्युतके समान चपल और विधिके समान अज्ञात और अज्ञेय है। स्त्रीका ही दूसरा नाम अदृष्ट है। पुरुष, इसलिए स्त्रीसे वचनेका प्रयत्न मत कर, तू जहाँ भी भागकर जायगा, भावीके समान वह तेरे साथ रहेगी और जो कुछ तू निर्माण करेगा, वह उसीका होकर रहेगा।”

तुमने व्यर्थमें ही हम दोनोंकी पुरानी कथा लिख डाली। इसके लिखनेसे यदि तुम सब बातोंपर विचार कर सको तो शायद भविष्यमें कुछ लाभ ही हो। तुमने पहले ही पत्रमें लिखा है कि “मैंने तुम्हें अङ्क भरा, श्रद्धा और भक्तिसे तुम्हारे अधरोंके अर्चना की..... तुमने कई बार भागनेकी कोशिश की, लेकिन तुम्हारे हृदय और तुम्हारे पैरोंने तुम्हारी एक न सुनी और बरबस तुम मेरे भुज-पाशमें बँधी पड़ी रहीं।” एक दूसरी जगहपर तुमने लिखा है कि “उसी पगलाहटमें मैं नतमस्तक हो तुम्हारी कलाई को एकाएक चूमने लगा।.....” इसके बाद मैंने फिर तुमसे कर-चुम्बनकी प्रार्थना की, उदारतासे तुमने मुझे बायाँ हाथ दिया

जिसे मैंने सत्कारके साथ, विनम्रताके साथ चूमा था। लेकिन उसके बाद तुम खिंच गई। क्यों, मुझे नहीं मालूम। चोट तो लगी, पर मैंने उस घड़ीसे फिर अभी सालोंतक न बचनसे, न निगाहसे और न किसी चेष्टासे तुम्हें छेड़ा। क्योंकि मैं ऐसे प्रेमका लोभी नहीं हूँ, जो बरबस बलसे छीना जाय। प्रेमका सौदा खुले बाजार होता है, बरबसताका वहाँ सवाल नहीं। जिसको जी चाहे दे, न जी चाहे न दे।” एक दूसरे स्थानपर तीसरे पत्रमें तुमने लिखा है—“आँखोंमें अप्रसन्नता तो प्रत्यक्ष है, परन्तु उसके पीछे गुप्त मुसकान और निमन्त्रण भी तो साफ-साफ झलक रहे हैं।” मैं अपनी ओरसे कुछ भी नहीं कहना चाहती, मुझे शिकायत ही नहीं और हो भी तो मैं करनेवाली कौन और क्यों करूँ? पर न्याय और सत्यके नामपर, धर्मके और ईश्वरके नामपर उपर्युक्त उद्धरणोंको एक बार नहीं, दो बार और तीन बार पढ़कर तुम्हीं सोचो कि ये क्या कहते हैं?

तुमने, जब अङ्कमें मुझे भरा था, तब क्या तुमने मुझसे अनुमति ली थी, मुझसे आज्ञा माँगी थी और मेरी स्वीकृति पाकर मैंने यह किया था? तुम कहते हो पगलाहटमें तुमने मेरी कलाई चूम ली थी, तुमने इसके पहले मुझसे आज्ञा तो नहीं माँगी थी? तुमको शिकायत यह है कि मैं खिंच गई। गोया मैं पहले कभी आगे बढ़ी थी। तुम सालभर अलगसे रहे, इशारेसे, कनायेसे या किसी चेष्टासे, तुम कहते हो, मुझे छेड़ा नहीं—क्या न्याय है, क्या फैसला है, कैसी उदारता है, और क्या प्रेम है! तुमने एक जगहपर लिखा है—“अपने हियसे पूछिये, मेरे हियकी बात।” क्या मुझे अधिकार है कि मैं यह कह सकूँ कि, ‘अपने

लव लेटर्स
 नमस्ते

जियसे जानिए, मेरे जियकी बात ?' तुम शायद चाहते थे कि मैं तुम्हे पागल भी बनाऊँ, साथ ही तुमसे यह भी कहूँ कि मैं मर रही हूँ, लिहाज, मुझे अपने अङ्कमें भर लो, खुदाके नामपर मुझे चूम लो, मैं मरी जा रही हूँ, मिन्नत करती हूँ, प्रार्थना करती हूँ, और तुम्हारे पावों पड़ती हूँ। कृष्ण, कहते हो "प्रेम सचमुच अन्धा है", पागलपन, अपनेको भूल जाना, अपनी सुध-बुध खो बैठना एक तरहका अन्धापन ही है। मैं भी अन्धी थी और तुम भी अन्धे थे, इसी कारणसे तुम्हारे भुज-पाशसे निकलनेकी कोशिश करनेपर भी मैं निकल न सकी और खड़ी रह गई; किन्तु हाय, यह अन्धापन तुम्हारा बहुत दिनों टिक न सका, तुम्हें दिखाई देने लगा कि मैं खिंच गई और अपनेही शब्दोंमें सालोंतक तुमने कोई चेष्टा नहीं की। बाहर रे कृष्ण, और इन सब बातोंके होते हुए भी दोषी मैं हूँ। जरूर हूँ, मैं स्त्री हूँ और तुम पुरुष, मेरा दोष जरूर है और इसकी सजा इन घड़ियोंकी स्मृतिके रूपमें मुझे जीवनभर सहनी पड़ेगी। तुम कहते हो कि "मैं ऐसे प्रेमका लोभी नहीं, जो बरबस बलसे छोना जाय।" ठीक है, तुम वेश्याओं और निम्न श्रेणीकी, सड़कपर बैठनेवालियोंका प्रेम चाहते होगे, जो अपना प्रेम लुटाया करती हैं और उसको खुले दिलसे वर्षा किया करती हैं। जो चाहे उसे ले ले। सच कहो, क्या तुम चाहते थे कि मैं तुमसे कहती कि मुझे छोड़ो। मेरे मस्तिष्ककी क्रियाशीलता-पर भी कुछ विचार करो, दोषी तो मैं हूँ ही, मुझे तुमने कलङ्कित किया और तुम्हें अब भी अधिकार है कि जितना दोषारोपण तुम कर सकते हो कर लो, मुझे कोई उज्र नहीं, कोई गिला नहीं। सोचो तो कि एक बार, दो बार तुम्हारे स्पर्शका आनन्द प्राप्त

करनेके बाद मेरे मस्तिष्कमें किसी तरहके विचारोंका उठना स्वाभाविक था या नहीं ; मुझे भविष्यकी चिन्ता करनी चाहिए थी या नहीं ? यह भी सोचो कि क्या सम्भव भी था कि अगर दस सितम्बरको मुझे स्वर्गीय सुख मिला था तो ग्यारहवीं सितम्बरको मैं दौड़कर तुम्हारे अङ्कमें भर जाती । अपनेको इस तरह खो देनेके कारण क्या किसी तरहका शील-सङ्कोच, नजरका नीची रखना मेरे लिए स्वाभाविक बात न थी ? खिंच गई, क्या मैं कोई तलवार थी ? मैं खिंच गई थी तो खिंच गई थी, तुम्हारा पागलपन कहाँ चला गया था ? कहलाओ नहीं, कृष्ण !

“तुमने मुझको हाथसे गर खो दिया अच्छा किया मेरा क्या बिगड़ा, तुम्हारी दिलगी जाती रहो ।”

लो, मेरी एक सहेली आ रही है, मैं तो अपने हृदयके विचारोंको लिख भी नहीं सकती, इसकी भी आजादी नहीं । खैर, खत्म करती हूँ, अधिक कहने सुनने से लाभ भी क्या है ?.....

तुम्हारी,

नहीं, नहीं,

अपनी राधा



लव लेदर्स
 नन्दिनी

१२२

जियसे जानिए, मेरे जियकी बात ?' तुम शायद चाहते थे कि मैं तुम्हे पागल भी बनाऊँ, साथ ही तुमसे यह भी कहूँ कि मैं मर रही हूँ, लिझाह, मुझे अपने अङ्कमें भर लो, खुदाके नामपर मुझे चूम लो, मैं मरी जा रही हूँ, मिन्नत करती हूँ, प्रार्थना करती हूँ, और तुम्हारे पावों पड़ती हूँ। कृष्ण, कहते हो "प्रेम सचमुच अन्धा है", पागलपन, अपनेको भूल जाना, अपनी सुध-बुध खो बैठना एक तरहका अन्धापन ही है। मैं भी अन्धी थी और तुम भी अन्धे थे, इसी कारणसे तुम्हारे भुज-पाशसे निकलनेकी कोशिश करनेपर भी मैं निकल न सकी और खड़ी रह गई; किन्तु हाय, यह अन्धापन तुम्हारा बहुत दिनों टिक न सका, तुम्हें दिखाई देने लगा कि मैं खिंच गई और अपने ही शब्दोंमें सालोंतक तुमने कोई चेष्टा नहीं की। वाह रे कृष्ण, और इन सब बातोंके होते हुए भी दोषी मैं हूँ। जरूर हूँ, मैं स्त्री हूँ और तुम पुरुष, मेरा दोष जरूर है और इसकी सजा इन घड़ियोंकी स्मृतिके रूपमें मुझे जीवनभर सहनी पड़ेगी। तुम कहते हो कि "मैं ऐसे प्रेमका लोभी नहीं, जो बरबस बलसे छोना जाय।" ठीक है, तुम वेश्याओं और निम्न श्रेणीकी, सड़कपर बैठनेवालियोंका प्रेम चाहते होगे, जो अपना प्रेम लुटाया करती हैं और उसको खुले दिलसे वर्षा किया करती हैं। जो चाहे उसे ले ले। सच कहो, क्या तुम चाहते थे कि मैं तुमसे कहती कि मुझे छेड़ो। मेरे मस्तिष्ककी क्रियाशीलता-पर भी कुछ विचार करो, दोषी तो मैं हूँ ही, मुझे तुमने कलङ्कित किया और तुम्हें अब भी अधिकार है कि जितना दोषारोपण तुम कर सकते हो कर लो, मुझे कोई उज्र नहीं, कोई गिला नहीं। सोचो तो कि एक बार, दो बार तुम्हारे स्पर्शका आनन्द प्राप्त

करनेके बाद मेरे मस्तिष्कमें किसी तरहके विचारोंका उठना स्वाभाविक था या नहीं ; मुझे भविष्यकी चिन्ता करनी चाहिए थी या नहीं ? यह भी सोचो कि क्या सम्भव भी था कि अगर दस सितम्बरको मुझे स्वर्गीय सुख मिला था तो ग्यारहवीं सितम्बरको मैं दौड़कर तुम्हारे अङ्कमें भर जाती । अपनेको इस तरह खो देनेके कारण क्या किसी तरहका शील-सङ्कोच, नजरका नीची रखना मेरे लिए स्वाभाविक बात न थी ? खिंच गई, क्या मैं कोई तलवार थी ? मैं खिंच गई थी तो खिंच गई थी, तुम्हारा पागलपन कहाँ चला गया था ? कहलाओ नहीं, कृष्ण !

“तुमने मुझको हाथसे गर खो दिया अच्छा किया मेरा क्या बिगड़ा, तुम्हारी दिल्लगी जाती रहो ।”

लो, मेरी एक सहेली आ रही है, मैं तो अपने हृदयके विचारोंको लिख भी नहीं सकती, इसकी भी आजादी नहीं । खैर, खत्म करती हूँ, अधिक कहने सुनने से लाभ भी क्या है ?.....

तुम्हारी,

नहीं, नहीं,

अपनी राधा



[श्री स्वर्गीय पद्मसिंहजी शर्मा]

कर लै चूमि चढ़ाय सिर, उर लगाय भुज भेटि ।
लहि पाती पियको लखति, बाँचति, धरति समेटि ॥



नैन नीर बरसत देखिबे को तरसत
लागे कामसर सत पीर उर अति की ।
पाये न संदेसे ताते अधिक अंदेसे बड़े
सोचे सुकुमारि पै न कहै मन गति की ॥
ताही समै औचक ही काहू आनि चीठी दीनी
देखत ही 'सेनापति' पाई प्रीति रति की ।
माथे लै चढ़ाई दोऊ, दृगनि लगाई चूमि
छाती लपटाय राखी पाती प्रानपति की ॥



सेनापतिजीने पाती पानेकी भूमिका खूब बढ़ाकर बाँधी है। प्राण-पत्रिका संदेसा न पानेसे सुकुमारीको अँदेसा (चिन्ता) बढ़ रही थी, उसकी आँखोंसे नीर बरसता था और देखनेको जी तरसता था, इत्यादि। प्राणपत्रिके पत्र पानेपर इस प्रकारको हर्षोत्पत्तिका कारण खूब खोलकर कह दिया है, जिससे देखनेवाला समझ जाय कि इस चिट्ठीको यह इतना महत्व क्यों दिया जा रहा है। साथेपर चढ़ाना, दोनों आँखोंसे लगाना, चूमकर छातीसे लिपटाना, यह सब क्यों हो रहा है ! बहुत दिनोंमें काले कोसोंसे कुशल-पत्र आया है इसलिए ऐसा हो रहा है।

पर बिहारीलालने लम्बे उपाख्यानकी कुछ आवश्यकता नहीं समझी। यह सारी कथा, 'प्रियकी पाती' यह शब्द अपनी ध्वनि-द्वारा स्वयं कह रहा है। प्रिय पास न होगा, दूर होगा, तभी पाती भेजेगा। इसकी भी जरूरत नहीं है कि वह इतनी दूर बैठा हो जिससे यथासमय संदेसे न पहुँच सकते हों और तभी चिट्ठीका इस प्रकार आदर किया जाय। प्रियकी प्रेम-पत्रिका कहींसे किसी दशमें आवे हर हालतमें वह इसी बरतावकी मुस्तहिक है कि हाथमें लेकर होठोंसे चूमी जाय, सिर चढ़ायी जाय, छातीसे लगायी जाय। भुजाओंसे भेटी जाय, आदरसे देखी जाय, उत्सुकतासे बाँची जाय और एहतियातसे गैरोंकी नजरसे बचानेको, लपेटकर रक्खी जाय। आखिर अन्तरंग सखीद्वारा प्राप्त प्रियकी "प्रेम-पत्रिका है", कुछ डाकद्वारा पहुँची 'समाचार-पत्रिका' नहीं है। सेनापतिके 'कुशल-पत्र' और बिहारीके 'प्रेम-पत्रमें' बहुत भेद है। बिहारीकी बन्दिश कितनी चुस्त है ! पेचमें कसी हुई रुईकी गाँठ है। इसके

लव लेटर्स
मुकाबलेमें सेनापतिका कवित्त ढीलमढाला फूला हुआ घासका
गट्टर है !

‘तोष’ कविने भी पियकी पातीका वर्णन अपने खास ढंगमें
खासा किया है—

“पढ़ि न सिराति पाती भूलि-भूलि जाती नेकु (देख)
सखियाँ न पावैं निज आँखियाँ दिये रहै ।
रूसती रिसाती हँसि-हँसि बतराती चूमि
चाहि-मुसकाती-प्रेम आसव पिये रहै ।
कहै कवि ‘तोष’ जिय जानि दुख काती ताते
छाती की तबीज पिय-पाती को किये रहै,
नेकु न पत्याती दिन राती इहि भौंति प्यारी
विरह अपाती ताकी काती सी लिये रहै ।”

—तोष



विरहिणीके पत्र

[कुछ प्राचीन कवियोंकी अनेखी सूझ]

पातो लिखि सुमुखि सुजान पिय गोविन्दको,
 श्रीयुत सलोने स्याम सुखनि सने रहौ ।
 कहैं पदमाकर तिहारी छेम छिन-छिन,
 चाहियतु प्यारे मन मुदिति घने रहौ ॥
 बिनती इतै है कै हमेस हू मुहैं तौ निज,
 पाइनकी पूरी परिचारिका गने रहौ ।
 याही मैं मगन मन मोहन हमारो मन
 लगनि लगाय लग मगन बने रहौ ॥१॥

×

×

×

बाँचत न कोऊ अब वैसियै रहति खाम,
 युवती सकल जानि गई गति याको है ।
 भूठ लिखिवेकी उन्हैं उपजे न लाज कुछ,
 जाय कुबजाके बसे निलज तियाकी है ॥

दूसरी अवधि 'द्विजदेव' राधिकाके आगे
 बाँचै कौन नारि जौन पोढ़ छतियाकी है ।
 ऐसे ही मुखागर कहो सो कहो ऊधो इहाँ,
 उठि गई ब्रजमें प्रतीत पतियाकी है ॥२॥



आहि कै कराहि काँपि कृशतन बैठी आई,
 चाहति सखीसों कहिबेको पै न कहि जाय ।
 फेर मसि-भाजन मँगायो लिखिबेको कछु,
 चाहत कलम गहिबेको पै न गहि जाय ॥
 एतेमें उमगि आँसुवानको प्रवाह आयो,
 चाहति है थाह लहिबेको पै न लहि जाय ।
 दहि जाय गात बात बूझेतें न गहि जाय,
 बहि जाय कागज कलम हाथ रहि जाय ॥३॥



ऊबत हो डूबत हो डगत हो डोलत हो,
 बोलत न काहे प्रीत रीति न रितै चले ।
 कहैं पदमाकर त्यों उससि उसासनिनों,
 आँसू है अपार आय आँखिन इतै चले ॥
 औधिहीके आगम लौं रहते बनै तो रहो,
 बीच ही क्यों बैरी बाद बेदना बितै चले ।
 एरे मेरे प्रान प्रान-प्यारेकी चलाचलमें,
 तब तो चले न अब चाहत कितै चले ॥४॥

आवति चली ही यह विषम बयारी देखि,
 दवे - दवे पाँयन किवारन तरजि दै ।
 कैलिया कलंकिनीको दैरी समुभाय मधु-
 माती मधुपालिनी कुचालिनि तरजि दै ॥
 आजु ब्रजरानीके वियोगको दिवस तातें,
 हरैं - हरैं कीर बकवादिन हरजि दै ।
 पी-पीके पुकारिवेकी खोलैं ज्यों न जीह न त्यों,
 जूहन पपीहनको बावरी बरजि दै ॥५॥



कियहु न मैं कबहूँ कलह, गढ्यो न कबहूँ मौन ।
 पिय अब लौं आयो न कत, भयो सुकारण कौन ॥ १ ॥



वायस राहु भुजंग हर, लिखति तिया तत्काल ।
 लिखि-लिखि मेदित फिरि लिखति, कारण कौन जमाल ॥२॥



पाती लिखी अपने करसों दर्ई हे रघुनाथ बोलाइके धावन ।
 और कढ्यो मुख पाठ यौं बेग कृपाकर आइये आवत सावन ॥



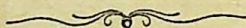
भाँति अनेकनिके सनमानकै दै बकसीस पठायो बुलावन ।
 पायो न पौरिलौं जान कहा कहौं बीच ही आय गयो मनभावन ॥



लावति न अञ्जन मँगावति न मृग मद,
 कालिन्दीके कूल ना तमाल तरे जाति है ।
 हेरति न घन बन गहन बनक बैनी,
 बाँधई रहति नीली सारी ना सोहाति है ॥
 गोकुल तिहारी यह पाती बाँचि है गो कौन,
 याहूमें तो कारे अखरानहीकी पाँति है ।
 जा दिनतें मिले बागमें री ! गूजरीसों कान्ह,
 ता दिनतें कारो रंग हेरे अनखाति है ॥



लिखन चहौं मसि बोरि जब, अरुनाई तुव पाँय ।
 तब लेखनिके शीशको, ईगुर रँग है जाय ॥



पगलीका पत्र

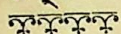
[ले० कविवर श्री० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध']

प्रियतम !

सुना है, तुम मुझे पगली कहते हो । हाँ, मैं पगली हूँ । तुम्हारे सुन्दर मुखड़ेकी पगली हूँ; तुम्हारे घुँघराले अलकोंकी पगली हूँ ; तुम्हारी साँवली सूरतकी पगली हूँ ; तुम्हारी जादू-भरी आँखोंकी पगली हूँ ; तुम्हारी सुधा-भरी मुस्कानकी पगली हूँ ; तुम्हारी उस मुरलिकाकी पगली हूँ, जो संसारको पागल बना देती है, और पगली हूँ उस पत्थरकी मूर्त्तिकी, जो वास्तवमें अनिर्वचनीय है ; आज दिन जो हमारा जीवन-सर्वस्व है ; जो पत्थर होकर भी मुझपर पसीजती है ; जो अकरुण होकर भी मुझपर उस करुण-रसकी वृष्टि करती है, जिसका स्वाद वही जान सकता है, जिसने उस रसको चखा है !

तुम कहोगे, छिः इतनी स्वार्थ-परायणता ! पर प्यारे, यह स्वार्थ-परायणता नहीं है, यह सब हृदयका उद्गार है, फफोलोंसे भरे हृदयका आश्वासन है, व्यथित-हृदयकी शान्ति है, आकुलता-भरे प्राणका आह्वान है, संसार-वञ्चिताकी करुण-कथा है, मरु-

लव लेटर्स



भूमिकी मन्दाकिनी है; और है सर्वस्व-त्यक्ताकी चिर-वृत्ति । मैं उन पागलोंकी बात नहीं कहना चाहती, जो बड़े-बड़े विवाद करेंगे, तर्कोंकी झड़ी लगा देंगे, ग्रन्थपर ग्रन्थ लिख जावेंगे ; किन्तु तत्त्व-की बात आनेपर कहेंगे, तुम बतलाए ही नहीं जा सकते, तुम्हारे विषयमें कुछ कहा ही नहीं जा सकता । मैं तो प्यारे ! तुमको सब जगह पाती हूँ ; तुमसे हँसती-बोलती हूँ ; तुमसे अपना दुखड़ा कहती हूँ ; तुम रीझते हो तो रिझाती हूँ ; रूठते हो तो मनाती हूँ । आज तुम्हें पत्र लिखने बैठी हूँ । तुम कहोगे यह पागलपन ही है । तो क्या हुआ, पागलपन ही सही, पगली तो मैं हई हूँ, अपना जी कैसे हलका करूँ, कोई बहाना चाहिए—

भरे हैं उसमें जितने भाव !

मलिन हैं या वे हैं अभिराम !

फूल-सम हैं या कुलिश-समान !

बताऊँ क्या मैं तुमको श्याम ?

हृदय मेरा है तेरा धाम !!

एक दिन सखियोंने आकर कहा—आज राणा महलोंमें आएँगे, बहुत दिन बाद यह सुधा कानोंमें पड़ी, मैं उछल पड़ी, फूली न समाई । महलमें पहुँची, फूलोंसे सेज सजाई, तरह-तरहके सामान किए । कहीं गुलाब छिड़का, कहीं फूलोंके गुच्छे लटकाए, कहीं पाँवड़े डाले, कहीं पानदान रक्खा, कहीं इत्रदान । सखियोंने कहा—‘यह क्या करती हो, हम सब किसलिए हैं ?’ मैंने कहा—‘तुम सब हमारे लिए हो—राणाके लिए नहीं । राणाके लिए मैं हूँ, ऐसा भाग्य कहाँ कि मैं उनकी कुछ टहल कर सकूँ ।’ एक दिन

राणाके पाँवमें कङ्कड़ी गड़ गई, उस दिन जीमें हुआ था कि मैंने अपना कलेजा वहाँ क्यों नहीं बिछा दिया, आज मैं ऐसा अवसर न आने दूँगी। धीरे-धीरे समय बीतने लगा, बहुत देर हो गई, राणा न आए। मैं घबराई, उठ-उठकर राह देखने लगी। जब बहुत उकताई, बीणा लेकर बजाने लगी; फिर गाया :—

गए तुम मुझको कैसे भूल !

किस लिए लूँ न कलेजा थाम ?

न बिछुड़ो तुम जीवन-सर्वस्व !

चाहिए मुझे नहीं धन-धाम !

तुम्हीं मेरे हो लोक-ललाम !!

गाना समाप्त होते ही राणा आए ! मेरा राम आया; जो मेरे रोम-रोममें समाया है, वह आया ! उनको देख, मैं अपनेको भूल गई ! उस समय मैंने क्या किया क्या नहीं, कुछ याद नहीं। वे बोले—मीरा ! मैंने कहा—‘नाथ !’ उन्होंने कहा—‘आज-कल तुमको क्या हो गया है ?’ मैंने कहा—‘क्या हो गया है ?’ उन्होंने कहा—‘तुम पगली हो गई हो, लोक-लाज धो बहाई है; कभी गाती हो, कभी नाचती हो, कभी साधुओंके संग फिरती हो, कभी ऐसा काम करती हो, जो राज-मर्यादाके अनुकूल नहीं। मीरा ! सँभलो, हमारा मुँह देखो।’ इस समय मैं उन्हींका मुँह देख रही थी, सोच रही थी—यही तो मेरे गिरिधर गोपाल हैं, यही तो मेरे बंशीवाले हैं। उनके कण्ठमें मुरली-सी माधुरी पाकर मुझको उन्माद हो रहा था, उनके स्वरूपमें प्यारे मुरली-मनोहरका सौन्दर्य देखकर मैं

आनन्द-समुद्रमें निमग्न हो रही थी। उनकी बात समाप्त होते ही मैंने कहा—‘मैं आपका ही मुँह तो देख रही हूँ ! क्या आपका गुणानुवाद गानेका मेरा अधिकार नहीं ? आपका गुण गाते-गाते जब मेरा मन नाच उठता है, तब मैं नाचने लगती हूँ। आप जो नाच नचाते हैं, वही नाच तो मैं नाचती हूँ, इसमें मेरा अपराध ? लोक-लाज किसे कहते हैं, मैं नहीं जानती। जो कार्य आपके प्रेममें बाधा डाले, उससे मैं नाता नहीं रखना चाहती। साधु-सन्त आपके ही रूप तो हैं, उनमें भी तो आप ही बसते हैं, उनकी सेवा-सुश्रूषा करना, आपहीको तो रिझाना है, फिर मैं आपको क्यों न रिझाऊँ ? मेरे राजा-महाराजा आप ही तो हैं—आपकी मर्यादा करनी ही तो राज-मर्यादा है। मैं जो कुछ कर रही हूँ, आपकी मर्यादाका महत्व समझकर ही कर रही हूँ, फिर वह अनुकूल क्यों नहीं ?’ यह कहते-कहते मैं प्रियतमके मुख-चन्द्रकी चकोरी बन गई, उनके ध्यानमें मग्न हो गई। जब आँखें खुलीं तो उस समय महलमें राणा नहीं थे। हृत्तन्त्रीमें यह ध्वनि हुई :—

रँग सका मुझे एक ही रंग !

दूसरोंसे क्या ! मुझको काम ?

भली या बुरी मुझे लो मान !

भले ही लोग करें बदनाम !

रमा है रोम - रोममें राम !!

कुछ दिन बीत गए। एक दिन कुछ सखियाँ आईं। उनका मुख सूखा हुआ था, आँखोंमें जल था, बात मुँहसे सीधे नहीं निकलती थी, उसके कलेजेपर पत्थर रक्खा हुआ था। उनके

हाथमें एक सोनेका कटोरा था। उसमें कुछ था। मैंने पूछा—
 'क्या है ?' वे बोल न सकीं, उनकी घिघी बंध गई, शरीर
 काँपने लगा। मैंने कहा—'डरकी बात क्या है, लाओ कटोरा
 मुझको दो। क्या इसे राखाने भेजा है ?' एकने कहा—'हाँ !'
 मैंने कहा—'इसमें सुधा है, मेरे लिए मेरे मनमोहनने जो भेजा
 है, वह दूसरी वस्तु हो नहीं सकती। यदि दूसरी वस्तु होगी,
 तो भी वह जीवन-धनके कर-कमलोंका स्पर्श करके सजीवनी
 बन गई होगी। मैंने उसको उनके हाथोंसे लेकर पान किया।
 उसमें अलौकिक स्वाद था। सुधा मैंने आज तक पी नहीं
 थी, उसकी माधुरीका वर्णन सुना था। उसे पीकर मुझे ज्ञान
 हुआ कि सुधा कैसी अलौकिक वस्तु है। मैं उसे जितना
 ही पीती थी, मेरा हृदय उतना ही उत्फुल्ल हो रहा था। मैं
 सब पी गई, फिर भी चाह बनी रह गई कि और होती तो
 पीती। इस सुधा-पान करनेके बाद ज्ञान हुआ कि वह मद कौन-
 सा है, जिसको पानकर आत्मा कुछ औरसे कुछ और हो जाती
 है। जिस दिन मैंने उसे पान किया, उस दिनसे तुम मेरी आँखों-
 में और अधिक समा गए, यह मिट्टीका संसार सोनेका बन गया
 और मेरा जीवन सार्थक हो गया। उसी दिनसे मैं वास्तवमें
 पगली हुई, और प्रायः मेरे कण्ठसे यह गान होता रहता है :—

गरल होवेगा सुधा - समान !

सुशीतल, प्रबल-अनलकी दाह !

बनेगी सुमन-सजाई सेज !

विपुल-कण्टक-परिपूरित रात !

हृदयमें उमड़े प्रेम - प्रवाह !!

संसार बुरी जगह है, बहुत कुछ निलेंप रहनेपर भी उसके पचड़े कुछ सता ही देते हैं। एक दिन कुछ कारणोंसे मैं खिन्न हो गई, बड़ी आत्म-ग्लानि हुई, भाव-परिवर्तनके लिए गृहोद्यानमें आई। सन्ध्या-समय था, हरे-भरे वृक्ष लहरा रहे थे, फूल फूले हुए थे, चिड़ियाँ गा रही थीं, तितिलियाँ नाच रही थीं और भौंरे गूँज रहे थे। वायु मन्द-मन्द चलकर तरु-दलोंसे खेल रहा था, कुसुमोंको चूम रहा था, तितिलियोंको प्यार कर रहा था और लताओंको गोदमें लेकर खेला रहा था। वृक्षोंका हरा-भरा और आनन्दित भाव देखकर मुझको बड़ा हर्ष हुआ। वे पृथिवीमें गड़े हुए थे, फिर भी प्रसन्न-बदन थे। जो दल चाहता उसे दल देते, जो फल चाहता उसे फल देते, जो उनकी छायामें जा बैठता, उसे आराम देते। नाना पक्षी उनकी गोदमें बैठे हुए चहक रहे थे। वे उनको सहारा दे रहे थे, उनके खेतोंकी रक्षा कर रहे थे। कोई ढेला मार जाता, तो भी उससे कुछ न बोलते; सम्भव होता तो एकाध सुन्दर फल उसको भी दे देते। मैंने जी ही जीमें कहा—धन्य है इनका जीवन ! क्या मनुष्यमें इतनी सहिष्णुता और उदारता भी नहीं ? फूलोंको ओर दृष्टि गई तो देखा, वे काँटोंमें रहकर भी विकसित थे। जो रसकी कामना करके उनके पास जाता, वे उसीको थोड़ा-बहुत रस दे देते, फिर भी निष्काम रहते। हवा पास होकर निकलती तो उसको सुरभित कर देते, झड़ पड़ते तो पासकी मिट्टीको सुगन्धित बना देते। सब ओर इस प्रकार आनन्दका प्रवाह और औदार्यका विकास देखकर मैं कुछ औरसे और हो गई। मन-ही-मन कुछ लज्जित भी हुई। इतनेमें चन्द्रदेव निकले, धीरे-धीरे

ऊपर आए। उनकी चाँदनीसे रात्रिका मुख उज्ज्वल हो गया, वसुधा धुल गई और उसपर बड़ी सुन्दर सफेद चादर बिछ गई। चन्द्र-देव हँस रहे थे और सब ओर सुधाकी वर्षा कर रहे थे। उनके इस औदार्यकी सीमा नहीं थी। सब ओर उनकी निराली ज्योति जग रही थी। सब उनके सुधावर्षणसे तृप्त थे। चन्द्रदेव सबको एक आँखसे देख रहे थे। उनके लिए फूल-काँटे, जल-स्थल, तृण-तरु, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग समान थे। वे तुम्हारे ही अङ्ग तो हैं, तुम्हारी ही एक आँख तो हैं, दो आँखसे किसीको कैसे देखते? मैं देरतक इन दृश्योंको देखती रही। जितना ही उनको देखती, जितना ही उनके विषयमें विचार करती, उतना ही विमुग्ध होती, उतना ही अपनेको भूलती, उतनी ही पगली बनती। जिधर मैं आँख उठाती हूँ, उधर ही नाना विभूतियोंके रूपमें तुमको देखकर मुखसे यही निकलता है—“इन आँखिन प्यारे, तिहारे बिना जग दूसरो कोऊ दिखातो नहीं।” मैं पगली कही गई हूँ, तो पगली ही रहूँगी और यही कहती फिरूँगी :—

बताता है खग-वृन्द-कलोल !

सरस-तरु-पुञ्ज प्रसून-मरन्द !

वायु-सञ्चार प्रफुल्ल-मयंक !

हमारा ब्रज-जीवन-नभ-चन्द !

सत्य है, चित है है, आनन्द !!

तुम्हारी,

—पगली मीरा

परलोक-विद्या

[ले श्री० रामदास गौड़, एम० ए०]

लखनऊ,
१३ पौष, १९८४

प्रियवादिनी विद्यावती,

सादर नमस्ते !

तुम अचरज करती होगी कि मैं चुप क्यों हूँ । परन्तु जानती हो कि जो वज्रपात हमारे ऊपर हुआ है, उसके बाद मैं जीती ही क्यों हूँ ? अबतक निर्लज्ज जीवन बना हुआ है, यही अचरजकी बात है ।

अभी कल सोनाकी माँ आई थी । उससे पता लगा कि तुमने एक नई विद्या सीखी है, जिससे मुझे तो जीवन-दान मिलनेकी आशा हो गई । वह कहती थी कि तुम प्रेतात्माओंको बुलाती हो, उनसे बातें करती हो । क्यों बहिन, यह कहाँतक सच है, मुझे तुरन्त लिखो । क्या तुम उनकी प्रेतात्माको बुला सकती हो ? क्या प्रेत दीखते भी हैं, या केवल बातें होती हैं ? अगर बुला

सको तो मैं बन्दोबस्त करके दस-पाँच दिनोंके लिए तुम्हारे पास आ जाऊँ ।

एक बातकी मुझे भारी शङ्का होती है । मैंने अबतक यही समझा था कि मरनेवालेका कहीं जन्म हो गया होगा । स्वामीजी तो प्रेत-योनि मानते नहीं । फिर क्या प्रेत-योनि भी होती है ? क्या श्राद्ध भी ठीक है ? बहिन, बुरा न मानना । मेरी शङ्का है, तुम समझा सको तो विस्तारसे लिखो ।

लल्लू अच्छा है । तुम्हें नमस्ते कहता है । उत्तर शीघ्र देना ।
तुम्हारी सहेली,

—चम्पा

(२)

काशी,

१५ पौष, १९८४

बहिन चम्पा,

नमस्ते !

मैंने तुम्हें तबसे छः पत्र भेजे थे । उन सबके उत्तरमें तुम्हारा पत्र आज ही मिला है । मैं तुम्हारी मानसिक अवस्था जानती हूँ । तुम्हारी पीड़ाका कोई इलाज नहीं । वह रोना तो जीवनभरका है । किसीका उसमें अधिकार नहीं । भगवान् तुम्हारे चित्तको शान्ति दें ।

सोनाकी माँ ने ठीक कहा था । मैं एक नई विद्याका अभ्यास कर रही हूँ । दो महीनेकी बात है, एक दिन जीजाजी एक यन्त्र

लाए ! उसे वह प्लाञ्चेट कहते थे । पानके आकारकी एक तख्ती है, जिसमें दो ताँबेके पहिये हैं, और सिरके पास एक पेन्सिल है । मैंने उस यन्त्रपर ज्यों ही हाथ रक्खा, त्यों ही चलने लगा । मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा । अपने आप कुछ देर उसने सीधी रेखाएँ खींचीं, फिर नाम लिखा—“रामनाथ” । जीजाजी मौजूद थे, उन्होंने कहा कि यह कोई प्रेत है । फिर तो इससे वह प्रश्न करने लगे और यों उत्तर लिखा जाने लगा । थोड़ेसे प्रश्नोत्तर तुम्हारे मनोरञ्जनके लिए देती हूँ ।

प्र०—आप कौन हैं ?

उ०—मैं खत्री हूँ ।

प्र०—कहाँ के रहनेवाले हैं ?

उ०—काशीका ।

प्र०—किस मुहल्लेमें ?

उ०—करणाघरटा ।

प्र०—मृत्यु कब हुई ?

उ०—दो बरस हुए ।

प्र०—तब आप क्या करते थे ?

उ०—एक यन्त्रालयका मैनेजर था !

प्र०—इस समय आप क्या करते हैं ?

उ०—दूत कर्म करता हूँ ।

प्र०—किस योनिमें हैं ?

उ०—प्रेत-योनिमें ।

प्र०—क्या आप कृपाकर सदैव मेरे यहाँ रहा करेंगे और मेरे लिए दूत-कर्म करेंगे ?

उ०—सदा तो नहीं रह सकता, पर जब आप बुलाएँगे तब आ जाऊँगा। जो हो सकेगा, कर दूँगा।

प्र०—क्या आप कृपाकर तिलक महाराजको बुला देंगे ?

उ०—तिलक महाराज वैकुण्ठमें हैं। मेरी पहुँचसे बाहर हैं, मैं उन्हें बुला नहीं सकता।

प्र०—क्या सचमुच वैकुण्ठ-लोक भी कोई लोक है ?

उ०—अवश्य है।

प्र०—क्या आप वहाँ गए हैं ? आप कैसे जानते हैं ?

उ०—मेरे भाग कहाँ ? मैं वैकुण्ठको उसी तरह जानता हूँ, जैसे आप लन्दनको जानते हैं, पर वहाँ गए नहीं हैं।

प्र०—आप तो दूत हैं, क्या वहाँतक सन्देश पहुँचा सकते हैं ?

उ०—नहीं।

प्र०—आपकी पहुँच कहाँ-कहाँतक है ?

उ०—भूलोक मात्र।

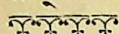
प्र०—आपको और कौन लोक मालूम हैं ?

उ०—पितृ-लोकसे सीधा सम्बन्ध है। इसके सिवा और भी लोक हैं—पितृलोक भुवर्लोक है ; स्वर्लोक स्वर्ग या देवलोक है ; महर्लोकमें ही विष्णु, शिव, ब्रह्मा, वैकुण्ठ, गोलोक, साकेतलोक आदि अनेक लोक हैं। इनके सिवा जन, तप और सत्यलोक भी हैं।

प्र०—पितृलोकसे कैसा सम्बन्ध है ?

उ०—महाशक्तिके द्वारा उनसे हमलोग उसी तरह बात-चीत कर लेते हैं, जिस तरह आपलोग नवशक्तिद्वारा हमसे बातचीत करते हैं।

लव् लेटर्स



प्र०—नवशक्ति क्या है ?

प्र०—यही लिखनेकी रीति ।

प्र०—क्या आपलोग भी लिख-पढ़कर काम लेते हैं ?

उ०—हाँ हम भी यन्त्रसे काम लेते हैं ।

प्र०—आपका यन्त्र किस आकार-प्रकारका है ?

उ०—समझाना मुश्किल है । हमारे देशकालका परिमाण कुछ भिन्न है ।

प्र०—महाशक्तिद्वारा कौन लोग सूचना-विनियम करते हैं ?

उ०—देवदूत !

प्र०—क्या आप पितरोंको देख सकते हैं ?

उ०—नहीं ।

प्र०—क्या पितृगण आपको देखते हैं ।

उ०—हाँ ।

प्र०—क्या पितृ-योनि प्रेत-योनिसे अच्छी है ?

उ०—हाँ, प्रेत-योनि कड़ी कैद है, पितृ-योनि सादी कैद ।

प्र०—तो क्या प्रेत-शरीर या पितृ-शरीर एक प्रकारका दंड है ?

उ०—अवश्य दंड है । बंदीकी दशा है, मुक्तकी दशा नहीं है !

इस तरहके प्रश्न पहले रामनाथजीसे किए गए, फिर और-और प्रेतोंसे भी किए गए । पीछे पितरोंसे भी यही बातें पूछी गईं । सबके उत्तर एक-से ही मिले ।

दो महीनेसे नित्य सैकड़ों बातें पूछीं और लिख ली गईं । मैं कहाँतक लिखूँ । जब आओगी, तब दिखाऊँगी ।

हाँ, यह तो मुझे निश्चय हो गया कि मरनेके बाद तुरन्त ही जन्म लेना आवश्यक नहीं है । मरनेपर अक्सर लोग प्रेत होते

हैं। प्रेत-योनि छूटती है, तो पितृयोनि मिलती है। निश्चित काल-तक पितृ-योनिमें रहकर तब फिर मनुष्य-योनिमें जन्म होता है। कभी-कभी मरते ही दूसरे गर्भमें जाना पड़ता है। अपने-अपने कर्मोंके अनुसार मरनेवालेको चाहे हजारों बरस बाद जन्म लेना पड़े और चाहे नव ही महीने बाद जन्म लेना पड़े, एक ही लाठीसे सब नहीं हाँके जाते।

किसीके मानने न माननेसे सच्चाईपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मुझे तो दो मासके अनुभवमें सैकड़ों जाँचें ऐसी करनेमें आईं, जिनसे प्रेतका होना पक्की, पोढ़ी तौरसे सिद्ध हो जाता है। अनेक बातोंसे बिना प्रेत माने बनता ही नहीं। और कोई माने या न माने, देखे या न देखे, वहिन ! मैंने तो अनेक बार प्रत्यक्ष देखा है और डर गई हूँ। मैं तो एक छोका रूप एक महीना हुआ नित्य सन्ध्याको देखती थी, सबलोग मौजूद रहते थे, पर मेरे सिवा और किसीको रूप नहीं दीखता था। उसके लिए उपाय करने पड़े। मेरे घर तो पुरानी रीतियाँ बरती जाती हैं। पूजा-पाठ, होम-जाप, मन्त्र-जन्त्र टोटका, श्राद्ध, पिण्डदान—सब कुछ किया जाता है। मैंने तो इन सबसे प्रत्यक्ष लाभ देखा है। बहस दलीलसे चाहे कोई एकके दो या बारह या तीन सौ पैंसठ सूर्य सिद्ध करे, पर सूर्य निकलता ही है और हमें गरमीका अनुभव होता ही है। अनुभवकी कसौटीपर मैंने जो बात कस रक्खी है, उसमें दलीलकी जरूरत मैं नहीं समझती।

मैंने आपके पूज्य पतिदेवको आरम्भमें ही बुलवाया, पर उन्हें आनेकी आज्ञा नहीं थी। छः मास बाद आज्ञा मिल सकेगी। इसलिए उनसे बातचीत करनेको चार महीने और

प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, मुझे आप ही उनसे बहुत-कुछ पूछनेका कुतूहल है। वह कट्टर आर्य-समाजी थे। अब मरनेके बादके अनुभवोंसे उनके विचार किस तरहके रहे, यह जानना बड़े महत्वकी बात है।

सच मानना बहिन, तुम्हारी चिट्ठी पाकर बड़ा आनन्द आया। मैं आप ऊपरकी सब बातें कहनेको अकुला रही थी, परन्तु सङ्कोच यह होता था कि शायद तुम मुझे भूठी और ढोंगी समझो। छातीपरसे एक भारी बोझ हट गया—शंका मिट गई। तुम जितनी बातें चाहो, पूछो। मालूम होगा तो बतानेमें आना-कानी न करूँगी ?

लल्लूको मेरी ओरसे प्यार कर देना। यहाँ सब अच्छे हैं ?

तुम्हारी,

—विद्यावती।

(३)

लखनऊ,

१८ पौष, १९८४

प्रियवादिनी विद्यावती,

सादर नमस्ते !

तुम्हारा उत्तर मुझे आज ही मिला। मेरी मुरझाई आशा-लता हरी हो गई। उनसे बातचीत चार महीने बाद भी होगी, तो यह थोड़ी बात नहीं है ! तुम मुझे कट्टर समझती रही हो, परन्तु

बहिन, मैं सच कहती हूँ, मैं अब वह नहीं रही ! तुम्हारी कट्टर चम्पा तो उनके साथ ही चली गई ! विवाहके पहले तो मैंने बहुत कुछ पढ़ा-लिखा न था ! जिसने चम्पाको दलील सिखाई, जिसने उसे संसारमें मार्ग दिखाया, वह परम गुरु तो चम्पाके प्राण अपने साथ लेता चला गया ! मैं तो जैसी मूढ़ा व्याहसे पहले थी, वैसी ही—बल्कि उससे भी अधिक—अब हूँ। मैंने बड़ी भूल की, जो उनके लिए श्राद्ध-दान आदि कुछ न किए ! अब चार महीने बाद उनसे पूछकर सब कुछ करूँगी।

एक बातकी मुझे शङ्का होती है। जब सब कोई प्रेत देख नहीं सकते, तब तो कोई दूसरा प्रेत भूठ नाम-पता देकर ठग सकता है। यह निश्चय कैसे होता है कि कहनेवाला सच ही कह रहा है ! मैंने यह भी वचनसे सुन रक्खा है कि प्रेत भौंति-भौंतिके रूप धर सकता है। फिर अगर दीखे भी तो यह कैसे निश्चय किया जाय कि वही है, या सच कह रहा है—किसीने ठगनेका रूप नहीं बनाया है ? फिर आज्ञा न मिलनेवाली बात समझमें न आई। अगर प्रेत है तो उसका जेल-दारोगा कौन है ? उसे किसकी आज्ञा लेनी पड़ती है ? क्या प्रेतोंका भी कोई हाकिम होता है ? यदि हाकिम है तो प्रेतोंका संसार भी अलग होगा, उनके कारबार अलग होंगे। बहिन, तुम्हें यह बातें मालूम हों तो शीघ्र लिखो ! मैंने तो आनेका बन्दोबस्त आरम्भ कर दिया था, परन्तु इस चार महीनेकी प्रतीक्षाने रोक दिया। क्या तुम कोई ऐसी युक्ति नहीं पूछ सकती, जिससे चार महीने पहले उनसे बातचीत हो सके ? वह बन्दी हैं, तो क्या कोई उपाय उनकी मुक्तिका नहीं हो सकता ? मैं तो अर्द्धाङ्गिनी हूँ। हो सके तो

लव् लेटर्स
❦❦❦❦❦

१४६

मुझे बताया जाय, करूँ। उत्तर भरसक जल्दी देना। सबको
यथायोग्य।

तुम्हारी सहेली,

—चम्पा

(४)

बनारस,

२१ पौष, १९८४

बहिन चम्पा,

नमस्ते !

जब तुमने पहला पत्र लिखा, तभी मेरे जीमें आया कि उनके कष्टोंकी बात तुमको लिख दूँ, परन्तु मैं डरी कि तुम्हें व्यर्थ मानसिक कष्ट होगा। तुम्हारे विचार और तरहके हैं, शायद परिणाम और भी अनिष्ट न हो जाय। परन्तु तुम्हारे अतरसोंके पत्रसे मुझे आशा हो गई कि तुम अवश्य ही उनके उद्धारका यत्न करोगी। परन्तु उसकी बातचीत मैं पीछे करूँगी, पहले मैं तुम्हारे प्रश्नोंका क्रमसे उत्तर दूँगी।

यह सच है कि जैसे भले-बुरे, खोटे-खरे आदमी होते हैं, वैसे ही प्रेत भी एकसे एक धूर्त और एक-से-एक साधु होते हैं ! जब नवशक्तिपर किसी प्रेतको अपना दूत नियुक्त करना होता है, तो उसकी भलमनसाहत, उसकी सञ्चरित्रता, उसका सौजन्य परखकी कसौटीपर कस लिया जाता है। फिर कई-कई ऐसे दूतोंसे विविध वर्णनोंको सुनकर जो बातें समानरूपसे ठीक पाई जाती हैं, उनकी

जाँच करके निश्चय किया जाता है। फिर भी बताई हुई या निश्चय की हुई बातोंमें पीछे जो त्रुटियाँ मिलती हैं, वह उसी तरह सुधार ली जाती हैं, जिस तरह इतिहासका खोजी सुधार लेता है। जहाँ बोलने या लिखनेवालेका रूप नहीं दीखता, वहाँ उसके बोलने और लिखनेकी विशेषताओंसे व्याक्तिकी पहचान की जाती है। यह भी सच है कि प्रेत भाँति-भाँतिके रूप धर सकता है, परन्तु व्यक्तिके विशेष चिह्नोंसे इसमें भी छलीकी पोल खुल जाती है। विशेष अङ्गोंकी बनावट, दाग, बोलनेका ढङ्ग आदि प्रत्येक व्यक्तिका अलग-अलग होता है। जिनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, वह धूर्तोंके धोखेमें नहीं आ सकते।

इस मर्त्यलोकमें जिसे कैदकी सजा मिलती है, उससे मिलना कठिन हो जाता है। साधारण कैदमें तीन-तीन मासपर कैदी किसी एक स्वजनसे मिल सकता है। परन्तु जिसे काल-कोठरी मिलती है, उससे कोई मिल नहीं सकता। काल-कोठरी ही सरीखी, बल्कि उससे भी अधिक दारुण दुखवाली यातनाएँ किसी-किसी प्रेतको मिलती हैं। ऐसे प्रेतोंको फुरसत नहीं दी जाती। उनके कष्टोंका पता भी नहीं लगता। वह बतला नहीं सकते। जब दारुण यातना-के पीछे वह सादी कैदमें आते हैं, तब उन्हें वह यातना अधिकांश भूल जाती है। सब याद भी रहे तो उसकी कोई उपयोगिता नहीं। प्रेतोंसे नित-नितकी बातचीत और बहससे यह बातें मालूम हुई हैं। जैसे इस दुनियामें ज्वर आदि रोगोंसे सभी पीड़ित होते हैं, परन्तु पीड़ाका अनुभव सबको अलग-अलग परिमाणमें होता है, हर रोगीका विस्तृत विवरण भी भिन्नता और अपनी-अपनी विशेषता अलग-अलग रखता है, ठीक उसी तरह प्रेतावस्था-

लव् लेटस

ॐ नमः शिवाय

के कष्टोंमें भेद है। वहिन, मैंने नरकके सम्बन्धमें बहुत पृष्ठ-ताष्ठ की है। जान पड़ा है कि जो यातनाएँ मिलती हैं, वह अपार हैं। उनकी तुलना इस संसारकी यातनाओंसे नहीं हो सकती। भिन्न देश-काल और वस्तुका वर्णन करनेमें कहनेवाला अपने जगत्के ही देश-काल, वस्तुकी यत्किञ्चित् समानताओंसे काम लेता है। इसीलिए पुराणोंमें नरकोंका जो कुछ वर्णन है, वह मर्त्य-लोकसे मिलता-जुलता है। वास्तवमें उन दारुण दुःखोंका इन वर्णनोंसे ठीक अन्दाजा नहीं मिलता।

मर्त्य-लोकमें ही देखते हैं कि हम मनचाहा पाप और पुण्य कर सकते हैं ; परन्तु अनेक पाप ऐसे हैं कि हाकिमोंके डरसे या समाजकी लाजसे करनेमें हम हिचकिचाते हैं। बहुत सुन्दर इन्द्रा-यणका फल भी विष होनेके भयसे हम नहीं खाते। सद्यःप्राप्त दुःखका भय तो सबके लिए निवारक है। प्रेतोंको समाजकी लाज नहीं है, क्योंकि वह अपना रूप बहुत छोटा और बहुत भिन्न बना लेते हैं। मनुष्यके बदले पशु, कीट, पतंगे भी बना सकते हैं। उन्हें हाकिमका डर नहीं है, क्योंकि हाकिमोंके लिए भी उनकी मायाका पता लगाना कठिन हो जाता है। परन्तु हाकिम लोग भी प्रेतोंको दिखाई नहीं देते। उनके प्रेत-दूत भी तरह-तरहके रूप बदलकर, प्रेतोंके मित्र बनकर पता लगाते रहते हैं। जिस तरह अपराधी भारी धूर्त हैं, उसी तरह प्रेत-लोकके हाकिमोंके गुप्तचर उनसे कहीं बड़े-चढ़े धूर्त होते हैं। सब लोकोंके सबसे बड़े हाकिम, संहार करनेवाले भूतेश्वर भगवान् शङ्कर परमात्माके सगुण रूप हैं और उनके गणोंमें और सेनामें देव-ताओंकी, ऋषियोंकी, गन्धर्वाँकी, यक्षोंकी, किन्नरोंकी, पितरोंकी

और प्रेतोंकी अलग-अलग सेनाएँ हैं। प्रेत अपनेसे सूक्ष्म लोकोंके प्राणियोंको नहीं देख सकते, परन्तु सूक्ष्म प्राणी अपने-से स्थूल प्राणियोंको देख सकते हैं। अब जेलके दारोगाका हाल सुनिए। जेलके दारोगा हैं भगवान् यमराज। यह भगवान् शङ्करके नायब और नरक-लोक, पितृ-लोक तथा प्रेत-लोकके हाकिम हैं। मृत्युके वही अधिकारी और कर्मके खातेके वही रक्षक हैं। जब किसीके शरीर छूटनेका कारण उपस्थित हो जाता है, तब उनके अदृश्य दूत मनुष्यके लिङ्ग-शरीर या प्रेत-शरीरको उसके स्थूल-शरीरमेंसे अलग करके उनके सामने ले जाते हैं। तेरह दिन तक हवालातमें रखकर प्रेतका पूरा हिसाब-किताब किया जाता है। इस बीच प्रेतको जो कुछ दिया जाता है, उसे मिल सकता है। तेरह दिन पीछे निश्चय किया हुआ दण्ड मिलता है। जब इस दण्डका आरम्भ होता है, तब कारागारके बाहरवालोंसे सम्बन्ध बिलकुल नहीं रहता। यह आवश्यक नहीं कि सभी तेरह दिन हवालातमें रहें। किसी-किसीके लिए तो यह तुरन्त तय हो जाता है कि वह जन्म ले। वह प्रेत-शरीर भी तुरन्त ही छोड़ देते हैं और पितृ-शरीर ही नए गर्भमें प्रवेश करता है।

बहिन चम्पा, मैं भी पहले समझती थी कि पुराणोंकी कहानियाँ जी बहलानेकी सामग्री हैं, परन्तु अब मालूम पड़ा कि वह सच्ची बातोंके आधारपर लिखी गई हैं।

मनुष्यके लिए यह समझ लेना कि बस जितने संसारको मैं जानता हूँ, उसके सिवा सृष्टि है ही नहीं, परमात्माकी मर्यादा और शक्तिको घटा देना है। सच्ची बात यह है कि हमारा संसार कुआँ है और हम उसके मेढक हैं। भगवान्की सृष्टि अपार है,

अनन्त है, यह जगत् उसमें एक कणकी भी हैसियत नहीं रखता। प्रेत-जगत् इस मर्त्य-जगत्से कहीं बड़ा और विस्तीर्ण है। पितृ-लोक उससे भी अधिक विस्तारमें है। यह सब इसी पृथ्वीपर हमारे जगत्में ही हैं, पर उनके देश-काल और वस्तु तीनों उपादान हमारे उपादानोंसे भिन्न हैं। इसीलिए हमारे हाथके पास ही पितृ-लोक हैं, परन्तु लाखों मील दूर है। उसके दिन-रात हमसे भिन्न हैं।

मैंने तुम्हारे पूज्य प्राणेश्वरसे बात करनेकी कोशिश की, तो पहले उसी नामके कई प्रेत आए। जब उनके पिताका नाम, पत्नीका नाम कुलका विवरण आदि पूछा, तब पता लगा कि उसी नामके और सज्जन आए हैं। मेरे प्रेत-दूतने अन्तमें कहा कि पता नहीं लगता उनका जन्म हो गया है। मैंने कहा—जन्मके सिवा और भी कहीं हो सकते हैं? पितृलोकमें तो नहीं हैं? स्वर्गमें तो नहीं हैं? जरा महाशक्तिके सहारे पता लगाना चाहिए।

मेरे दूतोंने कई घण्टेके बाद बताया कि वह ऐसी जगहमें हैं, जहाँसे आनेकी आज्ञा नहीं है।

प्र०—वह कैसी जगहमें हैं?

उ०—अच्छी जगहमें नहीं हैं।

प्र०—उसमें क्या बुराई है?

उ०—कष्टकी जगह है।

प्र०—तो क्या वह कष्टमें हैं?

उ०—हाँ।

प्र०—क्या उन्हें मदद दी जा सकती है?

उ०—नहीं।

प्र०—उन्हें श्राद्ध, पिण्ड-दान आदि पहुँच सकता है ?

उ०—नहीं।

प्र०—तो श्राद्ध करनेवाले भूल करते हैं?

उ०—नहीं, वह तो ठीक करते हैं। पहले तेरह दिन तक पहुँच सकता है, परन्तु वह तो बीत गए।

प्र०—फिर उन्हें क्या मदद दी जा सकती है ?

उ०—मेरी समझमें कोई मदद नहीं दी जा सकती।

प्र०—क्या उनकी पतिव्रता धर्मपत्नी भी कुछ नहीं कर सकती ?

उ०—पहले शायद कुछ कर सकती, अब न कर सकेंगी।

मेरे मनमें भी शङ्का थी कि बहिन तो प्रेतलोक मानती ही नहीं, फिर उनसे क्या कहूँ। मैंने सुना था कि श्रीमद्भागवतकी कथा सुननेसे धुन्धकारी नामका प्रेत मुक्त हो गया। जिन परिडत जीसे वह कहानी मैंने छात्रावस्थामें सुनी थी, वह परिडतजी भी मर गए, आज पाँच बरस हुए। बस, यह बात ध्यानमें आते ही मैंने सोचा कि मैं परिडतजीको क्यों न बुलाकर उपाय पूछूँ।

मैंने दूसरी बारकी बैठकमें परिडतजीको बुलवाया। वह बहुत जल्दी आए। उनको पहचान भी मैंने कर ली। ठीक वही थे। अब मैंने पूछना आरम्भ किया :—

प्र०—परिडतजी, आप किस योनिमें हैं ?

उ०—बेटी, मैं तो प्रेत हूँ।

प्र०—क्या आपको भी कोई दण्ड मिला है ?

उ०—हाँ, मैं भी भुगत रहा हूँ।

प्र०—किस पापका, आपको क्या दण्ड मिला है ?

उ०—मैंने भगड़ा करके घर तीन दिनका उपवास किया था, इससे अपनी आत्माको सतानेका दोषी ठहरा। मुझे छः बरस प्रेतावस्था मिली है। भूख लगती है, पर भोजन नहीं कर सकता, यह दशा एक बरस और रहेगी, तब मैं पितृलोकमें चला जाऊँगा।

प्र०—परिडितजी आप तो पूजा-पाठ करते थे। आपको सीधे स्वर्ग जाना चाहिए था ?

उ०—स्वर्गके लिए बहुत पुण्य चाहिए। हाँ, यदि तीन दिनका यह अविहित उपवास मेरे खातेमें न होता तो मैं सीधे पितृलोक जाता। मेरे शेष कर्म अच्छे थे।

प्र०—क्या नरक भी होता है ?

उ०—क्यों नहीं ! परन्तु मुझे उसका अनुभव नहीं है।

प्र०—क्या भागवतमें लिखी बातें सब सच हैं ?

उ०—मुझे विश्वास है कि सब सच हैं ; परन्तु अनुभव केवल प्रेत-शरीरका है। जो कुछ थोड़ा प्रेत-वर्णन है सो सच है ; परन्तु वह अत्यन्त थोड़ा है।

प्र०—क्या श्रीमद्भागवत सुननेसे प्रेत मुक्त हो जाता है ?

उ०—जरूर ! परन्तु प्रेतको सुनानेका सामर्थ्य भी चाहिए। सभी प्रेत श्रीमद्भागवत नहीं सुन सकते। राम-राम नहीं कर सकते। गोकर्ण और धुन्धकारीकी बात न्यारी थी।

प्र०—क्या आपकी सजा घट सकती है, अथवा कोई ऐसा उपाय हो सकता है कि आप मुक्त हो जायँ।

उ०—अब कुछ नहीं हो सकता। पत्नी और पुत्र दोनों मेरे पहले ही मर चुके थे। वह जीते भी होते तो उन्हें उपाय कौन बताता ?

प्र०—अब मैं कुछ कर सकती हूँ ?

उ०—नहीं, पुत्र, पत्नी या गुरुके सिवा कोई उद्धार नहीं कर सकता ।

प्र०—अच्छा, यह लोग मौजूद होते और मैं आपसे पूछकर उन्हें बता सकती तो क्या बताती ?

उ०—जानकर क्या करोगी ?

प्र०—उपकार ।

उ०—अच्छा, उपकार करोगी तो मैं बताऊँगा । घोर-से-घोर यम-यातना भोगनेवाले प्राणीकी पतिव्रता पत्नी या परमत्माका भक्त पुत्र उसको बैकुण्ठ पहुँचा सकते हैं ।

प्र०—कैसे ? श्राद्धादिसे ?

उ०—नहीं । श्राद्ध तो भोजन-मात्र है । मुझे भूखों मरनेका दण्ड है । पुत्र लाख श्राद्ध करता, मुझे भोजन मिल ही नहीं सकता । मेरा सुई जैसा गला निगल नहीं सकता । श्राद्धसे मुझे कोई लाभ नहीं पहुँचा, यद्यपि मेरे भाईने सब कुछ किया । मेरी पत्नी मौजूद होती और श्राद्धासे एक लाख राम नाम भगवान् रामेश्वरको अर्पण करती कि मैं मुक्त हो जाऊँ, तो मैं कभीका बैकुण्ठ चला गया होता । पतिव्रता पत्नी अर्द्धाङ्गिनी है । उसका पुण्य मरे पीछे भी पतिको अच्छी गति देता है । शर्त यही है कि पतिसे उसे सच्ची भक्ति हो, वह पतिपर निष्ठावर हो ; और पतिको सद्गति दिलानेकी उसकी उत्कट इच्छा हो ।

प्र०—क्या यह उपाय सबके लिए है ?

उ०—हाँ, हिन्दूमात्रके लिए राम-रामका जाप और दूसरे लोगोंके लिए उसके मतानुसार भगवन्नाम । यह उपाय सबके लिए है ।

मैंने पण्डितजीसे सैकड़ों बातें पूछ-समझ डालीं, परन्तु उनका यहाँ कोई प्रसङ्ग नहीं है। तुम्हारे पतिकी मुक्तिके सम्बन्धमें ऊपरकी बातें काम आ सकती हैं। बहिन, तुम कर सकी तो एक भारी बातकी परीक्षा हो जाय—यदि सत्यार्थ-प्रकाश बाधक न हो।
लल्लूको प्यार।

तुम्हारी सहेली,
—विद्यावती

(५)

बनारस,
२७ पौष, १९८४

बहिन चम्पा,

जय रामजी की !

लो, बधाइयाँ लो ! आनन्द मनाओ। तुम्हारे प्राणेश्वर आज बैकुण्ठसे नवशक्तिपर पधारे। धन्य तेरे भाग्य, धन्य मेरे भाग्य ! तुमने मेरे पिछले पत्रका उत्तर डाकसे तो न भेजा, परन्तु उत्तरमें अपने प्राणेश्वरको ही भेज दिया। पतिभक्ता हो तो तुम-सी। तुमने तीन लाख राम-नाम कह डाले और तीन दिनमें ही पतिको नरकसे उबारकर बैकुण्ठ पहुँचाया। मुझे बतलाया नहीं। जान पड़ता है कि नामके जापके पीछे समय न मिला।

उन्हें तुमसे बात करनेकी बड़ी अभिलाषा है । बुलाया है ।
जल्दी आओ ।

आगमनाभिलाषिणी,
—विद्यावती

(६)

ॐ रामायनमः

लखनऊ,
२६ पौष, ८४

प्यारी विद्यावती,

जय राम-नाम की !

तुमको मेरे चुप रहनेसे शङ्का हुई होगी कि चम्पाको विश्वास न आया, चुप बैठ गई ।

मैंने तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर तुरन्त पड़ोसके राममन्दिरके पुजारीको बुलवाया । उससे कहा कि मैं अपने पतिकी सद्गतिके लिए तीन लाख राम-नामका जाप करूँगी और उसे भगवान् रामेश्वरको अर्पण करूँगी । तुम सङ्कल्प करा दो । मैंने सङ्कल्प लिया । परसों, कल और आज, तीन दिन दूध और फल खाकर रही । प्रातःकाल ६ बजेसे बारह बजेतक राम-राम कहती रही । फिर कुछ विश्राम करके रामचरित-मानस पढ़ती रही । आज सायङ्कालमें बैठकर लिख रही हूँ । आज दोपहरको तीन लाख पूरे हो गए । अब मुझे विश्वास है कि वह अवश्य नरकसे छूट गए

लव् लेटर्स
ॐॐॐॐॐॐ

१५६

होंगे । अब उनसे बातचीत करनेका अवसर मिलेगा । जल्दी
पूछकर उत्तर दो ।

तुम्हारी,
—चम्पा

(७)

ॐ रामायनमः

लखनऊ,
२९ पौष, ८४

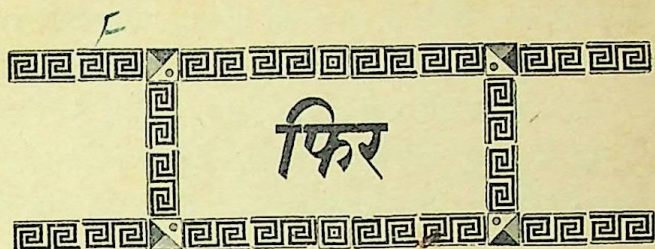
प्रियम्बदा विद्यावती,

श्रीराम-नामकी जय हो !

मैंने २६को पत्र लिखा, तुमने २७ को । दोनों राह काट
गए । तुम्हारा मुझे अभी मिला । मैं परसों शामकी डाकगाड़ीसे
चलूँगी । बहिन, तेरा एहसान जन्मभर न भूलूँगी । तुमने वह
काम किया, जो बहुतसे महात्माओंसे भी न बन पड़ेगा ।

तुम तो यों ही विद्यावती थीं, पर अब तुम्हारा नाम सार्थक
हो गया । मैं आकर एक महीना तुम्हारे पास रहूँगी, परलोक-
विद्या मैं भी सीखूँगी ।

तुम्हारी प्रेमवती सहेली,
—चम्पा



[ले० आयुर्वेदाचार्य, प्रोफेसर चतुरसेनजी शास्त्री]

[१]

सू.....,

यह मदमाती चार दिनसे आई है, पर मिली आज है। ओह ! देखनेमें नशा; छूनेमें नशा; बातोंमें नशा; आँख, कान और नस-नसमें नशा। मूर्तिमती मदिरा है। भयानक, अति भयानक, किन्तु महा मायामयी ! प्यारे, मैं तो विमूढ़ हो गया हूँ। जगत्में जो कभी न देखा था, न चखा था—अरे ! कल्पना और आशासे बिलकुल दुर्लभ—दुर्घट ! छलिया, तू कबसे पी रहा था, चुपचाप और नीरव ! न कभी कहा, न भेद खुलने दिया। यही आश्चर्य है कि अबतक मैं इसके बिना कैसे जीवित रहा ! यह जगत् ही कैसे जी रहा है ? वाह रे बसन्त ! कैसी वायु बह रही है—वह लज्जावती कुसुम-कलियोंके घूँघटको चीरती हुई, उन्हें खिलखिलाकर हँसाती हुई, उनके हृदयका सारा रस एक ही साँसमें पीकर

मेरे घरमें घुस पड़ी है। यह कैसी सुन्दर है ! अरे, कितना आलस्य इसने बखेरा है। तुम क्या जाग्रत रहते हो, इस बसन्तमें ? यह असम्भव है—आँख तो खुलती ही नहीं। मैंने कह दिया है, समझा दिया है—

आ प्यारी नयनों बसो, पलक ढाँप तोहे लूँ !

ना मैं देखूँ और को, ना तोहें देखन दूँ !!

वाह रे स्वाद ! लाख प्राणोंको देकर मैं इसकी एक बूँद लूँगा। और, और, और, अरे ! हाय ! हाय !! सब, सब, सब ! क्या इतना ही है—और एक बूँद भी नहीं रहा, मैं नहीं मानूँगा—इससे न चलेगा। मैं स्वयं घड़ेका मुँह खोलूँगा, मैं स्वयं पीऊँगा। हाँ, जोर-जुलूम, छल-बल, सब तरह छककर, तृप्त होकर और फिर इसीमें एक गोता लगा लूँगा—मैं डूबूँगा, चाहे लाख बार मरना पड़े !

हे प्यारे तुम आओ तो, इस बसन्तमें कैसा स्वाद है, कैसा रस है, तुम देखो तो ! मेरी शपथ—मेरे प्राणोंकी शपथ, आओ, आओ, आओ !

तुम्हारा,

—प०

[२]

प्रिय !

पोस्टमैनने धीरेसे द्वार खटखटाया। मैं धीरेसे उठा और तुम्हारा बासन्ती पत्र ले लिया ! यह अभी जरा सोई है, रातभर.....! हाय रे दुख, पर ईश्वरका धन्यवाद है, रात कट

गई है ! पत्रमें इतनी महक किस इत्रकी है ? मैं नहीं पहचान सका, इस समय मेरी बुद्धि कुण्ठित हो रही है ! शायद आजकल मैं यह सदाको जा रही है.....! फिर पता नहीं, कितनी फुर्सत मिलेगी ! क्या तुम्हारे घरमें बसन्त इतने जोर-शोरसे आया है ? मैंने तो द्वार-खिड़कियाँ बन्द कर रक्खा है । इसमें बसन्तकी उस उन्मादिनी वायुके भोकोंको सहनेकी शक्ति कहाँ है ? उससे इसकी अवशिष्ट हड्डियाँ खड़खड़ा उठती हैं । उसके सूखे, मैले और उलभे हुए बाल और भी उलभ जाते हैं । परन्तु वाह, देखो कैसा अद्भुत योग है । तुम्हारा पत्र फूट-फूटकर हँस रहा है और मेरा मन फूट-फूटकर रो रहा है ? सामने यह मानो तटस्थ समाधिलीनसी हम दोनों मायाप्रस्त मूर्खोंको चुपचाप देख रही है । वे उन्मीलित नेत्र, शुष्क ओष्ठ और प्रत्येक श्वासमें सूखे पत्ते की तरह काँपता हुआ हृदय कितने कष्ट, कितने संयम, कितने दुस्समयका द्योतक है । तुम सोचोगे, यह बड़ा दारुण दुख है, पर मैं सोचता हूँ—यह गनीमत है । यह भी अब इस भाग्यमें कै घड़ी और है !

यह पत्र, मस्ताना पत्र, तुम्हारे हृत्तन्त्रोकी गतिमें लय मिलाकर कैसा मोहक अनन्त सङ्गीत गा रहा है, पर कैसे कुसमय ? चुप—अरे चुप, उसकी नींद खुल जायगी, वह विकल हो उठेगी, वह कराहेगी, वह तड़पेगी, वह जल, एक बूँद जल माँगेगी । वह दाह, वेदना और अदृष्ट दर्शनसे छटपटा जायगी । यह इतना उन्माद, इतना रस, इतना मद ! अरे प्रिय ! अब इस कुसमयमें और नहीं, तुम इन सबको उस आनन्दालोकमें बैठकर अकेले पियो, पर मुझे अभी माफ करो !

तुम देखने भरका (?) मुझे न्योता देते हो और धिक्कारके योग्य बात तो यह है कि मैं उसके लिए लालायित भी हूँ, पर भाई, तुम्हीं पियो—छको। मैं छक तो नहीं, पर चख जरूर चुका हूँ। केवल चखना या छकना तो भाग्याधीन है। मुझे तुमपर डाह नहीं, बसन्तके प्रति भी नहीं। पुराने पत्ते झाड़ना और नई कोंपल खिलाना उसका स्वभाव है। परन्तु प्यारे ! इस समय तो यह मद मेरे लिए सिरकेके समान है। समय ही तो है। प्रति वर्ष बसन्त आता है, पत्तोंको बखेरता और फूलोंको खिलाता है और न जाने क्या-क्या उत्पात करता है। तुम खिले फूलोंका रस छककर पियो। मैं तबतक बिखरे पत्तोंको बटोरनेका प्रयत्न कर देखूँ।

तुम्हारा,

—सू०

पुनश्च—

देखो, सम्भव है, पत्रसे प्रथम तार ही पा बैठो।

—सू०

[३]

सू.,

हाय ! अकेले रह गए ? तार और पत्र एकके बाद दूसरे वज्रकी तरह टूट पड़े। क्या करूँ, क्या मरूँ ? तुमने मुझे लिखा भी नहीं, कहा भी नहीं। वे पद-चिह्न मेरे बिना देखे ही अनन्तमें विलीन हो गए ? ओसकी बूँदकी तरह ? इतनी जल्दी ! हाय रे भाग्य ! और मैं क्या कर रहा था ? प्रिय ! प्रिय ! मुझे लज्जा

आ रही है ! अरे ! मेरी छाती फटी जा रही है ! अब कैसे रहोगे ? कैसे सहोगे ? मैं ही वहाँ कहाँ आऊँगा ? किस मार्गसे वे गई ? बता सकोगे ? बताना पड़ेगा ! मैं आऊँगा । उन्हें फिरा लाऊँगा ! न होगा, देख ही आऊँगा । क्या इतना भी अशक्य है ? जीजी ! जीजी ! क्या तुम सुन रही हो ? मुझे आशा थी, हम लोग आकर फूल-से बच्चेको गोदमें लेकर चूमेंगे और तुम्हारा आशीर्वाद ग्रहण करेंगे ! भाई ! अरे मेरे बन्धु ! माताने अन्तिम बार अपने हृदयके समस्त स्नेहसे पाली हुई यह जीवित कुसुम-कलिका मुझे सौंपी थी । वह मैंने तुम्हें सँभाल दी थी—जैसे चिड़िया अपने बच्चेको वृक्षके खोखलेमें रखती है । बता, वह कहाँ है बन्धु ! मित्रकी धरोहरकी रक्षा करना तुम्हारा धर्म है । प्यारे ! तुमने अवश्य ही उस रत्नको सँभालकर रक्खा होगा । मेरे विश्वासी ! विश्वासघात न करना ! मैं आता हूँ !

—५०

[४]

प्रिय !

बड़ा सुख है, अब मैं रात-दिन चाहे जब निस्सङ्कोच रो लेता हूँ । कोई सुननेवाला नहीं, देखनेवाला भी नहीं ! सन्नाटेकी रातमें नितान्त दूर टिमटिमाते तारोंके नीचे, स्तब्ध खड़े काले-काले वृक्षोंके नीचे घूम-घूमकर मैं रातभर रोता रहता हूँ । यह मेरा अत्यन्त सुखकर कार्य है । इसमें मेरा बड़ा मन लगता है । और इस पवित्र रुदनके लिए ये स्थान उपयुक्त भी हैं । निकट ही

गीदड़ रो रहे हैं। कुत्ते भी कभी-कभी रो पड़ते हैं। घुग्घू बीच-बीचमें रोनेका प्रयत्न करता है, परन्तु मेरे रुदनका स्वर तो कुछ और ही है, वह अन्तस्तलकी प्राचीर-भित्तिको विदीर्ण करके एक नीरव लहर उत्पन्न करता हुआ नीरव लयमें लीन हो जाता है ! उसे देखनेकी सामर्थ्य किसमें है ? नींद अब नहीं आती है। दो महीने रात-दिन सोता रहा हूँ। अब नींदसे हिसाब साफ है। हाँ, चटाईपर औंधा पड़ जाता हूँ और आँख बन्दकर चुपचाप कुछ सुननेकी चेष्टा करता हूँ। तब रात्रिके गम्भीर अन्धकारको विदीर्ण करके एक अस्फुट ध्वनि सुनाई देती है और मैं विवश होकर उसमें स्वर मिलाकर बिहाग या मालकोशकी रागिनीमें रुदन-गान करने लगता हूँ। आँसुओंके प्रवाहमें रात्रि भी गलने लगती है। तब हठात् वह उसी विमल परिधानमें आती है और पहले वह जैसे बलपूर्वक मेरे कागज-पत्र उठाकर मुझे सोने-पर विवश करती थी, उसी तरह मेरे उस सङ्गीतको उठाकर रख देती है। पर हाय ! अब मैं सो नहीं सकता ! आँख फाड़कर देखता हूँ तो अकेला रह जाता हूँ। मैं शेष रात्रि इस वृक्षसे उस वृक्षके नीचे घूम-घूमकर काट देता हूँ।

—सू०

[५]

सू०.....,

न कहने योग्य बातको कैसे कहूँ ? परन्तु नस-नसमें रमी हुई बातको बिना कहे कैसे रहूँ ? तुम्हारा यह सुख देखने-सुनने-

की वस्तु नहीं। इसका अन्त हो, यह भस्म हो। युक्ति और तर्क बहुत हैं, भावनाओंकी नदी उमड़ रही है, स्मृतियाँ हिलोरें ले रही हैं, परन्तु सबके ऊपर तुम तैर रहे हो ! मैंने तुम्हें छोड़ और कब किसे देखा है ? मेरे प्यारे बन्धु, मुझे आज भी सब तरफसे अन्धा बनकर तुम्हींको देखने दो। अतीतके महा गर्तमें तो विश्वकी समस्त विभूतियाँ हैं, पर वर्तमान क्षणभंगुर जन्तु वहाँ जानेसे प्रथम वहाँकी सत्ता ही क्या रखता है ? उधरका ध्यान छोड़ो। उस दिन तुमने मेरा अनुरोध माना था, आज मेरी इस विद्युल्लहरीका मानो। वह चम्पेकी कलीके समान कोमल और कच्चे दुग्धके समान स्वच्छ बालिका भाग्य-बलसे तुम्हारे लिए प्रस्तुत है। वह इसकी सगी बहिन है। प्यारे ! परम प्यारे बन्धु ! तिनकेका आसरा रहते इच्छापूर्वक मत डूबो। जीवनका मध्य युवावस्था है, वह क्षणभरके लिए अधम प्राणीको स्वर्गके अक्षय भण्डारसे दी गई है। उसे यों नष्ट न करो। मैं क्या कहूँ ? मुझे भय है, मैं निष्ठुरता कर रहा हूँ ; परन्तु मैं इस बातको जानता हूँ। बोलो—क्या तुम इसका अनुरोध रक्खोगे ?

तुम्हारा,

—प०

[६]

प्रिय !

तुम्हारे पत्रका प्रत्येक अक्षर मूर्तिमान कालकी तरह सिरपर मँडरा रहा है। इससे कैसे रक्षा होगी, कब वज्र-प्रहार होगा ?

कौन जानता है। भावनाकी बरसातमें लालसाकी क्षुद्र नदी उमड़ चली है। संयमका अपूर्ण पुल टूटकर बहा चाहता है ! बहावकी दूसरी कोरपर वह एक चट्टानकी काली-काली कूट-शिखा दीख रही है। वहाँसे लोक-लाज मुझे पुकार-पुकारकर सावधान कर रही है, पर आत्म-वेदनासे अङ्ग-सञ्चालनतक मेरे लिए अशक्य है, पर, पर—हे भगवन् ! क्या यह सम्भव है ? ओफ ! कैसी तेजीसे वह कृष्ण कूट निकट आ रहा है। इस भीषण प्रवाहमें अब एक ही धक्केमें सब समाप्त है।

जीवन अभी है, बहुत है। हृदय-दीपमें भी अभी काफी स्नेह है—सब नहीं जल पाया है, परन्तु.....परन्तु—हे मित्र ! मुझ दीनको पतित न करो—तरसाओ मत ! ठहरो, मैं मृत्यु या जीवन, दोमेंसे एक वस्तुको चुन लेता हूँ !

सू०

[७]

सू.....,

खेद है, सम्मिलित न हो सका; मेरी पत्नीने सब कुछ वर्णन किया। मेरी अभिलाषा मनहीमें रही, परन्तु अब बहुत शान्ति मिली। क्यों ? क्या तुम्हें कुछ भी सुख मिला ? देखो जगत्का काल-चक्र। दिनके बाद रात, रातके बाद दिन। परन्तु धन्य है वह शक्तिमान् प्रभु, जिसके महाराज्यमें सब रोगोंकी औषधि, सब दुखोंका प्रतिकार, सब वेदनाओंकी शान्ति है। वस्त्र फटता है, उसे सीए बिना तो नहीं चलता। जीवनमें ठोकें लगती हैं—

उठना और फिर चलना मर्दका काम है ! फिर ग्लानि क्यों ? फिर गुप्त पापसे प्रकट पाप उत्तम है । इन्द्रियाँ कब धोखा दें, कब प्रबल हों, क्या ठिकाना है ? उद्वेगकी शान्ति शरीर-धर्म है । शोक-सन्ताप, सुख-दुख, शरीर और जगत्के साथ है । सहो और आगे बढ़ो । जगत्के युद्धमें साथवाले आत्मीय योद्धा गिरते हैं, पर शेष योद्धा आगे बढ़ते हैं । तुम भी बढ़ो । प्रारब्धके चक्रमें जो क्षणभर भी खड़ा रहकर सोच-विचारमें पड़ेगा—पिस जायगा । इस चक्रके निस्तारकी गति तो चले ही जाना है ।

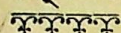
—पं०

[८]

प्रिय !

उसकी स्मृति बलपूर्वक हृदयसे निकाल फेंकी । बड़ी कसक है, जैसे एक पसली छातीसे उखाड़ फेंकी हो ! ग्लानि और अनुतापकी हिलोरें हाहाकार करती उठती हैं, पर यह निरपराधिनी है ! यह अनाथा, असहाया, दीन-हीन दुखिया अपनी स्वाभाविक सरलता और नैसर्गिक विश्वासको लेकर मेरे पास आई । उस दिन जब शीत-तुषारसे कम्पित पल्लवकी तरह उसने अपना कण्टकित हाथ बढ़ाया, मैं कुछ सोच ही न सका—मैंने उसे पकड़ लिया !

क्षमा ! ओ स्वर्गवासिनी ! क्षमा ! अधम, निरीह, नर-पशुपर क्षमा !! शोक-समुद्रमें एक बूँद स्वाति-जलकी पड़ी ! दूधमें मिश्रीकी तरह यह मुझमें घुल गई है । सब घाव सूख गए, सब कसक



मिट गई ! इस सञ्जीवन स्पर्शको पाकर बहुत दिन बाद आज फिर सुख-निंदिया आई है !!!

—सू०

[९]

सू.,

कबसे तुमने नहीं लिखा ! जीते हो या मरे । क्या नवीन रस-में जगत्को भुला बैठे ? उस अवसरपर मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन न कर सका, इसके लिए बारम्बार क्षमा-प्रार्थी हूँ । अवसर ही ऐसा था । तुम्हें देखनेकी बड़ी ही लालसा है । एक ही रस, चाहे जैसा हो, मुँह फेर देता है । 'मीठो भावे लौन पै, मीठे हूँ पै लौन ।' अब कुछ क्षण इस लतासे पिण्ड छूटे और खुली हवा लगे ! पर यह तो ऐसा लिपटी है कि हड्डियोंतक घुस गई है । मद है तो मद—परन्तु पेट भरेपर, इधर पेटका प्रश्न कुछ विकट हो चुका है । तुम्हारी कैसी गुजरती है, लिखो ! पिछली बातके लिए नाराज न होना । शीघ्र ही मिलूँगा ।

—प०

[१०]

प्रिय !

मैं अच्छा हूँ, पर मुझे यह सहन नहीं होता कि तुम मुझे मनाओ । इससे मैं बहुत बेचैन हो उठता हूँ । जैसे जङ्गली पशु

अपने घावोंको चाट-चूटकर आराम कर लेते हैं, वैसे ही मैं भी अपने हृदयके सब घावोंको आराम कर लेता हूँ। मुझे उसकी आदत पड़ गई है। फिर मेरे पास एक ऐसी तेज शराब है, जो हर वक्त मुझे गर्क रखती है। कसक तो कभी मुझे मालूम ही नहीं होती। तुमने मुझे ठगा। खैर, मैं तुम्हारे लिए अपनी आशाके कच्चे डोरेको इतना मजबूत समझता था कि इतराता था, पर तुमने उसे तोड़ दिया। अगर मैं औरत होता तो तुम्हारे मर्दपनपर धिक्कारता; क्या मर्दोंकी कुदरती शक्ति ऐसी होनी चाहिए? साँसके झटकेसे टूट जानेवाले प्यारकी आशाका अभाग तार तो सिर्फ प्यारके ही घमण्डपर बाँधा जाता है। कोमलताका तो यह स्वाभाविक ही घमण्ड है कि वह अपनेको कठोरतासे सदा जबरदस्त समझती है। कोई सजीव कठोरता तो उनके सम्मुख तनकर खड़ी रह ही नहीं सकती।

मैं तुम्हें प्यारके पत्र अब इसलिए नहीं लिखता कि अब मैं अपने प्यारके बचे-खुचे रसको बहुत ही किरपायतसे खर्च करना चाहता हूँ। मैंने उसे बुरी तरह लुटाया है। वह किसीके पल्ले कम पड़ा है—पर बिखरा बहुत है। अभी तो मरनेमें देर है। इन सबको खर्च कर दूँगा तो जीऊँगा कैसे? युग बीत गए—उसे तो कभी लिखा ही नहीं। वहाँतक डाक जाती ही नहीं। पर जब भी वह आती है, मानो कहीं गई ही न थी। बातचीत और प्यारका जो प्रसंग चलता है, वह आरम्भ और समाप्तिसे रहित, सिर्फ मध्य भागसे समझो! मध्य भागसे! हाय, तुम नहीं समझोगे, उधर गए हुआँसे तुम्हारी मुलाकात ही नहीं है। तभी तो तुम ऐसी तुच्छ बातें जबानपर ले आते हो! मुझे जरा उधर

लव् लेटर्स
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

१६८

जाने दो, मैं प्रमाणित कर दूँगा कि मैं तुम्हारे लिए कितना उदार हूँ !

—सू०

[११]

सू०.....,

किस लोककी तरफ तुम्हारा लक्ष्य है ? और तुम सर्वथा प्रत्यक्ष इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष ज्ञानकी अपेक्षा किस कल्पित लोकको देख रहे हो ? तुम अमर, अविनाशी, अलिङ्ग और लीन आत्मा-के विषयमें कौन-सी भ्रान्त धारणा कर रहे हो ? सुखसे आँख मूँदे रहे हो—दुःखवादमें पड़े हो, वह न अनुरक्ति है, न विरक्ति । तुम्हारा विज्ञानवाद क्या यही है ? रूप-सुधा पियो, ज्ञानको लात मारो, उन्मत्त रहो, अवशिष्ट दिन यों व्यतीत करो । देखो, कैसा वह रूप है, इसे हवामें खुला छोड़, तुम किस भावनामें डूबे बैठे हो । वह ठण्डा और बर्बाद हुआ जाता है !

—प०

[१२]

प्रिय !

यह उन्मत्त हास्य तो मुझे मार डालेगा ! बिजली चमकती है और बादल रोते हैं ! किसी भी तरह मैं इसके साथ नहीं हँस सकता । हास्य मेरे लिए हास्यास्पद है । वह समाप्त हो चुका ।

इतने घाव ? इतनी वेदनाएँ ? इतना भार लेकर किससे हँसा जाता है ? जब मैं हँसता था, तब किसकी मजाल थी कि उसे रोक सके ! मास्टरके हजार बाँटनेपर भी हँसी नहीं रुकती थी । पिता बार-बार कहते थे—अरे बेटा, इतना नहीं हँसा करते ! हाय ! वे दिन गए ! वे दगाबाज दिन इस गढ़में ढकेल गए, अब क्या होगा ? मेरा हृदय रो रहा है, मानो उसमें नासूर हो गया है, जिसमेंसे रुदनका अटूट झरना बह रहा है । जागरणकी अपेक्षा स्वप्नमें सुख मिल रहा है । वास्तविक वस्तुकी अपेक्षा कल्पना मीठी दीखती है । आह ! उस अनन्तमें इतनी दूर—वह क्या चमक रहा है । अवश्य ही वही है—पर इस अधम पार्थिव शरीरको लेकर मैं वहाँ जा कैसे सकता हूँ ? वह स्वर, जो प्रति क्षण सुनाई देता है, कैसे इन चर्म-चक्षुओंसे देखा जाय ! इस आत्माका शरीरसे विच्छेद कब होगा ? कब ज्ञानकी धाराएँ जगत्-भरसे अपने ध्येयको ढूँढ़ लावेंगी—कब, कब, कब ?

चमकती हुई बिजलीके बीचसे झर-झर बरसते बादल तो बड़े सुन्दर दीख पड़ते हैं ; किन्तु जब वह हँसती है, तब मैं रोता हुआ क्यों नहीं अच्छा लगता ? फिर भी उसमें इतना सुख मिलता है । उस दिन इसे देखते ही हर्षके मारे लोहू नाच उठा था । देखते-देखते पेट ही नहीं भरता था । पर आज इससे डरता हूँ । इसकी वे कटोरी-सी आँखें भूखे शेरकी तरह मेरी ओर घूरा करती हैं । हाय ! इतनी प्यास इसे किस रसकी है ? मैं भी तो जवान हुआ था । शायद इतनी प्यास मैंने कभी नहीं देखी थी । मेरे पास सदा ही रसका टोटा रहा, पर अब तो दिवाला है । लोग कहते हैं कि मैं अघा रहा हूँ, पर मैं रेत फाँककर जी रहा

हूँ तुम कहते हो रूप ! अरे यह रूप तो धूप है । धूप क्या सदा शरीरको सुहाती है ? उसके लिए समय चाहिए, ऋतु चाहिए, और शरीर चाहिए । ग्रीष्मकी यह धूप क्या मेरे-जैसे घायलके तापनेकी वस्तु है ? मैं मानता हूँ स्नेह है, बहुत है । पर मानो वह किसी अछूतका छुआ जल है ; पीनेकी तरफ प्रवृत्ति ही नहीं होती । या कोई दारुण रोग-पुञ्ज नहीं बुझने देता । कहीं मन नहीं लगता, कुछ अच्छा नहीं लगता । —सू०

[१३]

सू.....,

पत्र पढ़कर इच्छा हुई कि सीधा आऊँ और फिर हम दोनों उस प्राचीन बालकालकी तरह गंगा-स्नान करने चलें, किन्तु लौटें नहीं, वहीं रह जायँ ।

तुम्हारे दुखका यह दुर्घर्ष विषय मेरे समझनेका विषय शायद नहीं । तुममें रूप है, गुण है, धन है, ऐश्वर्य है, परी-सी सुन्दर स्त्री है...! हाय ! यह पाकर तुम मृत्यु-कामनाकी ओर इतनी तीव्रतासे बढ़ रहे हो कि भय लगता है ! क्या मृत्यु ऐसी सुखकर वस्तु है ? जगत्को देखा कि जो कुछ तुम्हारे पास है, उसीकी प्राप्तिमें असफल हो, लोग मृत्यु-कामना करते हैं ; पर तुम उन्हें पाकर भी मृत्यु-कामना करते हो यह क्या बात है ? यह मृत्यु-सुन्दरी कौन है ? किस प्यारीकी यह दूती है ? यह किस अभिसारिकासे मिलाएगी ? बोलो, फिर हम तुम दोनों ही चलें ! चलो ! —प०

[१४]

प्रिय !

मेरे दुखका कोई खास कारण नहीं है, पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दुख मेरे शरीर और आत्मामें नहीं है। मैं उसके प्रवाहमें किसी अतर्क्य शक्तिसे गिर गया हूँ और वहा चला जा रहा हूँ ! कहाँ जाकर इस प्रवाहका अन्त होगा, अब विधाता ही जान सकता है ! मुझे कुछ प्रिय नहीं; मेरे मनका कहीं ध्रुव नहीं; किसी बात, किसी कार्यमें उत्साह नहीं; किसी वस्तुमें रस नहीं; ऐसा मालूम होता है, मेरा कहीं कोई नहीं है ! और जीवन तेजीसे समाप्त हो रहा है ! पता नहीं, एक ही घटनाने क्या जादू कर दिया। शरीरके स्थानपर शरीर, आत्माके स्थानपर आत्मा हाजिर है; वैसा ही माधुर्य, वैसा ही इन्द्रिय-जाल और उनकी साधना-सामाग्री, किन्तु मानो जीवन-तत्व नहीं रहा है। तब अनायास ही जो प्रवाह प्राप्त था—वह इतनी चेष्टा, सावधानी और अभिलाषा होनेपर भी छिन्न-भिन्न ही दीखता है। सच पूछो तो मैं वासनाका पशु, वासनाकी नदीमें, नैतरणीमें, बीच धारमें पड़ा उस पार जानेका घोर प्रयत्न कर रहा हूँ, यह जानते हुए भी कि उधर, उस पार नरक ही है !

हाय ! कहाँ गई वह पवित्रात्मा—मेरे दुख, दरिद्रता और जीवनके कठिन संग्रामकी सङ्गिनी, विपत्तिकी ढाल, मेरे शरीर और हृदयकी स्वामिनी ! छायाकी भाँति उसकी स्मृति मन-मन्दिरमें बैठी है—अभी बैठी है। सोचा था निकालनेको, परन्तु वह भूल थी ! कहाँ है वह ? क्या वहाँ जाना और उसे बुलाना दोनों ही शक्तिसे बाहर—असम्भव है ? पर मैं आशा न छोड़ूँगा। मैं

उस घड़ीकी प्रतीक्षामें हूँ ! सच कहो, क्या ऐसा कोई लोक है, जहाँ कोई किसीकी प्रतीक्षा करता रहता है ? वहाँ क्या निष्ठुर, निर्मम, वज्र-पुरुष भी जा सकते हैं ! कहो मित्र ! तुम्हारा ज्ञान, अनुभव और विचार-शक्ति क्या कहती है ? आशा दिलाओ तो मैं कुछ और भी जल्दी करूँ ।

—५०

[१५]

प्रिय !

दुपहरीके सूर्यकी तरह इस ज्वलन्त रूपको एक क्षण भी देखना मेरे लिए अशक्य है । उसे मैंने उसके पिताके पास भेज दिया है । वह हँसती हुई गई है, उसी तरह, बल्कि उससे भी अधिक जोरसे ! मुझे मोह लेनेकी सफलताका गर्व उसके होठों और नेत्रोंमें मस्ती कर रहा था ; और यौवनका गर्व उसकी छातीसे फूटा पड़ता था । अब कहाँतक इसके सम्मुख तनकर सीधा खड़ा होता ? वह देखो, पीत निष्प्रभ मुख, उन्मीलित नेत्र, प्रकम्पित प्रच्छ्वास और समाप्त जीवन—प्रिय बन्धु, अब मुझे यही जी भरकर देखने दो ! मैं आनन्दालोकमें जा रहा हूँ, जिसकी न परिधि और न रूप-रेखा है । धीरे-धीरे चारों ओर एक ज्योति फैल रही है । मन इन्द्रिय अब भार-से जँचते हैं । मैं इस अतर्क्य भावनामें एक लहरकी तरह विलीन होना चाहता हूँ । मेरी परिचित कण्ठ-ध्वनि ही निकट ही निकट सुनाई दे रही है ! निश्चय ही कहीं निकट है ! मुझे उसकी खोज करने दो, और किसीसे

मेरी न पटेगी ! मुझे रूप नहीं, यौवन नहीं, प्यार नहीं, रस नहीं—
यह कुछ नहीं चाहिए—मुझे चाहिए मेरी वही श्री, वही महा-
कल्याणी, मेरी सहधर्मिणी और मेरे दुख, दरिद्रता, रहस्य और
भीतर-बाहरकी सङ्गिनी !

कल मेरा उसकी खोजमें प्रस्थान है, क्षमा करना । हमारे
वचनसे अवतकका सब हिसाब-किताब बेबाक । उस लोकमें
अवश्य ही मिलेंगे । ओम् शान्ति !

—सू०

विशेष—

अपनी समस्त सम्पत्ति मैंने उसके नाम कर दी है और उसकी
शुभिभाविका तुम्हारी पत्नी है । कागजात रजिस्ट्रीसे तुम्हारे पास
जा रहे हैं । कृपाकर उसके प्रति दया और क्षमाका व्यवहार
रखना । मेरे अनुरोध अपनी पत्नीसे भी कह देना ।

—सू०



लव लेटर्स
❦❦❦❦



[ले०—डॉक्टर धनीराम प्रेम]

पत्र १

माई डियर रमेश,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने जो कुछ सुना है, वह ठीक है, अक्षरशः ठीक है। मैंने करुणाके साथ सिविल मैरिज कर ली है। तुमको खबर भी नहीं दी, इसकी शिकायत करनेका तुम्हें अवश्य ही अधिकार है। क्योंकि तुम जैसे गहरे मित्र दो एक ही हैं। लेकिन भाई, कई ऐसे कारण थे, जिनसे विवश होकर हमने विवाहको कुछ समयतक प्रकट करना न चाहा। कभी समय पड़नेपर मिलेंगे तो तुम्हें सारी कथा सुनाऊँगा। परन्तु एक बातका उल्लेख इस पत्रमें अवश्य करूँगा। तुम कहते हो, मैं हमेशा स्वप्न देखनेवाला रहा हूँ, विवाहके विषयमें बड़े भारी आदर्शोंके स्वप्न देखनेवाला, फिर मैंने करुणासे शादी कैसे कर ली। इन सब बातोंसे तुम्हें आश्चर्य हुआ है। ठीक है, आश्चर्य होगा ही। परन्तु बात यों हुई :—

मेरा विचार अगर ठीक है तो तुमने करुणाको पाँच बरस पहले अलीगढ़में देखा था, जब हम धर्मसमाज हाईस्कूलमें पढ़ते थे। हमारे और तुम्हारे स्कूलके सामने ही तो करुणाके पिता रहते थे। करुणाको हम अच्छी तरह जानते थे और कभी-कभी बातचीत भी हो जाया करती थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि तुम करुणाको उस समय नीरस और पत्नी—आधुनिक पत्नी होनेके अयोग्य कहा करते थे। और यही मेरा भी खयाल था। यह ठीक था कि वह पढ़नेमें चतुर थी और उन दिनों आठवीं क्लासमें पढ़ती थी। लेकिन उसका रहन-सहन, वेशभूषा, बोल-चाल, व्यवहार आदि सब दकियानूसी ही थे। और इसी कारण जैसा तुम अब भी समझते हो, यह असम्भव था कि मैं उसे चाहूँ या उसके साथ प्रेम करूँ चौर सबसे अधिक, उसके साथ विवाह बन्धनमें बंध जाऊँ।

परन्तु भाई, संसार अजीब है। आदमीमें जैसा परिवर्तन हो सकता है, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। कोई कसम खाकर कह सकता है कि जिस बच्चेको हम सिधार्थकी प्रतिमूर्ति समझते हैं, वह बड़ा होकर अपराधी न बन जायगा ? या एक पिछड़ा हुआ बच्चा बड़ा होकर एक महान विद्वान न समझा जायगा ? यही हाल करुणाका हुआ। तुमने तो उसे तबसे देखा भी नहीं है। उसके पिताकी बदली तभी यहाँको हो गई थी।

जब मैंने आगरासे इण्टर पास करके बी० ए०में यहाँ नाम लिखाया, तब मुझे मालूम पड़ा कि करुणा भी इसी कॉलेजमें फर्स्टइयरमें दाखिल हुई है। वास्तवमें हम दोनों एक ही साथ दाखिलेके लिए दफ्तरमें पहुँचे थे। उस समय मैंने देखा कि करुणा

लव लेटर्स

❦❦❦❦❦

दो बरसमें ही बिलकुल बदल गई है। कह नहीं सकता क्यों, उसी समयसे करुणा मेरे हृदयमें बस गई।

फिर तो करुणाको नित्य देखना, नित्य मिलना-जुलना और नित्य उसके गुणोंपर मुग्ध होना। तुम ठीक ही कहते हो कि मैं स्वप्न देखनेवाला रहा हूँ। हाँ, मैं स्वप्न देखा करता था, सर्वगुण सम्पन्न युवतीका, जिसे मैं प्यार कर सकूँ और जो मुझे प्यार कर सके। ऐसी युवतीका, जो इस संसारको मेरे लिए और अपने लिए स्वर्ग बना दे। किसी जगह, किसी समय भी उसे देखकर मैं गर्वसे यह कह सकूँ कि हाँ, यह मेरे स्वप्नकी युवती है और मेरा स्वप्न वास्तविक था। मैं जानता हूँ रमेश, हमारे समाज-में प्रेम-विवाह न होनेके कारण लगभग सौ फीसदी दम्पति दुःख-मय अवस्थामें हैं। यों क्या हुआ कि वे बिना समझे, बिना देखे या बिना अनुभव किये मैथीनों जैसे चलते रहे और मंजिल-पर लग गए। परन्तु उसे जीवन नहीं कह सकते। मैं यह जानते हुए विवाहसे काँपता था। एक छोटी-सी भूल और सारा जीवन नष्ट।

परन्तु जितना ही मैं करुणाको जानता जाता था, उतना ही वह मेरे आदर्शके समीप आती जाती थी। वह अब दकियानूसी नहीं थी, अप-टू-डेट थी। लजीली नहीं थी, सबसे मिलती-जुलती थी। पहनाव-उढ़ाव, बातचीत, व्यवहार, सभीमें आधुनिक। गाना वह जाने, वाद-विवादमें वह भाग ले, पढ़नेमें सबसे तेज। और फिर मुझे प्रेम करे हृदयसे। मैं तो समझता हूँ, ईश्वरने सोच-समझकर करुणाको मेरे लिए ही बनाया था, तभी तो वही अकेली मेरे आदर्शके अनुसार मिली।

अब तुम समझ गये होंगे कि क्यों मैंने यह विवाह किया । मैं तो समझता हूँ कि हमलोग आदर्श सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत करके औरोंके सामने एक आदर्श रख देंगे ।

हाँ, मिठाई जरूर मिलेगी खानेको । लेकिन तारसे मिठाई कैसे भेजता, यार ! इस पत्रके साथ पेड़ेका चूरा रख रहा हूँ । मुँह मीठा कर लेना । जब यहाँ आओगे तो बाकायदा मिठाई मिलेगी । पत्र डालते रहा करो ।

तुम्हारा ही—
विनय

पत्र २

प्यारी सुधा,

पंद्रह दिन पहले मैंने तुम्हें विवाहके बाद जो पहला पत्र डाला था, उसका उत्तर आज मिला । तुमने पत्र बधाइयोंसे और शुभाकांक्षाओंसे भर डाला है । शायद किसी औरको यह पत्र मिलता या शायद मुझे ही यह एक सप्ताह पहले मिलता, तो हृदय इसे पढ़कर हर्षसे फूला न समाता । लेकिन आज इसे पढ़कर मुझे रोना आ रहा है ।

तुम शायद समझोगी कि मैं पागल हो गई हूँ, जो ऐसी बातें लिख रही हूँ । सौभाग्यके समय रोना ; और उस स्त्रीके लिए, जो अपनेको संसारकी सबसे अधिक सौभाग्यशालिनी पत्नी समझती थी ! तुम यदि मेरी बातें पढ़ोगी और मेरे हृदयकी दशाको भली-भाँति समझोगी, तो तुम सारा रहस्य जान जाओगी । तब तुम

लव् लेटर्स
५५५५५५

मुझे पागल नहीं, बल्कि दया और सहानुभूतिको पात्री समझोगी।

विवाहसे पहले विनयको मैं प्रेमका देवता समझती थी। वह भी मुझे बहुत प्रेम करता था। जिस दिन हम दोनोंने विवाहका निश्चय किया था, उस दिनको मैं भूली नहीं हूँ। अपने जीवनमें उस दिनको मैंने स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य समझा था। विनयको मैं बहुत चाहती थी। देखनेमें सुन्दर, व्यवहारमें सुशील, कॉलेजमें प्रथम श्रेणीका छात्र और प्रेम करनेमें रोमियोके समान। फिर कभी किस बातकी थी, ऐसा पुरुष जिस किसी स्त्रीसे भी विवाहका प्रस्ताव करे, वह अपनेको भला कैसे भाग्यशालिनी न समझे। जिस समय विनयने कहा था—

‘करुणा, तुमसे अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। तुम जानती हो कि हमारे हृदयोंमें प्रेमकी दो धारें अलग-अलग बह रही हैं। क्यों न उन्हें मिलाकर हम एक कर दें। संसारमें अभी कितनी ही मञ्जिलें पड़ी हैं, क्यों न उन्हें हम साथ-साथ पार करें एक विश्वासके साथ, एक ध्येयके साथ और एक निष्ठाके साथ ?’

उस समय मैं विस्मित-सी रह गई थी। कानोंने चाहा कि बार-बार विनय उन्हीं मधुर शब्दोंको सुनाता रहे।

इन सब शब्दों, इन सब भावों और भावुकताओंके बीच हमारा विवाह हुआ। परन्तु विवाह हमारे प्रेमका अन्त तो न था, जो उतना ही सुन्दर होता जितना हमारा प्रेम था। वह तो एक दूसरे जीवनमें प्रवेश करनेका द्वार था। क्या हम उस जीवनको जानते थे ? नहीं ! क्या हमने कभी यह सोचा था कि वह जीवन हमारे प्रेम-जीवनसे भिन्न होगा और कितना भिन्न होगा ? नहीं।

और हमने ही क्यों ? जितने भी प्रेमी विवाह करते हैं, वे प्रेमसे परे क्या है, इसका विचार नहीं करते, और इसीलिए विवाहके बाद विवाहित जीवनसे सामना करना होता है, तो प्रेमकी वे बातें, वे भावनाएँ, उल्लास और आकांक्षाओंकी लहरें नष्ट हो जाती हैं । दुर्भाग्यवश यही मेरा अनुभव हुआ !

विवाहके एक सप्ताह बाद विनयने किरायेपर एक घर ले लिया । हम साथ-साथ रहनेके लिए वहाँ पहुँच गये । और पहले दिनसे ही विवाहित जीवनकी कटुताका अनुभव होने लगा । उस दिन बात-की-बातमें विनयने मेरा अपमान कर दिया । घरको अन्दरसे सजानेकी बात थी । मैं कह रही थी कि आसमानी रङ्ग अच्छा रहता है । विनयकी राय थी कि हरा रङ्ग अधिक खिलेगा । कुछ बड़ी बात भी नहीं थी । अगर हरा पसन्द था तो हरा ही सही । मैं चुप हो जाती । लेकिन दो-चार बातें मैंने पूछी और कहीं, तो मुझे टका-सा जवाब दे डाला—तुम्हारे घरमें कभी अच्छे रंग हुए भी थे ।

इसपर मुझे क्रोध आ गया और मैंने कह दिया—तुम यह मत समझना कि मुझे स्त्री समझकर हुक्म चला लोगे । मैं कोई सीता-सावित्री नहीं हूँ कि रात कही तो रात और दिन कहा तो दिन ।

तुम्हीं बताओ सुधा, मैंने कुछ बुरा कहा । तुम क्या मेरी जगहपर होतीं तो ऐसा न कहतीं ? क्या और कोई शिक्षित नारी अपना ही नहीं, बल्कि समस्त स्त्री-जातिका इस तरहका अपमान सह सकती थी ? इस घटनासे कोई मुझे क्रोधाळु समझ ले भले ही, परन्तु इसमें क्रोध और शान्तिका सवाल ही क्या है ? यहाँ

लव् लेटर्स
 ✽✽✽✽

१८०

तो सिद्धान्तकी बात है। असलमें सुधा, मेरा अनुभव यह कहता है कि विनय इतना शिक्षित और आधुनिक होते हुए भी स्त्रियोंके विषयमें अभीतक पुराने विचार ही रखता है। उसकी समझमें एक स्त्रीका स्थान पुरुषसे नीचा ही रहेगा, वह चाहे जितनी उन्नति कर ले, संसारमें वह चाहे पुरुषसे हर बातमें बाजी भी मार ले जाय। जब उसके ऐसे विचार हैं तो निर्वाह कैसे होगा, यह समझमें नहीं आता ! यह ठीक है कि प्रेममें इन छोटी बातोंके लिए स्थान नहीं। लेकिन जीवनमें सिर्फ घण्टेभर रोज प्रेमकी बातें करके अलग हो जाना ही तो नहीं। वहाँ तो अन्य सभी बातोंका, छोटी-छोटी बातोंका भी विचार करना पड़ता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि मैं गर्विता हूँ या मानिनी हूँ। मैं विनयकी सेवा एक दासीकी तरह करनेके लिए तैयार हूँ। लेकिन जब वह मेरी स्त्री होनेके कारण ही तिरस्कार करे या मुझसे अधिकारके रूपमें सेवा कराना चाहे, तो यह मुझसे बर्दाश्त नहीं हो सकता।

अगर मैं विवाहके पहले ही यह जान जाती कि विनयके ऐसे विचार हैं, तो शायद यह विवाह कभी न होता। परन्तु हाय, इस प्रेम विवाहका यह फल होता है कि हम प्रेममें इतने रँग जाते हैं कि वास्तविकताओंकी ओर ध्यान भी नहीं देते।

मैं समझती हूँ कि मैंने तुम्हें बहुत-कुछ लिख दिया है। अब फिर कभी लिखूँगी। पत्र शीघ्र देती रहा करो। इससे बड़ी सान्त्वना मिलती है।

तुम्हारी ही—करुणा

पत्र ३

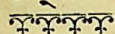
माई डियर विनय,

विवाहित दुखी जीवनके विषयमें तुम्हारे कई पत्र मिले । परन्तु सबसे अधिक दुखद तुम्हारा पिछला पत्र है, जिसे मैं अपने सामने रखकर इन पंक्तियोंको लिख रहा हूँ ।

इस पत्रमें तुमने लिखा है कि करुणा तुमसे रूठकर अपने पिताके यहाँ चली गई है । मुझे केवल इसमें रूठना ही नहीं दीखता । अन्तर्दशा रूठनेसे भी अधिक भयङ्कर दीख पड़ती है । रूठना तो पति-पत्नीके साथ लगा ही रहता है । लेकिन करुणाके जानेके समयकी सारी बातें तुमने जिस ढंगसे लिखी हैं, उनसे पता चलता है कि करुणाका जाना रूठना नहीं, एक प्रकारसे विवाह-विच्छेदका प्राक्कथन है । सच जानना, विनय, मुझे इससे बड़ा दुःख हुआ है ।

उस दुःखके दो कारण हैं । एक तो यह कि तुम मेरे अन्य-तम सुहृद हो, बिल्कुल भाईकी तरह हो । दूसरा यह कि विवाह-के सम्बन्धमें मेरे विचार भिन्न हैं ।

विवाह केवल इसीका नाम नहीं है कि दो मनुष्य जो एक दूसरेको प्यार करते हैं, कानून या जनताके समक्ष एक हो जायँ । यह एकत्व स्थायी नहीं हो सकता, यदि हम भूल जायँ कि उस एकत्वको स्थायित्व देना ही विवाहका और विशेषकर उसके बादके जीवनका उद्देश्य है । हम विवाहित जीवनको उसी समय सुखी बना सकते हैं, जब हम त्यागका और दूसरेके हृदयको समझनेका भाव अपने अन्दर पैदा कर लें और मैं जहाँतक समझता, तुमने और कदाचित् करुणाने भी इन भावोंको अभीतक पैदा नहीं



किया। तुम अपना आधिपत्य जमाना चाहते हो और वह अपना आधिपत्य जमाना चाहती है। ऐसी दशामें एकता कैसे हो सकती है। दोनों मिलकर एक हो सकें, इसके लिये दोनोंको एक रस होना चाहिए। मुझे विश्वास है, तुम दोनों अब भी एक दूसरेको उतना ही प्रेम करते हो। परन्तु प्रेमके परे एक दूसरेको कोई भी नहीं समझ सका। दोनों किसी-न-किसी प्रकारकी भूलमें पड़े हैं और यही कारण है कि आपसमें भगड़े हो रहे हैं।

मेरी सलाह तो यह है कि तुम दोनों एक दूसरेको समझो और सुलह कर लो। पहले तुम्हीं थोड़ा झुको, फिर करुणा तुमसे अधिक ही झुक जायगी। व्यर्थका अभिमान किधर भी न रहना चाहिए। बोलो, तुम उसे लेने और मनाने जाओगे ?

शीघ्र उत्तर देना ! मेरी तो यही कामना है कि तुम दोनों फिर जल्दी एक हो जाओ, ताकि मैं उस हर्षके अवसरपर वहाँ आकर अपनी चढ़ी हुई मिठाई वसूल कर सकूँ।

तुम्हारा—रमेश

पत्र ४

प्यारी सुधा,

अन्तमें जो होना था, सो हो गया, मैं विनयको छोड़कर चली आई हूँ। तुम इस समाचारको पढ़कर चकित होओगी और तुम यह न कह सकोगी कि मैंने ऐसा एकबारगी ही कर डाला है। क्योंकि मैं तुम्हें कई बार इस बातका संकेत कर चुकी हूँ। सम्भव है कि यदि जीवन उसी प्रकार चलता रहता तो यह अव-

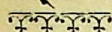
सर न आता। परन्तु विनयका व्यवहार ही बुरा हो, यही तक बात न रही। उसका चरित्र भी बिगड़ने लगा।

जबसे हममें झगड़ा और मनोमालिन्य रहने लगा था, तबसे हममें बोलचाल न रही थी और कभी कोई बात करनी होती तो नौकर हमारा माध्यम बनता था। जीवन दुखी और अशान्तिमय था सही, परन्तु वह असह्य नहीं था। सम्भव है, कभी उसमें परिवर्तन हो जाता। परन्तु एक दिनकी घटना ने उसे असह्य बना दिया।

मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है। रातके एक बज गये थे, विनय उस दिन सुबहसे घरसे निकला था तो तबतक आया न था। मैं कभी उससे इस विषयमें पूछती न थी, न यही ध्यान रखती थी कि वह कब जाता है, कहाँ जाता है, क्या करता है, कब आता है आदि। लेकिन उस रातको न-जानें क्यों मेरे मनमें यह भाव उठा कि कहीं विनयपर कोई आफत तो नहीं आ गई। इस विचारके दिलमें आते ही मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। मुझे मालूम हो गया कि मैं अब भी विनयको बहुत चाहती हूँ।

मैं पिछले दिनोंकी सारी घटनाओंपर विचार करने लगी। यह स्पष्ट था कि विनयका ही सारा दोष था। परन्तु फिर भी मैंने सोचा कि मैं सब कुछ भूल जाऊँगी और उसे क्षमा कर दूँगी। उसके उच्च बिचारोंसे एक बार अपील करूँगी और सम्भव है कि मैं कुछ नीचे उतर जाऊँ और वह कुछ ऊँचा चढ़ आवे और हम दोनों एकसार भूमिपर मिल सकें—बिना किसी खतरेके।

विनय आया। उसने मेरी ओर देखा नहीं। उसकी भाव-भङ्गी बदली हुई थी। उसकी चाल बदली हुई थी। वह सीधा



अपने कमरेकी ओर चला गया। मैं उठी और धीरे-धीरे उसके कमरेकी ओर चली। द्वार खुला था और विनय बेतरतीबीसे अपने पलङ्गपर पड़ा था।

‘विनय डियर !’—मैंने पुकारा।

‘यू गेट आउट करुणा, गेट आउट ऑफ हियर ! आई हैव गॉट एनदर, मोर व्यूटीफुल, मोर लाइवली।’ (करुणा तुम इस कमरेसे बाहर निकल जाओ ! मुझे दूसरी मिल गई है—अधिक सुन्दर, अधिक सहृदय)”—वह लड़खड़ाती हुई जवानसे बोला !

मुझे मानों काठ मार गया हो ! मैं पुतलीकी भाँति वहाँ कुछ देर खड़ी रही। देखा उसे, समझा उसे। वह शराब पिये था और अवश्य ही किसीके यहाँ गया होगा। किसी अधिक सुन्दर और अधिक सहृदयके यहाँ, और यह वही विनय था, जिसे मैं क्षमा करनेकी बातें सोच रही थी, जिसके लिए कुछ देर पहले ही मेरी आँखोंमें आँसू निकले थे ! उफ, मानव-हृदय !

“मैं सदाके लिए तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ विनय, तुमने मेरा भारी अपमान किया है।”—मैंने जोरसे कहा।

“सचमुच तुम जा रही हो ? ऑल राइट, गुडलक !” उसने बस यही कहा और मैंने बस यही सुना, क्योंकि मैं अपनी बात समाप्त होते ही उसके कमरेसे निकल आई थी।

बस दूसरे दिन सुबह ही मैं अपने पिताके घर चली आई। कुछ दिन हुए, मैंने सुना था कि विनय बीमार था। तबियत हो आई कि एक बार देख आऊँ, सम्भव है फिर मिलन हो जाय। परन्तु उसके एक मित्रसे सुना कि वह मेरा मुख भी नहीं देखना चाहता। बस उसने अन्त ला दिया। क्या तुम समझती हो कि

मैं उसकी खुशामद करती फ़िरूँ, और ऐसे पतित व्यक्तिकी ? कभी नहीं ! इससे तो मर जाना अच्छा है । अगर उसको सेर-भर अभिमान है तो मुझको सवा सेर अभिमान है !

जीवन शायद इसी प्रकार रोनेके लिए बना था । सोचो तो, मैं ऐसा कह रही हूँ जो 'प्रेम-विवाह' को आदर्श समझती थी ।

पत्रोत्तर शीघ्र देना !

तुम्हारी ही—करुणा

पत्र ५

माई डीयर रमेश,

तुम्हारा पत्र मिला तुम्हारी बातें बिलकुल ठीक हैं । मैंने पिछली सारी परिस्थितियोंपर विचार करके यही निश्चय किया है कि हमने अभीतक विवाहित जीवनका अर्थ ही न समझा था । अपने अपने अभिमानमें हमने जरा-जरा-सी बातोंको बढ़े हुए रूपमें देखा है । जब मनकी स्थिति इस प्रकारकी होती है, तो साधारण-घटनाएँ भी विषसे भरी हुई मालूम होती हैं ।

करुणाके यहाँसे जानेमें मेरा ही सबसे बड़ा अपराध था, यह मैं माननेको तैयार हूँ । लेकिन इतना अवश्य ही कहूँगा कि यदि वह कुछ समझदार—यानी मुझसे अधिक समझदार—होती तो ऐसी विकट परिस्थिति उपस्थित न होती । बात यह थी कि हम दोनों ही भूठे अहङ्कारके कारण एक दूसरेसे खिंचे हुए थे । और विवाहके बादके दिन ही ऐसे होते हैं, जब मनुष्य साथी चाहता है, बोलने बतलानेके लिए, विचार-विनिमयके लिए, न कि

झगड़े के लिए । और यदि ऐसा साथ घरमें नहीं मिलता तो मनुष्य बाहरके प्रलोभनोंका शिकार हो जाता है ।

यही दशा मेरी हुई । मुझे घरमें करुणाकी ओरसे घृणा, द्वेष और कटाक्ष मिले, पर बाहर मिला प्रलोभन उन चीजोंका, उन भावोंका, जिनके लिए मैं उन दिनों तरस रहा था । करुणाने अपनी मूर्खतासे मुझे उन प्रलोभनोंकी ओर ढकेल दिया, मैं अपनी मूर्खतासे उन प्रलोभनोंका शिकार हो गया और इस प्रकार एक दिन मेरा पतन हो गया ।

उसी रातको करुणासे कहा सुनी हो गई और वह चली गई । मुझे पीछे बड़ा पश्चात्ताप हुआ । जोमें आया कि करुणा सामने हो तो उसके चरणोंमें सिर रखकर उससे क्षमा मागँ । परन्तु अहङ्कारने रोक रक्खा । पता नहीं करुणाके मनोभाव इस समय कैसे हैं । अगर उसके हृदयमें भी क्षमा करने और भूल जानेके भाव विद्यमान हैं, तो सम्भव है किसी दिन हम फिर नए सिरसे विवाहित जीवन शुरू कर सकें !

तुम्हारा ही—विनय

पत्र ६

माई डियर विनय,

तुम्हारा लिफाफा घरपर पन्द्रह दिनतक रक्खा रहा था, क्योंकि मैं कार्यवश बाहर चला गया था । आज सुबह लौटकर उसे खोला और पत्र हाथमें लेते ही मैं सन्न रह गया । यह क्या ? 'माई डियर रमेश'की जगह 'डियर फादर-इन-लॉ' यह कैसी

गुस्ताखी ? समझ गया कि या तो पागल हो गए हो और या बहुत ज्यादा पीना सीख गए हो । मैंने पत्रको आगे नहीं पढ़ा । मुझे क्रोधने लाल कर दिया था । आखिर करुणासे हटकर अपने मित्रोंका अपमान भी करने लगे । लिखनेमें कुछ गलती तो हो ही नहीं सकती थी क्योंकि लिफाफेपर मेरा ही पता था । लेटर पेपर तुम्हारा ही था और अक्षर भी तुम्हारे ही हाथोंके थे । क्रोधमें आकर पत्रको टुकड़े-टुकड़े करके आगके हवाले कर दिया ।

परन्तु पीछे खयाल हुआ कि पत्रको पढ़ तो लेना था । सम्भव है, कोई रहस्य हो ! तुम्हीं लिखकर बताओ कि क्या बात थी ? अगर तुम्हारा उत्तर शीघ्र न मिला, तो मैं स्वयं वहाँ आकर सब कुछ देखूँगा ।

तुम्हारा ही—रमेश

पत्र ७

माई डियर रमेश,

तुम्हारा क्रोधसे भरा हुआ पत्र मिला ।

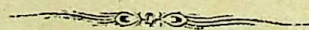
बात वास्तवमें बड़ी मजेदार हुई, जिसे यहाँ लिखता हूँ । लेकिन इसके पहिले तुम्हें यह बता देना चाहता हूँ कि मेरे होश हवास बिलकुल दुरुस्त हैं ! न तो मैं पागल हुआ हूँ और न ज्यादा पीना ही सीखा हूँ ।

बात यों हुई । मैंने उस दिन दो पत्र लिखे थे, एक तुम्हारे लिए और दूसरा अपने ससुरके लिए । लेकिन भूलसे तुम्हारा पत्र उनके लिफाफेमें रख दिया और उनका पत्र तुम्हारे लिफाफेमें ।

इस भूलका नतीजा बड़ा अच्छा हुआ। तीन दिन हुए, अचानक करुणाको साथ लिए हुए आ पहुँचे। मैं तो विस्मित रह गया। मानिनी इस प्रकार अपने आप कैसे आई? मुझे क्या मालूम था कि मेरी छोटीसी भूल इतना बड़ा काम कर जायगी। वह पत्र करुणाने ही खोलकर पढ़ा था और वह समझी कि मैंने जान-बूझकर वह पत्र ससुरजीके पास भेजा था, ताकि करुणा उसे क्षमा-पत्र समझकर यहाँ आ जाय। बस वह अपने पिताके साथ आ गई और हमारा पुनर्मिलन हो गया। जब मैंने उसे तुम्हारा पत्र दिखाया तो वह भी खूब हँसी। इतना जरूर है कि वह समझती है कि मैं ही पहले झुका। मैं भी चुप हूँ। क्योंकि मैं समझता हूँ कि वह पहले झुकी!

हाँ, तुमने आनेको लिखा है। सो तुमको फौरन ही आना पड़ेगा। करुणा भी निमन्त्रण दे रही है। तुम्हारी मिठाई भी चढ़ रही है। एक कारण और है। करुणाने अपनी सखी सुधाको भी बुलाया है। तुम जानते हो, कौनसी सुधा? वही जो तुम्हारे साथ कुछ दिनों बाद बँधनेको है। अच्छा तुम दोनों हमारे अनुभवोंसे भविष्यके लिए कुछ सीख जाओगे।

तुम्हारा ही—
विनय



शकुन्तला-पत्र-लेखन

[दुष्यन्तके प्रति]

[रचयिता—ऋषिवर श्री० रामचरितजी उपाध्याय]

(१)

जाने लगे जब छोड़ मुझको, क्यों न तब मैं मर गई ?
निर्लज्जताका अन्त है, जो पत्र लिखती हूँ तुम्हें !!

(२)

तुमने प्रणय-प्रणको तजा, धोखा दिया, आए नहीं !
तो प्राणका पालन मुझे— होगा उचित किस न्याय से ?

(३)

दोषी न हो तुम, मैं न हूँ, विधि निन्द्य है, मतिमन्द है !
तुमको निठुर चञ्चल रचा, विश्वासिनी भोली मुझे !!

(४)

“नर स्वार्थ-लोलुप हैं सभी” मुझसे किसीने था कहा !
मैंने न माना सत्य था, विश्वासपर अब क्यों न हो ?

(५)

मेरे - हृदयको ले भगे, अपने हृदयके साथमें !
दिन गिन रही हूँ मैं यहाँ, क्या नय प्रणयका है यही ?

(६)

मैंने हृदयलिके सहित, स्वागत किया था आपका !
चञ्चल ! इसीसे क्या कभी, हटते दृगञ्चलसे नहीं ?

(७)

जो कुछ कहा तुमने उसे— सोचे बिना मैंने किया !
अपराधिनी क्या मैं इसीसे, हो गई ? लिख भेजना !!

(८)

हटना रहा तो क्यों मिले ? मिलकर न हटना चाहिए !
प्रण कीजिए पूरा, नहीं— कहकर मुकरना चाहिये !!

(९)

मिलकर बिछुड़ता जो कभी, मिलता बिछुड़ करके वही !
ऐसा न यदि होता नियम, तो मैं न रहती विश्वमें !!

(१०)

तुम हट गए, मैं जी रही हूँ, कौन-सा यह प्रेम है ?
बस, दम्भ मेरा है निरा, तुम हो वहाँ, मैं हूँ यहाँ !!

(११)

भटपट चले आओ यहाँ, बैठी हूँ दर्शनके लिए !
जीवन तुम्हारे हाथ है, प्रभुता दिखाती हूँ नहीं !!

(१२)

मैं सेविका, तुम नाथ हो, दुखभागिनी मैं, तुम सुखी !
“चाहती, तुम ऐंठते” यों, क्यों लिखूँ, साहस नहीं !!

(१३)

तुम चल पड़े, मैं रो पड़ी, तुमने तुरत तब यों कहा—
“सत्वर मिलन होगा प्रिये !” क्या है स्मरण कुछ या नहीं ?

(१४)

हे नाथ ! मैं तो थी अनाथा, साथ जब रहना न था—
फिर हाथ क्यों पकड़ा वृथा ? शालीनता क्या है यही ?

(१५)

जाने न देती मैं कभी, यदि जानती तुम हो छली !
हा ! चूक कैसी हो गई, अब हाथ मलना हाथ है !!

(१६)

आखेट करने जन्तुओंका, तुम यहाँ आए रहे !
आखेट पर मेरे हृदयका—कर गए हा ! क्या कहूँ ?

(१७)

वेहाथ हो मन साथमें, तो आपके था ही गया !
पर आपके पीछे लगी, निद्रा निगोड़ी भी गई !!

(१८)

तन सूखता ज्यों-ज्यों अधिक, अनुराग त्यों-त्यों बढ़ रहा !
तो भी न तुमको दोष देकर, नित्य हूँ गुण गा रही !!

(१९)

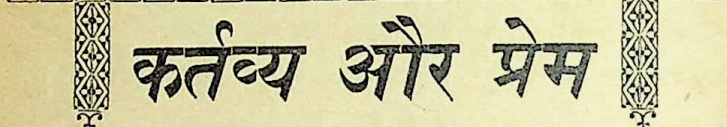
तबतक सुधाकर - रश्मियोंके, स्पर्शसे तन क्यों जले ?
जबतक स्मरण प्रिय आपका, मनमें हिलोरें ले रहा !!

(२०)

जो बात छूटी हो उसे, मेरे हृदयसे पूछना !
इस पत्र लिखनेके बहुत—पहले हृदय है जा चुका !!



कर्तव्य और प्रेम



[लेखक—श्री अनूप 'साहित्य-रत्न']

‘मेरी रानी,

तुम कितनी कठोर हो मृणाल ! एक नहीं—तीन-तीन पत्र भेजे, पर तुमने एकका भी उत्तर न दिया ! कहो तुम्हीं, यह तुम्हारी निष्ठुरता नहीं तो और क्या है ? नारी-हृदय इतना निर्मम—इतना कठोर—होता है, मुझे इसका भान न था ! मैं तो सदैव यही जानता था, और अब भी जानता हूँ कि, नारी स्रष्टाकी सुकुमार सृष्टि है, उसमें कोमलता है, सरसता है, सदाशयता है; पर देखता हूँ, तुम कदाचित् इसका अपवाद हो ! और हो क्यों न ! आखिर तुम मुझपर इतनी ममता क्यों करने लगी बुरा न मानना; न-जानें, तुम्हारा वियोग क्यों मेरे हृदयको डाँवाडोल किये देता है ! और ऐसी अवस्थामें मैं तुम्हें पत्र लिखनेको बैठ जाता हूँ, और जबतक मैं अपने भावोंकी लड़ियाँ अपनी लेखनीसे गूँथने लगता हूँ तबतक तुम, सच कहता हूँ, मेरी आँखोंके सामने

भासती-उतराती रहती हो—और तुम्हारा मुखड़ा—आह ! कैसे कहुँ—तुम्हारा भोला-भाला मुखड़ा न-जानें क्यों मुझे बड़ा भला मालूम पड़ने लगता है ! और यही कारण है कि, मुझे पत्र लिखने-में परितृप्ति मिलती है और इसीलिये मैं तुम्हारे साथ, पत्र लिखने-का अन्याय कर बैठता हूँ । सम्भव है, तुम्हें मेरा पत्र रुचिकर न लगे, पर मैं तो अपनी कहुँगा, और यह कोई बात नहीं—जिससे मुझे आनन्द उपलब्ध हो उसीसे तुम्हें भी परितृप्ति लाभ हो । आह ! यदि ऐसा होता !

हाँ, सच कहो मृणाल ! तुम इतनी कठोर हो ? कह दो एक बार अपने मुँहसे । फिर मैं तुम्हें पत्र लिखकर तंग न करूँगा । मेरी ऐसी आदत नहीं कि मैं दूसरोंको यों छेड़ता फिरूँ । मैं जान-बूझकर तुम्हें नहीं छेड़ना चाहता; फिर भी तुम्हें यदि वास्तवमें मेरे व्यवहारमें रुक्षताका आभास मिलता हो तो सिवा इसके कि तुम मुझे क्षमा कर दो, और दूसरा चारा ही क्या है ?

आज मैं तुमसे बहुत दूर आ गया हूँ और इतनी दूर आ गया हूँ जिसकी मुझे कल्पनातक न थी; पर मैं लाचार हूँ, कर्त्त-व्यानुरोधसे मुझे, सम्भव है, यहाँसे न-जानें कितनी दूर जाना पड़े ! पर, यह दूरी चाहे जितनी लम्बी हो, मैं और 'तुम'के बीच व्यवधान नहीं डाल सकती । हम दोनोंके हृदय एक ऐसे सूत्रमें आबद्ध हैं, जो न तो स्थान और समयकी दूरीसे छिन्न हो सकता है और न किसी परिस्थितिसे । और मेरा तो ख्याल है, ज्यों-ज्यों मैं तुमसे दूर हटता जाता हूँ, त्यों-त्यों मैं तुम्हें सम्पूर्ण रूपसे पाने-को प्रयत्नशील हो उठा हूँ ! मैं सच कहता हूँ मृणाल, तुम्हें अब-तक पहचान नहीं पाया था—तुम्हें पाकर भी ; पर तुम्हें—इस

लव् लेटर्स

❦❦❦❦

समय खोकर—जरा कठिन होकर कह रहा हूँ—अच्छी तरह पहचान रहा हूँ, और मैंने पहचान लिया है—तुम्हारे सुकुमार हृदयको—उस हृदयको, जिसमें ममता है, सहानुभूति है, दया है, करुणा है, स्नेह है, सदाशयता है ! टटोलकर देखोगी मृणाल, तुम अपने उस हृदयको ? है न ये सब ?.....तुम्हीं कहो—मैंने तुम्हें पहचाना है या नहीं ? और तुम ?...क्या तुम अबतक भी कठोर ही बनी रहोगी ? खैर, रहो तुम कठोर, इससे मेरा बनता-बिगड़ता ही क्या है ? चाहे तुम जैसी रहो मेरे प्रति, पर मैं तो तुम्हें जिन आँखोंसे देख रहा हूँ, वह आँखें मेरी बनी रहें, मैं और कुछ नहीं चाहता ! मुझे दूसरेसे काम ?...नहीं, तुम मेरी रानी हो मृणाल, मैं तुम्हें छोड़कर पलभर भी नहीं रह सकता !...भाड़में जाय कर्त्तव्य ! ओह कर्त्तव्य ?...कितना क्रूर, कितना निर्मम, कितना कठोर !!!...नहीं, कर्त्तव्य मुझे मार डालना चाहता है, मृणाल ! मुझे तो, अब तुम्हारा प्रेम चाहिये ! हाँ प्रेमका लघु—लघुतम कण ही चाहिये मुझे और तभी मैं अपनेमें जीवन ला सकूँगा ।

जानती हो मृणाल, मेरे मित्र मेरे सम्बन्धमें क्या कहते हैं ? कहते हैं—मैं सूख सा गया हूँ, न-जानें मेरी स्फूर्ति कहाँ विलीन हो गयी है ! और जिसे तुम मचलकर कह उठती थी—गुलाब-सा है—वह गुलाब, सच कहता हूँ—वह गुलाब न-जानें कैसे छूमन्तर हो गया ? क्या तुमने आँख तो नहीं लगा दी ? मैं समझ नहीं पाता कि, आखिर हो क्या गया मुझे ? न सर्दी, न गर्मी, न ज्वर, न और कुछ ! सदैव काममें जुटा रहता हूँ, डटकर खाता हूँ, यार-दोस्तोंके बीच खुशियाँ मनाता हूँ, खेलता हूँ, कूदता हूँ—सुखके

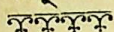
साधन मौजूद । फिर भी मैं सूखा-सूखा-सा क्यों होता जा रहा हूँ—जानती हो मृणाल, क्यों ? शायद तुम जान सको, इसलिये मैंने तुम्हें लिख दिया !

मृणाल, इस बार अवश्य पत्रोत्तर दोगी । आह, यदि इतना सा उपकार कर सको ! हाँ, कर सको तो मुझे कितनी-कितनी प्रसन्नता होगी ? इसका अनुमान तुम्हीं लगा देखो तो भला ! मैं तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षामें रहूंगा ।

हाँ, अचलाको पत्र लिखा है । सम्भव है, परसोंतक उसका पत्र मुझे मिल जाय । पता नहीं, वह अपने घर आती है या नहीं । वह कितनी सीधी, कितनी सरल है, मृणाल ! पर, उसे तो घर-भार मारे डालता है । इतनी कम उम्रमें उसपर कामका इतना भार पड़ जाना ! पर चिन्ता नहीं, अचला दिखला देगी—वह बापकी बेटी है । हो सके तो तुम उसकी मदद करती रहोगी ।

बस, पत्रको यहीं शेष करता हूँ । लिखना बहुत कुछ था, पर अधिक लिखकर कुछ लाभ नहीं दीखता ! जितना ही लिखूंगा, उतना ही तुम्हें रञ्ज होगा । इसलिये मुझे बरबस अपनी लेखनी-को विश्राम देना पड़ रहा है । मुझे तो मालूम होता है, तुम पत्रको पढ़ती भी न होगी । भला पढ़ो क्यों, इसमें तुम्हें कौन-सा आनन्द आयगा ? जहाँ घरमें तुम्हारी आनन्दकी मन्दाकिनी चिरन्तन प्रवाहमयी है, वहाँ तुम उसमें अवगाहन न करो तो क्या करो ! पर नहीं, न पढ़ो, पढ़नेकी आवश्यकता नहीं—और न पत्रोत्तरकी ! मैंने यों ही लिख दिया, और कदाचित् मैं आगे भी यों ही लिखता रहूँ । मैं तो इसे भी अपने कर्त्तव्यमें ही परिगणित करता हूँ ! कर्त्तव्यके सामने फलाफलकी आशाका मूल्य ही क्या ?

लव् लेटर्स



विदा, आशा है, तुम शरीरसे स्वस्थ होगी, सम्भव है मनसे भी ।

तुम्हारा—जयन्त ।”

पत्र-संख्या—२

“मेरे देवता,

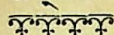
तुम्हारे सामने आनेमें मुझे न-जानें क्यों भिन्नक होती है—
कह नहीं सकती ! तुम तो इतने बिगड़ बैठे हो कि मुझे कुछ
लिखनेका साहस ही नहीं होता ! पर मैं तुमसे रंज नहीं हूँ ।
तुम्हारे लिये ऐसा होना आवश्यक ही था । जानती हूँ—मैंने
चुप्पी साधकर तुम्हें कितनी चोट पहुँचायी है । मैं नहीं जानती
थी कि, तुम मेरी इतनी-सी असावधानीके कारण इतने दुखी
होगे ! और मैं इसके लिए तुमसे क्षमाकी भीख नहीं माँगना
चाहती—और भीख ?.....नहीं, तुम्हें अधिकार है । जितना
मैंने तुम्हें कष्ट दिया है, उससे अधिक कष्ट तुम मुझे दो । कदा-
चित् इससे भी मेरे पापोंका प्रतिकार होगा या नहीं, मैं नहीं
जानती ; पर मुझे कमसे-कम तभी परितृप्ति मिल सकती है,
अन्यथा नहीं ।

मेरे तुम ! तुम कितने उदार हो, कितने भोले हो ! तुम्हारी
वे बातें कितनी सरल—कितनी भोली लगती ! तुम लिखते हो—
मृणाल, यदि तुम्हें मेरे हृदयका परिचय मिलता !.....मैं तो
स्वयं मरी जा रही हूँ । कैसे कहूँ कि मैं तुम्हें पहचानती हूँ ! आह !
यदि मैं तुम्हें पहचान पाती तो कभी मैं ऐसी भूल न कर सकती !
तुम तो समझते होगे—मैं तुम्हारे पत्रोंको ठुकरा दिया करती हूँ,

पढ़ना तो दूरकी बात रही ! क्या तुमने ऐसा लिखकर मेरे प्रति अन्याय नहीं किया है ? तुमसे यह कैसे लिख गया कि, मैं तो अपने घरकी आनन्द-मन्दाकिनीमें संतरण करती हूँ, फिर मैं तुम्हारे पत्रको यदि ठुकरा ही दूँ तो यह कोई बात नहीं—क्या यह मेरे प्रति तुम्हारा अत्याचार नहीं है ? अच्छा, यह तो कहो—ऐसी गाली देनेका तुम्हें क्या अधिकार है ? तुम ऐसी ओछी बात अपने मुँहपर कैसे ला सके ? मैं खुद आश्चर्यमें मरी जा रही हूँ । जानती हूँ—और ठीक ही जानती हूँ कि, पुरुष कठोर होते हैं ! ठीक ही कठोर होते हैं । मैं जानती हूँ कि, तुम भी कठोर हो.....और नहीं तो, आखिर, ऐसा लिखा क्यों ?

तुमने लिखा है—तुमने मुझे पहचान लिया है । पहचाना होगा ; पर मानव-जीवन क्या इतना सरल है कि कोई उसे बात-की बातमें पहचान ले ? मैं तो कहती हूँ, जैसा कि तुमने लिखा है—मुझे अबतक तुमने नहीं पहचाना ! और शायद कभी पहचान सकोगे या नहीं, नहीं कह सकती । मैं अवश्य इतनी सरल नहीं—भोली नहीं—मेरे देवता ! तुम यदि मुझे इस रूपमें देख रहे हो तो मैं कहूँगी—तुम गलत राहपर जा रहे हो । मैं तो कहती हूँ—मैं संसारमें अधम हूँ—सबसे अधम हूँ । पर मैं प्रयत्न कर रही हूँ कि मैं उठूँ ; शक्तिभर उठनेका प्रयत्न करूँ ! उठकर देखूँ—यदि मैं तुम्हें.....तुम्हारे पाद-पद्मोंतक पहुँच सकूँ । हाँ, मैं इतना ही उठना चाहती हूँ—इससे न अधिक और न कम ! क्या तुम मेरी कर सकते हो ?...क्या नहीं कर सकते ?

और एक बात सुनोगे मेरी ?.....नहीं कहूँगी ! लाज



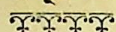
लगती है। जानते हो, मैं तुम्हें 'प्यारे' नहीं कह सकती। चाहती हूँ—एक बार 'प्यारे' कहकर तुम्हें पुकारूँ, पर कह नहीं सकती। 'प्यारे'—बड़ा भद्दा-सा लगता है ?.....मैं इसी लिये तुम्हें प्यारे कहनेमें शर्माती हूँ। मुझे तो 'तुम' ही प्रिय है !.....और इतना ही भर रहने दो !

हाँ, सुनोगे एक बात ? है तो बहुत पुरानी, पर शायद तुम्हारे लिए नयी ही हो; और वह यह है कि, जिस दिन तुम निर्मोही बनकर, मुझे छोड़कर भाग निकले, उस दिन सचमुच मैं तुमपर बहुत रंज थी—खीझ उठी थी। ऐसेसे आखिर सम्बन्ध हुआ ही क्यों, जिसके साथ फूल-शय्यातक.....न एक सप्ताह, न एक माह ! यौवन ! यौवनका उन्माद ! नशा !.....मैं पागल थी ! मुझे होता था—कह दूँ तुम्हें—मत भागो, जहर खालूँगी, और न-जानें क्या-क्या ? आखिर तुम चले ही गये ! पहला पत्र आया, रंजसे मैंने उसे खोलातक नहीं—नजरतक न डाली। फेंक दिया उसे आलमारीपर; और उठकर अपनी सखियोंसे जा मिली ! दिन किसी तरह काट लेती, मगर रात ?.....और न-जानें कितनी लम्बी रातें !.....जाने दो, तुम क्या सभभोगे—कितनी लम्बी रातें थीं वे ! और दूसरा पत्र आया, उसकी भी करीब-करीब वही हालत रही जो पहलेकी हुई थी—खोलातक नहीं। तुम जैसे दुष्टका पत्र ? और वह खोला जाय ?.....और तीसरा पत्र भी मिला। मैंने इस बार इतनी सख्तीसे काम न लिया। इसका कारण था, पर मैं उसे न बतलाऊँगी। तुम इतना ही जानो कि, तीसरेके चलते मैं पहले और दूसरेको भी पढ़ गयी। उसी दिनसे सोचती—लिखूँगी तुम्हें और ऐसी तनकर लिखूँगी कि,

तुम भी समझोगे—आखिर पड़ा है पाला किसीसे, पर मैं सफल न हो सकी। आज सौभाग्यसे चौथा पत्र सामने है, और न-जानें इसे पाकर मैं क्यों तुम्हारी ओर अधिक आकर्षित हो उठी हूँ—कह नहीं सकती ! क्यों इतना आकर्षण है तुममें ? क्यों तुम इतने सुन्दर मुझे लग रहे हो—मेरे मनमोहन ! क्यों मेरे चित्तमें चंचलता भर रहे हो, मेरे चितचोर ! हाँ, तुम चोर हो—चोर !

रंज न मानना प्यारे ! मैं तुम्हारी दासी हूँ—सेविका हूँ ! मैं तो तुम्हें ही चाहती हूँ ; और कुछ मुझे न चाहिये। जानते हो—सब-कुछ होकर भी जैसे लगता है, मुझे कुछ है ही नहीं। और तुम लिखते हो—आनन्द-मन्दाकिनी.....। आह, इसीलिये तो कहती—यदि तुम मुझे पहचान पाते ! जानती हूँ—यह मेरी कमजोरी है, पर मुझे इसके लिए खेद नहीं। मैं इस कमजोरीका शिकार ही रहना चाहती हूँ और इसीमें मेरी शोभा है !

पर, तुम मेरी ओर क्यों खिंचते-से देख रहे हो, देव ? यहाँ तुम्हें क्या मिलेगा ? प्रेम चाहते हो ?—और मेरा ?—यह क्या कहते हो ? कर्तव्यके सामने इसका मूल्य ? नहीं, जीवनमें इसकी भी आवश्यकता है, मानती हूँ; पर प्रेम क्या दो जीवोंकी संलग्नतामें निहित है, प्यारे ? यह तुम क्या कह रहे हो ?..... मैं भी तुमसे यही चाहती हूँ, पर मैं यह हर्गिज नहीं चाहती कि, तुम्हें मैं अपनी आँखोंके सामने सदैव देखती रहूँ। और यदि मैं ऐसा सोचूँ तो समझना—मैं तुमसे प्रेम नहीं चाहती और वह मेरा मोह है। मोह अन्धा होता है, प्रेम नहीं ! प्रेम तो चक्षुष्मान है। कहींसे रहकर देख सकता है; और तुमने सच ही लिखा



है—‘ज्यों-ज्यों दूर होता जा रहा हूँ, त्यों-त्यों.....’ मैं मानती हूँ और कदाचित् मैं अपने प्रति भी ऐसा ही कहती !

और इसीलिये देव, तुम मुझसे कितने ऊँचे उठे जा रहे हो ! उठो—ऊँचा उठो, प्यारे ! मैं तुम्हें-तुम्हारे कर्तव्यमें—विघ्न नहीं डालना चाहती । तुम बढ़ो ; बढ़ते चलो ! समय आयेगा, हमलोग मिलेंगे ! आह, मिलेंगे हमलोग ? विश्वास है तुम्हें ?—मैं तो अधीर होती जा रही हूँ, प्राणेश । सहारा दो—सहारा दो, निर्बल होकर लताका जीवन क्या सफल हो सकता है ?

और क्या मेरे पापोंके लिये मुझे क्षमा न करोगे तुम ? मुझे शर्म आती है, क्षमा माँगनेमें, फिर भी न माँगू कैसे ? आखिर नारो-हृदय !.....तुमने तो कहा है.....‘नहीं क्षमा कर दो, और बस !

अबसे मैं बार-बार तुम्हें पत्र दूँगी । तुम, इस पत्रसे, जैसा कि मुझे बोध हो रहा है, ज्यादा घबरा उठे हो ! ऐसा न हो—तुम सारे काम-काजको छोड़ भाग आओ ।.....भाग आओगे ? यदि तुमने ऐसा किया तो जानते हो, इसका दण्ड तुम्हें क्या मिलेगा ?.....प्यार करते हो, करो प्यार....., पर प्यार-पर अत्याचार न करो, और अधिक तुमसे क्या कहूँ ?

अचला दीदी आयी थीं । उन्होंने तुम्हारा पत्र भी मुझे दिखलाया । मैं तो उनके सामने कुछ बोल ही नहीं सकती; न-जानें क्यों ? पर दीदी मुझे कितना मानती हैं ! कितनी स्नेहमयी, कितनी ममतामयी हैं वे ! दोनों भाई-बहन—! नहीं, न कहूँगी ! —अचला दीदी बोलीं—भैयाको पत्रमें लिख देना—X X । लिखोगी न ?

क्या उनकी जरूरत है आपको, अचला दी' !—मैंने पूछा ।
इसपर जानते हो—अचला दी'ने क्या किया ? X मेरे गाली-ओठों
पर X न-जानें X X ! और बोलीं—अब भी ऐसा बोलोगी ? मैं
क्या करती ? ज्यादा परेशान हो चुकी थी; कह दिया—नहीं !
दोनों बड़ी देरतक खिलखिलाकर हँसती रहीं ।

अचला दी' बाहरसे जितनी प्रसन्न दिखती हैं, उतनी भीतर-
से नहीं । मैं सोचती हूँ—इसका कारण क्या है । और होता
है—मैं उनसे पूछूँ; पर पूछनेका साहस नहीं होता । और तुमने
सहायताकी बात लिखी है X ! आखिर कैसे करूँ ? तुम्हीं बताओ,
बुरा तो न मानेंगी ?

अचला दी' इतनी स्नेहमयी हैं,—मुझे अब पता चला ।
अब तो इनके बिना मेरा रहना कठिन-सा हो जाता है । न-जानें
क्यों, इनके देखते ही तुम्हारी आकृति मेरे सामने भूलने लगती
है ! X X भाई-बहनमें इतना साम्य ? X X अच्छा होता, यदि
यह जोड़ी X !

खैर, कसूर माफ हो ! बिदा लेती हूँ ।

तुम्हारी—मृणाल ।”

पत्र-संख्या—३

“प्रिय मृणाल,

तुम्हारा पत्र समयपर मिल गया था, पर इस बार मुझसे
ही पत्रोत्तर देनेमें विलम्ब हो गया । क्या करता ? इधर कामका
बोझ इतना भारी हो उठा है कि, जरा दम लेनेको भी समय नहीं

लव् लेटर्स
ॐॐॐॐ

२०२

मिलता, कभी-कभी तो ऐसा होता है कि, जरा भी फुर्सत मिली और लेटनेका उपक्रम किया कि इतनेमें फिरसे कामका आदेश ! नींद पलकोंमें बीत जाती है । × क्या बताऊँ ? जी घबरा उठता है, मन विह्वल—बेचैन हो जाता है, पर इससे निस्तार पानेकी और राह नहीं दीख पड़ती ।

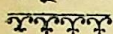
तुम समझती होगी—मैं कदाचित् कामका बहाना निकालकर तुम्हें भुलावेमें डालना चाहता हूँ । नहीं मृणाल, सच कहता हूँ—ऐसी बात नहीं है । तुम्हारे पत्रसे इस बार मुझे जैसा बल मिला है, जैसी उत्तेजना मिली है, उसका अन्दाज तो मुझे है, तुम क्या जानो ? सच तो यह है कि यदि तुमने मुझे अपने पत्रमें यह न लिखा होता कि अपने कर्त्तव्यसे च्युत होकर भाग मत निकलना तो मैं अवश्य अबतक, भागकर ही तुमसे आ मिलता । पर अब तो मेरे लिए दोनों ओर खन्दक-ही-खन्दक दीखते हैं ! एक ओर प्रेमका आकर्षण है और दूसरी ओर कर्त्तव्यका आह्वान ! मैं कमजोर व्यक्ति.....दोनों ओरसे जैसे अधरमें लटका हुआ होऊँ ! × × मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर पाता—कौन-सा पथ मेरे लिये श्रेयस्कर होगा ! आह, मैं कितने भ्रममें पड़ा हुआ हूँ, मृणाल !

मृणाल, आज मुझे लगता है—जैसे मैं तुम्हारे सामने अपराधी होऊँ ! और इसीलिये मैं तुमसे यह कहनेमें कुण्ठाका अनुभव कर रहा हूँ कि मैं तुम्हारा दाम्पत्य-जीवन सुखमय न कर सका । जानता हूँ, यौवनकी उद्दाम वासना बड़ी प्रबल होती है—इतनी प्रबल होती है कि वह शृङ्खलाबद्ध रहना नहीं जानती । इसे मैं अस्वाभाविक भी नहीं कह सकता । माननीय प्रकृति चिरन्तन

इस ओर आकर्षित रही है। इसके परे उठना दार्शनिकोंका काम हो सकता है—साधारण मानवका नहीं। और हमलोग तो अत्यन्त साधारण जन हैं—राग-विरागमें संश्लिष्ट ! काम-क्रोध, मद-मत्सरसे ओतप्रोत ! ऐसी अवस्थामें, जहाँ एक ओर मुझे अपने-आपके प्रति देखना चाहिये था, वहाँ तुम्हारी ओर—सुकुमार मनोभावनाकी ओर भी मुझे दृष्टि रखनी चाहिये थी ; पर मैं ऐसा न कर सका—मैं अपने कर्तव्यसे च्युत हो चुका हूँ ! मुझे लज्जा आती है कि मैं अपने आवेशमें आकर — - - तुम्हारे मीठे अरमान भी पूरा न कर सका ! आह, मानवतासे मैं कितना हटा हुआ हूँ, मृणाल ! मैं अपने कर्तव्यपर जितना ही कुण्ठित हूँ, उतना ही सन्तप्त भी। और यह तपन मेरे लिये असह्य हो उठा है। ऐसी अवस्थामें, चाहता तो यह हूँ कि तुमसे आ मिलूँ—तुम्हें प्रसन्न देख सकूँ, पर.....पर लाचार हूँ..... हाय, मेरी लाचारी.....।

पर नहीं, मैं युवक हूँ, और किसी भी युवकके लिये लाचारी कहना शोभा नहीं दे सकता। मैं अपनी लाचारीको शीघ्र दूर करूँगा—अपने-आपको बलि चढ़ाकर ! उस अवस्थामें तुमसे आकर मिलना मेरे लिये कितना आनन्दप्रद होगा मृणाल ! और ऐसा मैं केवल तुम्हारे लिये करनेको तैयार हूँ।

मुझे यह कहते हुए बड़ा खेद हो रहा है कि तुम्हारा पत्र, जो मुझे भेजा था, नायकके हाथ लग गया था। उन्होंने उसे पढ़ डाला था, यद्यपि तुम्हारी उत्तेजनापूर्ण भर्त्सनासे वह प्रसन्न हैं, फिर भी वह मेरी ओरसे सशंकित हो उठे हैं। उनका ख्याल है कि मैं अपने कर्तव्यमें ढीला होता जा रहा हूँ। उन्होंने कल मुझे



सचेत कर दिया है। कदाचित् वह मुझे अन्यत्र—बहुत दूर—
स्टेशनसे बहुत दूरके देहातमें काम करनेको भेजना चाहते हैं, जहाँ
मुझे तुम्हारा पत्र या तो मिल ही नहीं सकता, यदि मिलेगा भी
तो काफी देर करके ! मैंने जब कर्तव्यकी प्रतिज्ञा ले ली है, तब
जो भी आदेश होगा, पालन करूँगा ही ; पर मेरे लिये मिलन-
पथ कितना तमसाच्छन्न होता जा रहा है, साथ ही कितना
कण्टकाकीर्ण, मृणाल ! आह, क्या कहूँ ?

अचलाका भी पत्र मुझे मिल गया है। मुझे यह जानकर
खुशी हुई है कि अचलाके प्रति तुम्हारे हृदयमें आदर है। कदा-
चित् तुम उसे पहचानती भी होगी। सम्भव है, ऐसा न भी हो !
कारण है, अचला अपने आपको भुलाकर रखना जानती है। वह
बाहरसे जितनी प्रसन्न रहती है, भीतर उसका उतना ही विषाद-
पूर्ण रहता है ; पर वह उसका पता किसीको देना नहीं चाहती।
मेरे घरवालोंने उसके साथ बड़ा अन्याय किया है। उसके पति
बृद्ध हैं, पर सद्वंशजात और अत्यन्त धन-हीन भी। इतना ही
रहता तो कोई बात नहीं—पति बराबर रोग-ग्रस्त रहते हैं।
अचलाको उनकी सेवा ही नहीं, अन्नके लिये भी प्रयत्न करना
पड़ता है ; पर उसने कभी कहा नहीं कि उसे इस प्रकारका कष्ट
है। दिनभर काममें लगी रहती है, पति देवताकी न-जानें कैसी
तोखी बातें सहनी पड़ती हैं ; पर वह कभी मुँहसे व्यक्त नहीं कर
पाती ! उसने लिखा है—उसके पतिदेवता मरणासन्न हो रहे हैं,
वह इन दिनों इसीलिये और भी व्यथित और व्यग्र हो उठी है।
कहीं ऐसा न हो—भगवान् न करे—उसका सुहाग मिट जाय !
मुझे ऐसे समाजपर बड़ा रंज आता है, जिसने अचला जैसी, न-जानें

कितनी मूक बहनोंको अपने सुहागसे वञ्चित किया है ! उफ्... !
निष्ठुर समाज ! ' ' ' ' ' अचलाकी देख-रेख रखना, और यदि
हो सके तो उसके घर जाकर उसे धैर्य भी बँधाना । रुपये-पैसेसे
सहायता कर सकती हो, पर किसी बहानेसे । सीधे वह लेनेको
किसी तरह तैयार न होगी ।

एक बात कहूँ ? बुरा तो न मानोगी ? जिस तरह तुमने मेरी
और अचलाकी आकृतिमें साम्य पाया है, उसी तरह यदि मैं भी
कहूँ कि तुम्हारे ही जैसा एक युवक है, ठीक तुम्हारी जैसी आकृति
है उसकी, वैसा ही रंगदार, वैसे ही सब कुछ ! उसे तुम मुझसे
भी अधिक मानती हो—और इतना अधिक मानती हो—प्यार
करती हो कि उसके सामने मेरा अस्तित्व ही क्या ! तुम्हें पता
है—वह युवक है कौन ? जानती उसे अवश्य हो, पर तुम मेरे
सामने कैसे बात चलाओगी उसकी ! मगर नहीं, मैंने पकड़ लिया
है तुमको । कहो तो कह दूँ—उसका नाम ? ज्योंति है न ?
उसकी तुम कौन हो, और वह तुम्हारा कौन है ? अच्छा होता—
यदि भाई-बहन न होकर... । खैर, क्षमा करना । पत्रो-
त्तरकी आशामें—

तुम्हारा—जयन्त ।”

पत्र-संख्या—४

“प्रिय मृणाल,

परसोंवाला पत्र तुम्हें मिल गया होगा, आज फिरसे पत्र
देनेका अवसर मिल गया ; पर इस पत्रसे तुम्हें शायद प्रसन्नता

न प्राप्त हो सकेगी। फिर भी कर्तव्यादेशवश मैंने तुम्हें सूचना दे देना आवश्यक समझा।

तुम कदाचित् जानती होगी कि हमलोग देश-सेवाके जिस पवित्र अनुष्ठानमें अपनेको डालकर गर्वका अनुभव करते थे, वही अनुष्ठान कुछ हमारे विरोधियोंके लिये शूलका कारण हो उठा। और यही कारण है कि हमलोग उनकी आँखोंके काँटे हो रहे हैं। फलतः आज हमारे साथी हमारे बीच नहीं हैं। चन्द घण्टों-के बाद हमलोग कहाँ रहेंगे, इसका भी पता नहीं। . . . खैर, जो कुछ होगा, देखा जायगा, घबड़ानेकी बात नहीं।

पत्र लिखनेका अब मुझे शायद अवकाश न मिल सके, इसलिये मेरे पत्रकी प्रतीक्षामें तुम न रहोगी—!

तुमसे एक अनुरोध है—और वह यह है कि मेरी स्मृतिको यदि तुम भुला सको तो सुन्दर, अन्यथा तुम इससे सदैव विह्वल, बेचैन-सी रहा करोगी, और इससे लाभ ? सम्भव हो तो तुम अचलासे मिलकर कोई ऐसे काममें लग जाओ, जहाँ तुम अपने आपतकको भुलानेमें समर्थ हो सको। संसार क्रीड़ा-स्थल ही नहीं है—कर्म-स्थल भी है, और यही हमलोगोंका ध्येय होना चाहिये—भले ही हम जीवनमें असफल रह जायँ, पर्वा नहीं; पर अपने कर्तव्यमें जुटे रहना चाहिये, इस शरीरकी शोभा इसीमें है। प्रेम-प्रेमकी रट लगाकर, वैराग्य-धारण कर, आलसी—निकम्मे-जैसे बैठे रहना कर्मठ व्यक्तियोंके लिये—किसीके लिये भी—कदापि उचित नहीं। और ऐसा तभी कर सकती हो, जब तुम्हारे उद्देश्य महत् हों !

अचलासे मेरा प्यार कह देना। मैं उसके जीवनको सुखमय

नहीं बना सका, इसके लिये मुझे आन्तरिक खेद है। पर यह खेद मुझे तुम्हारे लिये नहीं है। जानता हूँ, तुम अपने कर्तव्य-पालनसे मुझे सुखी करनेका प्रयत्न करोगी ही, फिर मैं तुम्हारे लिये चिन्ता क्यों करूँ ? तुमपर मेरा अचल—अटल—विश्वास है, और रहेगा भी।

तुम अपना पत्र नवीनके पतेसे भेज सकती हो। उससे मैंने कह दिया है। उसीके द्वारा तुम्हारे पत्र भी मुझे मिलते रहेंगे।

शेष, विदा ! . . . प्यार !

अभिन्न—जयन्त ।”

पत्र-संख्या—५

“प्रिय . . . !

आज मैं निष्ठुर सत्यको तुमसे प्रकट कर ही देना चाहती हूँ। व्यथित-हृदय होकर मैं इस व्यथा-भारका संवहन न कर सकी। कहते आन्तरिक कष्ट होता है—अचला दी'का सुहाग लुट गया—उनके जीवन-सर्वस्व सदाके लिये उन्हें छोड़कर चल बसे ! अचला दी' इस शोकमें सन्तप्त हो उठी हैं। उन्हें मैं कैसे धीरज बँधाऊँ, जब मेरा हृदय रह-रहकर उनके प्रति आप ही उच्छ्वसित हो उठता है ! पर धन्य हैं अचला दी' ! मैंने तुम्हारा पत्र—अन्तिम पत्र—उन्हें पढ़ सुनाया, पर आश्चर्य ; वह जरा भी व्यथित न हुई। मुझे उनपर रंज भी हो आया और रंजीदा स्वरमें मैं बोल उठी—वे जेलमें पड़े हुए हैं और आपको जरा भी खेद नहीं ? इसपर अचला दी' हँस पड़ीं और हँसती हुई ही बोलीं—इसमें खेदकी कौन-सी बात है भाभी ?

उनके उत्तरसे मैं खुश न हुई और मैंने कहा—यह तो मैं तब जानती जब आपके ' ' जेल गये होते !

इसपर वह और भी हँस पड़ीं। बोलीं—तुम्हें जेलकी ही पड़ी है, भाभी ! कैसी सूधी हो तुम ! जेलसे तो लोग एक वर्ष, दो वर्ष ' ' दस वर्षके बाद निकल भी आते हैं, पर जो सदैवके लिये इस दुनियासे उठ गया है, वह क्या किसी भी दशामें वापस आ सकता है ?

इस बार मैंने जाना—अचला दी'का हृदय कितना बलवान है ! कैसी हैं वह जीवटवाली !

अचला दी' मानो अपना दुख भुला बैठी हैं, पर मैं अपनी क्या कहूँ ? बहुत प्रयत्न करनेपर भी मैं अपनेको सँभाल नहीं सकती ! कैसे अशुभ क्षणमें तुमने इस ओर कदम बढ़ाया था ! आह ! यदि जानती कि इसकी यही परिणति होगी तो मैं तुम्हें कभी घरसे बाहर नहीं निकलने देती ! रह-रहकर तुम्हारा प्यारा मुछड़ा आँखोंके सामने भासने-उतराने लगता है ! कैसे मैं भुला दूँ उसे ? और तुम लिखते हो कि अपने आपको भूल जाओ ! अपने आपको भूल जाना—शायद मुझसे सम्भव भी हो, परन्तु तुम्हें भूल जाना कभी सम्भव हो सकता है ? कैसे मैं अपने आपको इतनी बलवती बना सकूँगी—कुछ समझमें नहीं आता ।

अचला दी' अपने ही घर इन दिनों आ गयी हैं, इतना ही मेरे लिये धैर्यका कारण है, अन्यथा मैं कोई-न-कोई अनर्थ कर बैठती । पर, वह भी सदैव छायाकी तरह मेरे साथ रहती हैं ; जानती हैं, वह मेरी कमजोरीको । मैं मूक हो जाती हूँ, पर उनके ओठोंपर वैसी ही मुसकान !

भगवान् करे, तुम इससे निस्तार पाओ। मैं तुम्हारी कुशल जाननेको उत्कण्ठित हो उठी हूँ। यथा सम्भव शीघ्र पत्र देकर सुखी करो।

सन्तप्त-हृदया—मृणाल ।”

पत्र-संख्या—६

“प्रिय . . !

बाबूजीसे तुम्हारे समाचार अवगत हुए ! उन्होंने जूरीका फैसला भी कह सुनाया ! . . . ओह, सात वर्ष सश्रम कारावास ! कितना बड़ा दण्ड है देव ! आह, ये सात वर्ष कैसी लम्बी अवधि है ।—स्मरण करके अधीर हुई जा रही हूँ ! कैसे कटेंगे ये दिन !

पर, अचला दी' प्रशान्त महासागर जैसी गम्भीर हैं, वहाँ हर्ष-शोकका स्थान ही नहीं ! उन्होंने उस दिनसे, जिस दिनसे बाबूजी तुमसे मिल आये हैं—गाँव-गाँवमें घूमकर संगठनका कार्य किया करती हैं ! उन्होंने नारी-सेविका दल संगठन किया है । आप उसकी संचालिका हैं और मन्त्रिणी बनायी गयी हैं । उनके व्याख्यानसे श्रोताओंपर अधिक प्रभाव पड़ता है, और भी अधिक प्रभावित हुई हूँ और इतनी हुई हूँ कि, अब मुझे तुम्हारे लिये जरा भी चिन्ता नहीं रह गयी है । तमने जिस ओर मुझे संकेत किया था, मैं आप-ही-आप उसी दिशाकी ओर जानेको उत्कण्ठित हो उठी हूँ ! जब मैंने समझ लिया है कि, मेरे लिये ठीक यही पथ प्रशस्त है । अब मैं जरा भी नहीं घबराती । कभी-कभी तो ऐसा होता है कि खाने-पीनेकी सुधि भी नहीं रहती, काममें इतनी तल्लीन हो जाती हूँ कि, कुछ पता ही नहीं चलता—

कब सूर्य उगा, कब दिन ढला, कब सन्ध्या आयी और किस तरह रात निकल गयी ! तुमने एक बार लिखा था—अपने आपको भुलाये रखो । आज समझ रही हूँ कि अपने आपको किस तरह कोई भुलाये रख सकता है ! 'अचला दी' इन बातोंको बहुत पहलेसे जानती थीं, इसीलिये उन्हें कभी व्यथित-चिन्तित नहीं देखा—प्रफुल्ल रहना उनकी खास विशेषता है !

मेरे आराध्यदेव ! अब मैं निश्चिन्त होकर समाज-सेवाके लिये अपने कर्तव्य-पथपर बढ़ती जाऊँगी—तुम्हें मेरी ओरसे चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं । मैं तुम्हारे विश्वासका हनन नहीं कर सकती, अपने काममें लगी रहूँगी, चाहे मुझे इसके लिये जितनी विपत्तियाँ उठानी पड़ें । जानती हूँ—यह हमलोगोंकी साधनाका समय है और इसके लिये अपनेको जहाँतक हो, समर्पण करना चाहिये, तभी साधना सफल हो सकती है । क्या मेरी साधना कभी सफल हो सकती है ?

पर, न भी हो, उसके लिये मैं भूखी नहीं, भगवान करे—तुम मुझसे मिल सको—मिल सको और उस दिन अपने-आपको धन्य समझूँगी—समझूँगी—मैं . . . !

अब और अधिक न लिख सकूँगी । कर्तव्यादेश मुझे पत्र शेष करनेको बाध्य करता है । कदाचित् बहुत असेतक मुझे ऐसा न करना पड़े ; पर इसके लिये तुम्हें खेद न होगा—प्रसन्नता होगी ।

प्यारे, विदा ! सात वर्षकी लम्बी अवधिके लिये विदा ! अचला दी'का प्रणाम । और मेरा . . . !

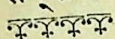
सौभाग्यवती—मृणाल ।”

श्रीरुक्मिणीका श्रीकृष्णको प्रेम-पत्र

[श्री लक्ष्मणनारायण गेर्दे कृत 'श्रीकृष्ण-चरित्र']

इस समय श्रीकृष्ण भगवान्की अवस्था २५ वर्षकी थी। यौवनका पूर्ण विकास हो चला था। उन्होंने अपने लिये एक स्वतन्त्र घर भी बनवा लिया था, पर यह गृह गृहिणीके बिना सूना ही मालूम होता था। बलरामका विवाह मथुरामें ही हो चुका था। उन्हें आनर्त्त-देशकी राज-कन्या रेवती व्याही थी और इसी सम्बन्धके सुभीतेसे, श्रीकृष्ण और यादवोंने आनर्त्त-देशके समीप समुद्र तटपर अपना नगर बसाया था। श्रीकृष्णका विवाह देखनेके लिये सबलोग उत्सुक हो रहे थे। श्रीकृष्णको भार्या भी ऐसी मिलनी चाहिये थी, जो श्रीकृष्णके सौन्दर्य, पराक्रम, बुद्धि और सौजन्यको शोभा देती। ऐसी तो एक रुक्मिणी ही थी। पर रुक्मिणीके साथ विवाह कैसे हो ? क्षत्रिय-कन्याका विवाह तीन प्रकारसे ही हो सकता था, स्वयंवरसे, दानसे अथवा हरणसे।

लव लेटर्स



स्वयंवर तो रुक ही गया था। दानकी बात सम्भव नहीं थी; क्योंकि भीष्मक और उसका पुत्र रुक्मी दोनों ही जरासन्धके पक्षमें थे। रह गया हरण—सो इसमें किस समय क्या अनर्थ हो जायगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। इसमें भी एक बातका विचार था। वह यह कि, यदि कन्याने मन-ही-मन किसीको पति मान लिया हो, तो ऐसी भार्या सम्भावितके कामकी नहीं हो सकती। इस प्रकार एक नहीं, हजारों ऐसी बातें थीं, जिनसे यादवोंका मन उथल-पुथल हो रहा था। इतनेमें यह समाचार आया कि, जरासन्धके कहनेसे रुक्मिणीको शिशुपालके साथ व्याह्र देनेका निश्चय किया गया है और कुण्डिनपुरमें रुक्मिणीके विवाहोत्सवकी तैयारी बड़े जोरोंसे हो रही है।

शिशुपाल और रुक्मिणीके विवाहका मुहूर्त भी निश्चित हो चुका और जरासन्ध आदि राजा-महाराजा भी कुण्डिनपुरमें आ एकत्र हुए। शिशुपालके पिता, राजा दमघोषने विवाहका निमन्त्रण श्रीकृष्ण तथा अन्य यादवोंके पास भेजा। यह सब देख-सुनकर कृष्णको यह न सूझा कि, अब क्या करें और क्या न करें?

श्रीकृष्णने पहली बारके स्वयंवरके ही दिन, रुक्मिणीको अपना मन दे दिया था। वह मन फिर वहाँसे हटाये हट नहीं सकता था। रुक्मिणीने भी श्रीकृष्णको अपना पति मान लिया था, यह पहले कहा ही जा चुका है। अतएव रुक्मिणी अहर्निश कृष्णके ही ध्यानमें मग्न रहती थी। उसने लज्जा त्यागकर अपने माता-पितासे स्पष्ट ही कह दिया कि, मैं कमल-नयन, मदन-मोहन-को छोड़ और किसीसे विवाह न करूँगी; पर उसके बड़े भाई रुक्मीकी हठ बड़ी भारी थी। वह कृष्णको अपना शत्रु कहता

और तरह-तरहसे उनकी निन्दा करता था। इससे रुक्मिणीका कृष्णके प्रति प्रेम कम न होकर बढ़ने लगा। प्रेम ऐसी ही वस्तु है। इसे रोकनेका जितने जोरोंके साथ प्रयत्न कीजिये, उतने ही जोरोंसे यह सारे प्रतिबन्धोंको तोड़कर प्रवाहित होने लगता है।

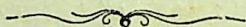
ज्यों-ज्यों विवाहका दिन समीप आने लगा, त्यों-त्यों रुक्मिणी-के प्राणोंकी व्यथा बढ़ने लगी। उसने माताको सावधान कर दिया कि, यदि कृष्णको छोड़ और किसीके साथ जबरदस्ती मेरा विवाह किया गया, तो मेरे प्राण न बचेंगे, पर उसकी सुनता कौन था ? रुक्मीके कठोर भाषणसे रुक्मिणीके नेत्र अश्रुधारासे उत्तर देकर बन्द हो जाते थे। अन्तमें उसे एक उपाय सूझा। उसने सोचा कि भाई, बहन और माता-पितासे बढ़कर भी स्त्रीके लिये पति ही है। उसीकी शरणमें जाना चाहिये। यही सोचकर, रुक्मिणीने भक्ति, विनय और अनन्य भावसे भरा हुआ यह पत्र कृष्णको लिखा :—

प्रेम-पत्र

श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्ह-
रतोऽङ्गतापम् ॥ रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताऽऽ
विशति चित्तमपत्रतं मे ॥३७॥ का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-
विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ॥ धीरा पतिं कुलवती न वृणीत
कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम् ॥३८॥ तन्मे भवान्खलु
वृतः पतिरङ्ग जायामात्मार्षितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ॥ मा वीर
भागमभिमर्शतु चैद्य आराद् गोमायुवनमृगपतेर्वलिमम्बुजाक्ष ॥३९॥
पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ॥ आरा-
धितो यदि गदाप्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये
॥४०॥ श्रो भाविनी त्वमजितोद्वहनेविदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनाप-
तिभिः परीतः ॥ निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन
विधिनोद्वह वीर्यशुल्कान् ॥४१॥ अन्तः पुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धू-
स्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ॥ पूर्वेषु रस्ति महती कुलदे-
वियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरीजामुपेयात् ॥४२॥ यस्यांघ्रिपङ्कज-
रजःस्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोपहत्यै ॥ यं ह्यम्बु-
जाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकुशान् शतजन्मभिः स्यात्
॥४३॥ ब्राह्मण उवाच ॥ इत्येते गुह्यसन्देशा यदुदेव मयाऽऽहताः ॥
विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥४४॥

“हे त्रिभुवनसुन्दर, सुननेवालोंका शरीर-सन्ताप हरण करने-
 वाले तुम्हारे गुण और देखनेवालोंको सफल करनेवाले
 तुम्हारे रूपकी कीर्ति सुनकर ही मेरा निर्लज्ज मन तुम्हारे चरणार-
 विन्दमें लिपट गया है। अब वह वहाँसे हटता ही नहीं। कुल,
 शील, रूप, विद्या, धन और तेज, इन गुणोंमें तुम्हारे सदृश तुम
 ही हो, ऐसे तुम्हारे ऊपर कौन उपवर-दुहिता बलि न जायगी ? इसी
 लिये, प्रभो ! मैंने तुम्हें अपना पति माना है, अपनी आत्मा तुम्हें
 अर्पण की है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अब जो उचित है, उसे
 करनेमें विलम्ब न करो। नहीं तो, सिंहका शिकार जिस प्रकार
 शृङ्गाल ले जाय, उसी प्रकार यह दुष्ट शिशुपाल मुझे ले जायगा।
 यदि मैंने भक्ति-भावसे देवताओं, ऋषियों, गुरुजनों और पर-
 मात्माकी पूजा की होगी, तो तुम इस समय मेरी उपेक्षा न करोगे।
 यदि यह सोचो कि, रुक्मिणीको ले जानेसे उसके भाई-बन्धुओं-
 को मारना पड़ेगा, तो विवाहके एक दिन पहले, हमारे कुलमें बधू-
 को गिरिजाके दर्शनके निमित्त ले जाते हैं, उसी अवसरपर आकर
 तुम मुझे ले जाओ। हे पद्मनयन श्रीकृष्ण ! यदि तुम मुझपर
 कृपा न करोगे, तो मैं मर जाऊँगी और जन्म-जन्म तुम्हारा ध्यान
 और व्रत करके तुम्हें प्रसन्न करूँगी।”

रुक्मिणीने एक विश्वास-पात्र आदमीके हाथ यह चिट्ठी देकर उसे द्वारकामें श्रीकृष्णके पास भेजा । श्रीकृष्ण रुक्मिणीका ही ध्यान कर रहे थे । रुक्मिणीके लिये उनके प्राण तरस रहे थे, पर कोई उपाय सूझता नहीं था । इतनेमें सेवकने आकर खबर दी, कि कुण्डिनपुरसे एक ब्राह्मण-देवता आये हैं । कृष्णने उन्हें सादर बुला, स्वयं सिंहासनसे नीचे उतरकर उनका सत्कार किया और उन्हें उच्च आसनपर बैठाकर समाचार पूछा । उत्तरमें ब्राह्मणने श्रीकृष्णके हाथमें वह चिट्ठी दे दी । रुक्मिणीका वह प्रेम-पत्र पढ़कर श्रीकृष्णका अन्तःकरण उमड़ आया । उनके नेत्रोंसे आँसु गिरने लगे । रुक्मिणीकी अनन्य भक्ति देखकर आनन्दसे उनके रोंगटे खड़े हो गये । उन्होंने पत्र पढ़ते ही निश्चय किया और ब्राह्मणसे कहा कि, मैं रुक्मिणीको इस दुःखसे अवश्य छुड़ाऊँगा ।



बन्दीका पत्र-व्यवहार

[रचयिता—श्री जगन्नाथजी मिश्र, गौड़ 'कमरु']

प्रेमिकाकी ओरसे

इष्टदेव !

.....थी चाह—तुम्हारी, चरण-धूलि मिल जाती !

निसन्देह यह नीरव यात्रा, आज सफल हो जाती !!

कभी मिलोगे यही सोचते, गया समय जीवनका !

चली अन्तमें बिखराकर, मैं प्रणय हृदय-मधुधनका !!

शून्य प्रेम-मन्दिर है मुझको, सता रहीं बेकलियाँ !

नाच रही हैं तरल तरंगों—सी ये अन्तिम घड़ियाँ !!

रख देती हूँ स्मृति-निकुञ्जमें, लिख हृदगत अभिलाषा !

रहकर हाय करूँ अब क्या मैं, दलित हुई सब आशा !!

आते क्या न जहाज आदि, इस ओर कभी हे प्यारे !

मेरी आतुरताके साक्षी, हैं नभतलके तारे !!

मुझसे तुम्हें विलग कर क्यों, ले गए क्रूर निर्मोही ?

ये अभागिनी मुझ अबलाके, वे नैभव - विद्रोही !!
जो कुछ मैं लिखती हूँ, पढ़ते जाते धवल सुधाकर !

मिले न यदि यह पत्र उन्हींसे, लेना पूछ दयाकर !!
किन्तु न होती आश मुझे, तुम पुनः यहाँ आओगे !

आओगे भी तो न प्रेमिका—को जगमें पाओगे !!
देश छुड़ाना आह ! किसीका, है निष्ठुरता भारी !

कैसे फूले और फलेंगे, ऐसे अत्याचारी !!
चली—चली अब है असह्य, वेदना अहो अनुरागी !

अन्तिम पत्र समाप्त कर रही ,

दासी,

—अधम अभागी

बन्दीकी ओरसे

प्रिय जीवनकी संगिनि !

.....आज दिलाता हूँ, उस दिनकी याद !

जब हथकड़ियाँ पड़ीं हाथ ! अपराधी कहलानेके बाद ॥
खिड़की खोल देखती थीं तुम, सजल दगोंसे मेरी ओर ।

मैं बन्दी था मुझे मिला था, कारागृहका दण्ड कठोर ॥

संकैतोसे कभी - कभी मैं, देता था तुमको सन्तोष ।

किन्तु अश्रुमें तुम डूबी थीं, हृदय तुम्हारा था बेहोश ॥
खींच ले चले मुझे दूत, मैं चला तुम्हारा ध्यान बिसार ।

सोचा बन्दी आज बनूँ, छेड़ूँ गा फिर स्वतन्त्रता-तार ॥
है प्रभातका समय आ रहा, छिद्रोंसे शुचि मन्द-समीर ।

प्रिये ! तुम्हारी स्मृतिकी किरनें, उतरी हैं जीवनके तीरा ॥
बन्द यहाँ कारागृहमें मैं, रहा यन्त्रणाओंको भोग ।

बिछी प्रतीक्षा-पथपर आँखें, कब आता सुखका संयोग ॥
प्रेम-देवि ! देखा निशीथमें, स्वप्न तुम्हारा मैं अभिराम ।

तुम योगिनि-सा वेश बनाकर, जपती हो नित मेरा नाम ॥
'तुम हो रमणी-रत्न' गूँजती, ध्वनि मानसमें बारम्बार ।

सम्बोधन योगिनि कह कैसे, करूँ हो रहा दुःख अपार ॥
अपराधी था उनके सम्मुख, करना चाहा मुझे हताश ।

कैद किया इससे क्या? क्या न, हृदय पाएगा कभी विकाश ॥
तुम्हें ज्ञात है मेरे इस जीवनका, ललित लक्ष है दूर ।

वहीं पहुँचना है मुझको, चाहे शरीर हो चकनाचूर ॥
तुम न कभी अपराधी कहना, होगा मुझे आन्तरिक छेश ।

जिससे जीवन हो उत्फुल्लित, समझो वही सत्य उद्देश ॥
बनो पुजारिन स्वतन्त्रता-मन्दिरकी, कर भविष्यका ध्यान ।

बेड़ा होगा पार दिखाई, देगा सभी ओर कल्याण ॥

सतियोंकी है शक्ति अनोखी, उन्हें विजय-कौशल है ज्ञात ।

करो यत्न खिल जाए जगमें, मृदु भावोंका रम्य प्रभात ॥

मेरी चिन्ता करो न मैं हूँ, पुण्य-तपश्चर्यामें लीन ।

कारागार तपोवन है मैं बन्दी हूँ, तौ भी—'स्वाधीन' ॥

होगा मिलन भरोसा रखना, अब न करेगा समय विलम्ब ।

मैं हूँ पास न इससे क्या ? सतियोंका है सतीत्व अवलम्ब ॥

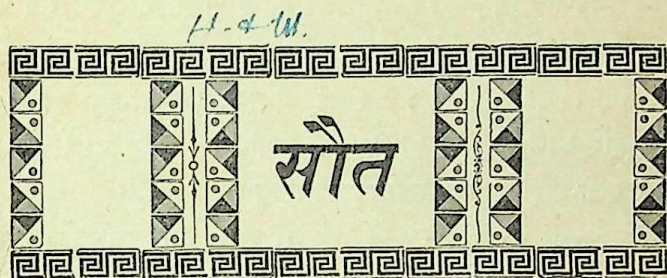
हृदय भरा उद्गारोंसे, लिखनी हैं बातें अभी अनेक ।

कितना लिखता जाऊँ ! बस, ...

सर्वस्व तुम्हारा,

—बन्दी एक





[ले०—श्रीमती कमला देवी]

प्रयाग

ज्येष्ठ-शुक्ल ९

मेरे हृदयोद्यानके ऋतुराज !

परितापकी भीषण वह्निसे आज मेरा—नारीका—हृदय दग्ध हो रहा है। ज्वालाकी जिस वेदनासे आज मेरे तन-प्राण हाहाकार कर रहे हैं, उसकी व्यथा तुम्हें कैसे बताऊँ ? मैंने तुमपर अविश्वास किया है, अभिमान किया है ; और मेरा वही अभिमान, आज तीखे वाणोंकी तरह मेरे मर्मको छेद रहा है !

प्रिय, शैशवके वे दिन जब याद आते हैं, विचारोंके बव-गडरसे माथाभर जाता है, हृदय पागल हो जाता है और प्राण सौ-सौ बार नाच उठते हैं ! वे दिन ? कैसे थे वे दिन !! उस समय हम-तुम—दोनों ही—शैशवके वसन्तमें, कामदेव और रति की तरह आनन्दकी बाँसुरी बजाते थे। न दुनियाँदारीका ज्ञान

था और न मान अभिमानकी बात ही मालूम थी। बगीचोंमें—
हम-तुम—भौंरेको तरह उड़ते फिरते थे—स्वच्छन्द, स्वाधीन !
फिर एक दिन आया, जब हमलोग विवाहके पवित्र बन्धनमें सदाके
लिए बाँध दिए गये। उस समय नहीं जाना था, विवाह क्या है
और क्यों किया जाता है ; पर यही देखकर कि जो कुछ हो रहा
है, तुम्हारे साथ ही, हृदय उल्लाससे पुलकित हो रहा था। उस
दिन हमलोगोंमें एक नए सम्बन्धकी सृष्टि हुई !

फिर—विवाहके बाद—मैं तुम्हारे साथ उस स्वच्छन्दतासे
न मिल सकती थी। जानते हो क्यों ? मैं दुलहिन थी। लोग
मुझे उढ़ा-पहनाकर गुड़ियाकी तरह सजाए हुए थे, औरतें बड़े
प्यारसे मेरा मुँह देखतीं और असीस देती थीं। मुझे इससे बड़ा
कष्ट होता। तब मैंने समझा, विवाह होना बड़ा खराब है।
विवाह होनेपर तो तुमसे बोलना-चालना, यहाँतक कि तुम्हें
देखना भी गुनाह है। मन-ही-मन मैं बहुत दुखी हुई। विवाह
होनेका यही परिणाम है ? तब तो मैं काँरी ही बहुत अच्छी थी।
उसके बाद, इन दस वर्षोंकी कोई बात तुमसे छिपी नहीं है ! जब
मैं पन्द्रह वर्षकी छोकरी थी, तभी सास मेरे पुत्रका मुँह देखनेके
लिए व्याकुल हो गईं। जन्तर-मन्तर, गरडा-ताबीज, पीर-पैगम्बर
क्या-क्या उपाय उन्होंने मेरे पुत्र होनेके लिए नहीं किए, पर मैं माता
न हो सकी। इस तरह तीन बरस बीत गए और मेरे द्वारा, पोतेका
मुँह देखनेकी आशा सासको न रह गई। तुम्हारे दूसरे व्याहका
प्रबन्ध होने लगा और कुछ दिनों बाद तुम भी दूसरा व्याह करने
को राजी हो गए। मैंने मन-ही-मन सोचा, मैं माता न बन सकी,
यह मेरी अयोग्यता है। पति दूसरा विवाह करेंगे। छुन-मुन

करती नई दुलहिन घरमें आएगी, तब घरमें मेरी पूछ न रह जायगी। कुत्ते-बिल्लीकी तरह मुझे भी दो कौर भात मिल जायगा। आह ! अपने नए जीवनकी कल्पना करके मैं रो पड़ी ; पर मेरा कोई वश न था। अपनी अयोग्यताका दण्ड मुझे भोगना ही पड़ेगा, चाहे रोकर भोगूँ या हँसकर। मन-ही-मन हृदयको समझाकर चुप हो रही। कुछ दिनों बाद तुम्हारा दूसरा विवाह हो गया। दुलहिन छोटी थी ; तीन वर्ष बाद गौना करनेका निश्चय हुआ।

उस समय मैं अवोध थी, इतनी बातें समझ न सकती थी आज जो उन बातोंपर विचार करती हूँ, तो क्षोभसे हृदय जाता है। हाय ! जिस देशके लोग सन्तान-वृद्धि-निग्रहके तरह-तरहके उपायोंका अवलम्बन कर रहे हैं, विज्ञानके नए-नए तरीकों-द्वारा प्रकृतिको भी धोखा देनेकी बात सोच रहे हैं, वहाँ की माताएँ पुत्रका मुँह देखनेके लिए पागल हो रही हैं ! हाय ! यह कैसा अनर्थ है ! अशिक्षा ! घोर अन्धकार ! तेरा परदा भारतकी नारियोंसे कैसे दूर होगा ! जबतक अशिक्षाका खड़ीन परदा भारतकी स्त्रियोंकी आँखपरसे न हट जायगा, यहाँ के पुरुषों का कोई मनोरथ सिद्ध न हो सकेगा। वे स्त्रियोंके अन्ध-विश्वास और गाढ़ी मूर्खताको दूर न कर सकेंगे—उनके हृदयपर अपनी सच्ची बात जमा न सकेंगे।

जिस समय तुम विवाह करने गये थे, मैं अभिमानकी ज्वालासे जल रही थी। अबतक अपनेको समझा-बुझा रही थी, अब धीरज न धर सकी। भाईको बुलाकर उनके साथ नैहर चली आई। आते समय तुमसे बोली भी नहीं, आँख उठाकर तुम्हारी ओर देखा भी नहीं। हाँ, विवाहके पहले ही सहसा

सासकी मृत्यु हो गई। बेचारी अतृप्त आकांक्षा लेकर सदाके लिए चल बसी।

यह आजसे चार वर्ष पहलेकी बात है। चार वर्षसे मैं तुम्हारे घर नहीं गई। इस बीचमें कई बार तुम मुझे ले चलनेके लिए आए, पर मैं न गई। बार-बार सोचती थी कि अबकी आओगे तो अवश्य चली चलींगी; पर जब-जब तुम आए—क्या मालूम क्यों—हृदयमें एक ऐसी वेदना का, एक ऐसे अननुभूतपूर्व भाव-का आविर्भाव हुआ कि मैं तुम्हारे साथ जा न सकी, चेष्टा करके भी नहीं। कई बार तो कड़ी बातोंसे तुम्हारा तिरस्कार भी किया। आज वे बातें हृदयमें शूल-सी चुभ रही हैं !

नाथ ! मेरा अभिमान चूर-चूर हो गया है। तुम्हारे सिवा संसारमें कहीं भी मुझे सुख नहीं हो सकता ! तुम न मेरा आदर करना, न मुझे प्यार करना ; केवल तुम्हारे चरणोंमें स्थान पाकर ही मैं सुखी हो सकूंगी। भारतीय नारी पतिके सुखमें ही अपना सुख और पतिके चरणोंको ही अपना सर्वस्व जानती है। आज मैं तुम्हारे सामने हाथ पसारें हुए हूँ, क्षमाकी भीखके लिए। क्या यह भीख मिलेगी ?

तुम्हारे—नहीं-नहीं, अपने—घरमें आनेके लिए प्राण छट-पटा रहे हैं। तुम जितना शीघ्र हो सके, मुझे आकर ले चलो। अबकी बार भर तुम और आओ। क्रोध न करना, तुम्हीं मुझपर क्रोध करोगे, तो मुझे कहाँ ठौर मिलेगी ? देखो, देर न करना, तुम्हें मेरी शपथ !

अनुत्पत्ता

गौरी

(२)

काशी

सावन बदी ७

मेरे 'तुम' !

इधर कितने दिनोंसे तुमने मुझे कोई पत्र नहीं लिखा, कितने निष्ठुर हो ! तुमने तो रोज-रोज पत्र लिखनेका वादा किया था । इसी तरह वादा पूरा करते हैं ? अगर मैं भी तुम्हें पत्र न लिखूँ, नाराज हो जाऊँ, तब बोलो ?

लेकिन मालूम पड़ता है, इधर तुम किसी मानसिक दुश्चिन्ता-में पड़ गए हो । ऐसा न होता तो तुम पत्र लिखनेमें कभी देरी न करते ; क्योंकि वैसी तुम्हारी आदत नहीं । और इसीलिए आज तुम्हें पत्र लिखने चली हूँ ।

देरसे सोच रही थी, तुम किस चिन्तामें पड़ सकते हो ? बात कुछ समझमें न आती थी । अभी सहसा एक बात याद आ गई । सब बातें समझमें आ गईं । मैं तुम्हारी चिन्ताका कारण समझ गई । कहो तो बता दूँ ! जादूगरनी समझोगे । तुम दीदी-के लिए चिन्तित हो । उनको तुमने कई बार घर लाना चाहा, वे न आईं । अब वे आना चाहती हैं, तुम सोच रहे हो, उन्हें लाऊँ कि नहीं—है न यही बात ?

उस दिन तुम्हारे डेक्सका दराज खोल रही थी, एक चिट्ठी नीचे गिर पड़ी । स्त्रीके हाथकी लिखावट देखकर पढ़नेका कौतूहल हुआ । वह चिट्ठी तुम्हारे नामकी थी । मैं पढ़ूँ या नहीं, पढ़ना उचित होगा या नहीं—यही बात सोचते मुझे देर हो गई, तबतक तुम कमरेमें आ गए । पत्रको भट आँचलमें छिपाकर बाहर निकल आई । आज तुमसे अपने हृदयका पाप कहती हूँ ।

एक नजरमें, बाहर आकर मैं सारी चिट्ठी पढ़ गई। वह चिट्ठी दीदीकी थी। जब मेरा व्याह हुआ, उसी समय दीदीकी बात मैंने सुनी थी; फिर कभी उनकी बात मुझसे किसीने न कही। मैंने भी उनके बारेमें कभी कुछ न पूछा। उस दिन उनकी चिट्ठी मैं पढ़कर दुखसे मर-सी गई। दीदी घरकी देवी हैं, सब कुछ उन्हींका है! उनके साथ अन्याय हुआ है। उसका बदला देना होगा—तुम्हें दीदीसे क्षमा माँगनी पड़ेगी। उन्हें मनाकर घर लाना पड़ेगा।

दीदी मुझसे बड़ी हैं, मेरे पहले उनका व्याह हुआ है। घर-पर, घरकी सम्पत्तिपर, तुमपर—सभीपर पहले दीदीका अधिकार है, फिर मेरा। कभी तुमने इस बातपर विचार किया है? यदि नहीं, तो बड़ी भूल की है। दीदी देवी हैं। लक्ष्मी-जैसा उनका स्वभाव है, सौन्दर्यकी तरह स्वरूप! यदि उन्होंने तुमपर अभिमान किया तो उचित ही किया; पर तुम्हें तो उनपर अभिमान न करना चाहिए! उनका अपराध ही क्या था, जो उनपर अभिमान किया जाय?

उस समय जैसी अवस्थामें वे थीं, कल्पना करो, यदि नैसो अवस्थामें तुम होते तो क्या करते? शायद जहर खा लेते अथवा गलेमें रस्सो डाल लेते! क्यों, यही न कि और कुछ? देखो, नारीका हृदय विश्वका रङ्ग-मञ्च है। तरह-तरहके अभिनेता उस मञ्चपर आते हैं। दृढ़ता और भीरुता, प्रेम और घृणा, करुणा और ज्वालाका उतना सुन्दर संयोग संसारमें तुम्हें कहीं न दीख पड़ेगा, जितना नारीके हृदयमें। नारीके हृदयको नारी ही जान सकती है, दूसरे नहीं। उसे जाननेके लिए, उसके अन्तर्नभतक प्रविष्ट

होकर उसका सब कुछ देखनेके लिए, जिस आँखकी जरूरत होती है, वे आँखें सबके पास नहीं होतीं। इसीसे सबलोग उसकी बात जान भी नहीं सकते ! समझा ? *Really so*

सच है, उन्हें लानेके लिए तुम कई बार उनके यहाँ गए थे, फिर भी वे न आईं। इस बातको अपने पत्रमें उन्होंने स्वीकार भी किया है, पर इसके कारणको जाननेका तुमने कभी प्रयत्न किया है ? मैं समझती हूँ, नहीं। शायद प्रयत्न करके भी न समझ पाते। मैं बताती हूँ, सुनो।

तुमपर उनका पूर्ण अधिकार था, तुम सब तरहसे उन्हींके थे। केवल सन्तान न होनेके कारण, तुमने उनकी अभिलाषाओं, उनकी भावनाओं और उनके प्रेमतकको ठुकरा दिया; मुझसे व्याह करके उनका सारा हिस्सा, सारा अधिकार छीन लिया। कौन होगा, जो इस प्रकार अधिकार छिन जानेपर चुपचाप बैठा रहेगा ? वह केवल नारीका ही हृदय है, जो यह मृत्यु-यन्त्रणा पाकर भी पतिका मङ्गल चाहती है। तुमने इस बातकी कल्पना न की होगी; पर मैं खूब समझती हूँ। इतना करके भी तुम उन्हें बुलाने गए। स्वभावतः उनके मनमें यह भावना जाग्रत हुई होगी कि अपना वैभव, अपना सुख दिखाकर, उन्हें कुढ़ानेके लिए ही तुम उनसे घर चलनेका अनुरोध कर रहे हो; और उनका ऐसा सोचना कुछ अनुचित भी नहीं था। यह तो मानव-स्वभाव है। इसीसे वे न आईं होंगी उस समय उन्हें आना भी न चाहिए था।

किन्तु अब तो वे स्वयं आनेके लिए आकुल हो उठी हैं। अपनेको अपना कहकर पुकारनेके लिए उनके प्राण हाहाकार कर रहे हैं। तुम विलम्ब न करो—शीघ्र उन्हें बुला लाओ। याद

रक्खो, जबतक वे उस घरमें न आ जायँगी, तबतक मैं भी उस घरमें पैर न रक्खूँगी। मैं अपने अङ्ग-अङ्गसे उनकी पूजा करती हूँ। यदि वे मुझपर क्रोध करेंगी तो मैं उन्हें मना लूँगी, तुम चिन्ता न करना।

पत्र देखते ही उन्हें बुलाकर उनके आनेकी सूचना दो। तब मैं भी आकर तुम दोनोंके चरणोंका साथ ही दर्शन करूँगी।

चरण-स्नेही,

—चुन्नी

(३)

कानपुर,

सावन वदी १२

प्राणायकी कल्प-लता !

प्राणोंका प्यार ! तुम्हारा सुधा-सिक्त पत्र यथासमय मिला था। पढ़कर आनन्दके हिंडोलेमें झूलने लगा। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मुझसे अलग रहकर भी तुम मुझे कभी-कभी याद कर लिया करती हो। आशा है, तुम प्रसन्न होगी।

तुम्हारे ठोस तर्कों और चतुर-रचनाके कारण, तुम्हारी अध्ययनशीलतापर मैं प्रसन्न हूँ। इतना प्रसन्न कि तुम्हारा पत्र पढ़कर ठीक उसीके अनुसार मैंने कार्य किया, पर सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा, गौरी अबकी बार भी मेरे साथ न आई। नारी-हृदयकी विचित्रताका पता किसे लग सकता है ?

सन्ध्याके सौन्दर्यसे विभावरी पागल हो रही थी। उसी

समय मैंने प्रयागके लिए प्रस्थान किया। जिस समय गौरीके घर पहुँचा, उसका भाई घरपर ही था। मुझे देखकर उसने गौरीको खबर दी। गौरी शायद आनन्दकी अधिकतासे मन-ही-मन नाच उठी।

जिस समय गौरीको देखा, बरबस आँखसे आँसुओंकी दो बूँदें टुलक पड़ीं। सफेद वस्त्र पहने, केश बिखराए, निराभरण गौरी ऐसी मालूम होती थी, मानो कोई तरुण-तपस्विनी हो। आत्म-त्यागकी ज्योति उसके चेहरेपर छिटक पड़ी थी। अपूर्व लावण्य था ! क्षणभरके लिए मैं आत्म-विस्मृत-सा हो गया !

धीरे-धीरे पास आकर उसने मुझे प्रणाम किया, फिर संकोच-के साथ एक ओर खड़ी हो गई। कुछ देरतक हमदोनों चुप रहे। अन्तमें मैंने ही शान्ति भङ्ग की। कहा—गौरी, खड़ी क्यों हो, बैठो।

मेरी चारपाईके पास ही, जमीनपर गौरी बैठ गई। अपनी विषादपूर्ण आँखें मेरी ओर स्थिर करके धीरे-धीरे बोली—इतने दुबले क्यों हो गए हो ?

मैंने कहा—दुबला हो गया हूँ ? कहाँ ! नहीं तो !

फिर वह कुछ न बोली। थोड़ी देर चुप रहकर फिर मैंने ही कहा—गौरी, तुम्हारी यह कैसी दशा हो गई है ?

गौरीने भारी आवाजसे पूछा—कैसी ?

मैंने कहा—यह क्यों पूछती हो ? सच कहो, तुम्हें क्या दुख है ? क्या तुम्हें चुन्नीपर क्रोध है ?

“क्या दुख है ?”—गौरी कहने लगी, “कैसे बताऊँ, क्या दुख है ? तुम्हारा—पुरुषका हृदय उसे समझ सकेगा ? विषमता-

की जिन आँधियोंको यह हृदय पार कर चुका है, भ्रंशोंके जिन आघातोंसे चूर-चूर हो चुका है, उसकी कथा सुनकर क्या करोगे ? चुन्नीपर मैं क्यों नाराज होऊँगी ; उस बेचारीने मेरा क्या किया है, अथवा किसीने भी मेरा क्या किया है ? जाने दो उन बातोंको । चुन्नी कहाँ है ?”

मैंने कहा—अपने पिताके घर । उसने मुझे लिखा है कि जबतक दीदी उस घरमें न आएँगी, मैं भी पैर न रखूँगी । उसीके लिखनेसे मैं आज दौड़ा आया हूँ ।

कहनेको कह दिया, पर पीछे मैं बड़ा लज्जित हुआ । ऐसी बात मुझे न कहनी चाहिए थी । उसने इस बातपर लक्ष्य किया, उसे लगी भी । तानेसे बोली—नहीं न आते ?

मैंने लज्जित होकर उत्तर दिया—आता क्यों नहीं । मगर...!

आगे कुछ न कह सका । बात फेरनेके लिए कुछ देर बाद बोला—तो कब चलोगी ?

उसने गम्भीर स्वरमें उत्तर दिया—कहाँ ?

मैंने कहा—अपने घर ।

दृढ़ स्वरमें वह बोली—यहाँसे मैं कहीं न जाऊँगी । मैं आकाशसे गिर पड़ा । आश्चर्यसे कहा—क्यों ?

“यों ही ।”

“तब तुमने मुझे पत्र क्यों लिखा था ?”

“चलनेके लिए ।”

“तो चलती क्यों नहीं ?”

“न जाऊँगी ।”

“यह क्यों ?”

अबकी वह फूट पड़ी। रुँधे गलेसे बोली—देखो मैं जन्मकी दुखिया हूँ, मुझे तङ्ग न करो। मैं स्वयं नहीं जानती, क्यों ऐसा कर रही हूँ ! मैं अबसे कुछ समय पहलेतक चलनेके लिए विलकुल तैयार थी ; पर अब, जब चलनेकी बात आई, मैं अपनेको चलनेके लिए तैयार नहीं पाती हूँ। मैं न जा सकूँगी, किसी तरह नहीं।

चुप रहना उचित न समझकर मैंने किसी प्रकार कहा—लेकिन यह ऐसा क्यों ?

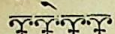
वह मुस्कराई। उसकी मुस्कराहटमें उसके हृदयकी विशाल वेदना थी। बोली—इस प्रश्नका उत्तर मैं दे चुकी हूँ। जीवनकी जिस धारामें मैंने अपनेको बहाया है, न-जाने वह मुझे कहाँ ले जायगी ; पर मैं उससे पैर पीछे नहीं हटा सकती, हटानेका कोई उपाय नहीं है—कोई भी नहीं।

मैंने कहा—गौरी, क्या अभी भी तुम मुझपर अभिमान किए हो ? क्या अभी तुम्हारा क्रोध दूर नहीं हुआ ? क्या तुम मुझे क्षमा न करोगी ?

“ऐसा न कहो”—मेरे पैरोंपर गिरकर गौरी फूट-फूटकर रोने लगी—“मेरा अभिमान चूर-चूर हो गया है। अनुतापकी आगसे मेरा हृदय जलकर भस्मीभूत हो गया है। मैं तुमपर क्रोध नहीं कर सकती। तुम मुझे माफ करो।”

रोते-ही-रोते गौरी उस कमरेसे निकल गई। अवाक् होकर चारों ओर देखने लगा।

दूसरे दिन लौटते समय दरवाजेपर गौरीसे मुलाकात हुई। उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं। मैंने कहा—तो मैं जाऊँ गौरी ?



उदास स्वरसे वह बोली—जाओ ।

आश्चर्यसे उसकी ओर मैंने देखा । बोला—गौरी, अब भी क्या तुम नहीं चल सकती ? मैं तुमसे क्षमा मागता हूँ ! तुम मुझे माफ करो—घर चलो ।

लम्बी साँस लेकर वह बोली—मुझे अधिक न रुलाओ । यदि मैं किसी तरह जा सकती तो अवश्य जाती, पर कोई रास्ता नहीं है । तुम जाओ ।

मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा किए बिना ही वह अन्दर चली गई और मैं क्षुब्ध चित्त लेकर स्टेशनकी ओर चला ।

चुन्नी ! तुम्हारे ही शब्दोंमें मैं कहूँगा कि नारीका हृदय विश्वका रङ्ग-मञ्च है, जहाँ तरह-तरहके अभिनेता अपना अभिनय दिखाते हैं, पर उनके अभिनयको सभी समझ नहीं सकते ।

गौरीकी बातोंसे, उसके उदास जीवनसे मैं बहुत क्षुब्ध हो उठा हूँ । अब मुझसे यह न देखा जायगा कि गौरी वैसा जीवन बिता रही है । जैसे हो, उसे सुखी बनाना ही पड़ेगा । और चुन्नी ! यह काम मैं तुम्हींको सौंपता हूँ । तुमने अपने पत्रमें लिखा है—नारीका हृदय सभी नहीं पहचान सकते । इस बातको सिर झुकाकर मैं स्वीकार करता हूँ । अब तुम नारीका हृदय पहचानो और गौरीको बुलानेका कोई उपाय करो । मैं इस जीवनमें उसको पहचान ही न सका । पहचान सकूँगा, इसकी भी कोई सम्भावना नहीं है ।

मैं तुम्हें लेने शीघ्र ही आऊँगा । तुम्हारे आनेपर ही गौरीको बुलानेका उपाय किया जायगा ।

तुम्हारा,

—नरेन्द्र

(४)

कानपुर

१३ भाद्रपद

भैया घनश्याम !

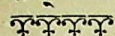
आनन्दसे उछलते हृदयके द्वारा आज तुम्हें इस मङ्गल दिवसकी बधाई भेज रहा हूँ । आज मेरे घरमें लक्ष्मीका प्रवेश हुआ है । रूपके आलोकसे मेरा अन्धकारमय गृह आज चाँदनी हो गया है । मेरे घरकी लक्ष्मी मेरे घरमें आई हैं । मेरी गृहस्थीमें सुखका सुनहरा सोता फूट चला है ।

अपने पहले पत्रमें मैं तुम्हें गौरीके यहाँसे वापस आनेतकका वृत्तान्त लिख चुका हूँ । वहाँसे लौटकर मैं चुन्नीको लाने काशी गया । पहले तो वह आती ही न थी । बहुत कहने-सुनने पर पीछे आई । और उसीकी चतुरतासे आज गौरीने भी इस घरमें पदार्पण किया है । मेरी रूठी हुई लक्ष्मी, कितने दिनों बाद फिर मेरे घरमें आई ।

चुन्नीने एक आदमीके द्वारा मेरी बीमारीका झूठा सन्देश गौरीके यहाँ भिजवाया । सुनकर गौरी अस्थिर हो गई—अपनेको रोक न सकी । झट आनेके लिए तैयार हो गई । आते समय वह खूब रोई थी, खूब ही ।

गौरीने काँपते चरणोंसे मेरे कमरेमें प्रवेश किया । उस समय मैं एक पत्र पढ़ रहा था । उसे घरमें घुसते देखकर मैंने सिर उठाया । कहा—कौन ? गौरी ! तुम यहाँ ?

गौरीने कुछ उत्तर न दिया । मेरे पास आकर शरीरपर हाथ फेरती हुई बोली—अब तबीयत कैसी है ।



मैंने आश्चर्यसे कहा—तबीयत ? मेरी तबीयतको क्या हुआ है ?

गम्भीर स्वरमें उसने कहा—तुम्हारी तबीयत खराब थी न ?

मैंने कहा—कहाँ ! नहीं तो !

“तब मुझे भूठी खबर क्यों दी ?”

मैंने विस्मयसे आँखें फाड़-फाड़कर उसकी ओर देखते हुए कहा—भूठी खबर कैसी ? तुम क्या कह रही हो गौरी, मैं कुछ नहीं समझ सका ।

“ऐं ! यह क्या ? तो क्या तुमने मुझे नहीं बुलाया ?”

“नहीं ।”

“तुम्हारा आदमी मुझे तुम्हारी बीमारीकी खबर देने नहीं गया?”

“नहीं ।”

वह एकाएक चौंककर उठ खड़ी हुई और दरवाजेकी ओर लपकी । इतनेहीमें बाहरसे आकर चुन्नीने उसके दोनों पैर पकड़ लिए । बोली—दीदी, तुम उनपर रज्ज न करो ! यह सारी शैतानी मेरी है । मुझे जो चाहो, सजा दो ।

गौरी ठिठककर खड़ी हो गई । बोली—तुम, तुम कौन ? क्या तुम्हीं मेरी सौत हो ?

चुन्नीने कहा—हाँ दीदी, मैं ही तुम्हारी छोटी बहिन हूँ । अब फिर तुम कभी मुझपर रज्ज न करना । छोटी बहिनपर ऐसे रज्ज होते हैं, दीदी ?

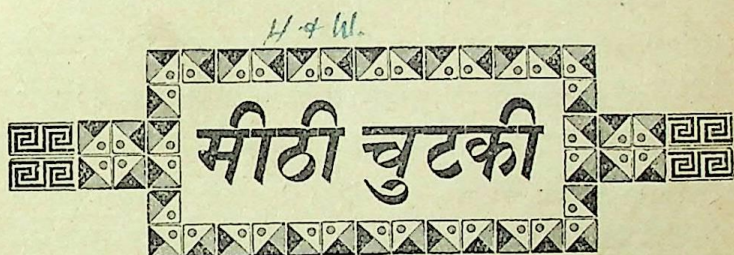
चुन्नी गौरीसे लिपट गई । गौरीने भी सारा क्रोध-अभिमान भुलाकर चुन्नीको प्यारसे चूम लिया और दूरपर बैठा हुआ मैं अतृप्त लोचनोंसे यह स्वर्गीय दृश्य देखता रहा ।

भाई, आज हृदयके प्यालेमें यह आनन्द छलक रहा है ।
मेरा घर स्वर्ग बन गया है । मैं वस स्वर्गका अधिपति हूँ । क्या
एक दिनके लिए तुम भी इस स्वर्गके मेहमान बनोगे ?

भैया, आशीर्वाद दो, मेरा यह सुख सदा बना रहे । संसार-
में मुझे और कुछ भी न चाहिए । अपना कुशल-समाचार दो ।

अभिन्न

—नरेद्र



[लेखक—श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, एम० ए०]

उर्फ 'बेढब' बनारसी]

.....

१७—८—३८

प्राणाधार,

पत्र मिला, हृदय शीतल हुआ । जिसको बाट देखनेमें आँखें
ज्योतिहीन हो चली थीं, वह कागजका टुकड़ा मिल गया । इसके
लिये किसे धन्यवाद दूँ, आपको या ईश्वरको । सम्भवतः एम०
ए० की तैयारीमें जहाँ कविता-काननके फूलोंकी सुगन्धिमें हृदय

रात-दिन भीना रहता है, हमारी सुधि रह भी नहीं सकती थी। फिर वहाँ घरपर जो शेक्सपियर और शेलीमें पढ़ते होंगे, काळेज-में उसे प्रत्यक्ष रूपसे देखनेका अवसर भी मिलता होगा। ऐसे आनन्दकी लहरोंपर जो भूला भूलता हो उसे एक सोधी-सादी खोका ध्यान भी कैसे आ सकता है ; जिसमें शृङ्गारकी कला नहीं, बनावके लिये बुद्धि नहीं। '... 'किताबें तो आपने बहुत-सी भेज दी हैं, इतनी कि यहाँ एक लाइब्रेरी बन सकती है। उसीको पढ़ रही हूँ। यदि यही याददाश्त है तब तो ईश्वर ही कुशल करें। अभी पत्रकी बातें भूल गये, कल मुझे भी भूल जायँगे। मैं तो पहलेसे जानतो थी कि न तो आप पुस्तकें भेजेंगे, न पत्रिकाके लिए आपने लिखा होगा। मेरा अनुमान ठीक ही निकला। इस-लिये उस सम्बन्धमें अब और कुछ लिखना मैं बेकार समझती हूँ। X X किशोरीको भाई पैदा हुआ है। देखनेमें बड़ा सुन्दर, गोल-मठोल-सा है। अभी सात-आठ दिनका तो है मगर बड़े भावसे मुस्कराता है। उसका मुस्क्याना बड़ा सुन्दर लगता है। दसहराकी छुट्टीमें दर्शन देनेकी कृपा कोजियेगा। सिनेमा और संगिनियोंके स्नेहमें दो-एक दिन गँवा मत दीजियेगा।

दासी

— ... ती

काशी

२—९—३८

प्रिये,

जिस प्रकारसे नेत्रोंके कटाक्षसे हृदयका जख्म भी मीठा

मालूम होता है, उसी प्रकारसे तुम्हारे पत्रके व्यङ्ग भी शैम्पेनके समुंदरमें मुझे छोड़ देते हैं । तुम्हारी चीठी पढ़कर मुझे नशा हो जाता है । आवकारी विभागवाले यदि कहीं सुन पाएँगे तो तुम्हारे पत्रोंपर भी लैसंस बैठा देंगे, ऐसा मुझे भय है । आरम्भसे लेकर अन्ततक प्रत्येक शब्द मादक है । फिर उसका उत्तर देनेके लिये होश कहाँ । बहक जाना स्वाभाविक है । हमें तो शेक्सपियर और शेली पढ़नेसे अधिक तुम्हारे पत्रोंके पढ़नेमें ही आनन्द आता है । रह गयी कालेजमें किसीको देखनेकी बात वह तुम्हें बता दूँ । हमारे कालेजमें और दर्जोंकी बात तो नहीं जानता, हमारे एम० ए० क्लासमें एक रमणी पढ़ती हैं । उन्होंने भी अंग्रेजी ही ले रखी है मेरे दुर्भाग्यसे । जहाँतक रंगकी बात है, वह खराब नहीं है । काशमीरके पानीमें सनलाइट साबुनका असर है । जो वहाँ पैदा होता है, सफेद हो जाता है । यह महिला भी काशमीरी हैं, इसलिये सफेद हैं । उनकी नाक ऐसी है जो उनके चेहरेपर बेकार है, यदि कहीं और होती तो आसानीसे खूँटीका काम दे सकती । कपोलोंसे अधपकी पावरोटीका धोखा मुझे अकसर हो जाता है जब चशमा उतार देता हूँ । कमरका घेरा सम्भवतः उतना ही होगा जितनी इनकी लम्बाई । सारा शरीर मालूम होता है मानो दो पैरोंपर जूसीका पीपा खड़ा है । यदि थोड़ा-सा मैं और लम्बा होता तो वह मेरी कमरतक पहुँच जाती । अभी जहाँतक मैंने पढ़ा है, न तो शेक्सपियरने न मिल्टनने न शेलीने न कीट्सने किसी ऐसी सुन्दरीका वर्णन किया है । और न मैं ऐसा कलाकार हूँ कि ऐसी देवीपर मुग्ध हो जाऊँ । और फिर जब तुमसे तुलना करता हूँ, तब तो ऐसा

मालूम पड़ता है कि यदि तुम सुन्दरतामें कंचन-जंघा हो तो वह गोबरकी ढेरी ।

किताबें मैंने नहीं भेजीं । मैं स्वयं सेवामें लेकर देवीको अर्पण करूँगा । उसमें तो कुछ आनन्दका अनुभव होगा । डाक-विभागका पियन अपने हाथोंसे तुम्हें ले जा करके पुस्तकें दें, यह मैं कब सहन कर सकता हूँ । पत्रिकाओंमें मुझे 'सरस्वती' ही प्रिय है । उसीके लिये लिख भेजा है । वह तुम्हारी अपनी पत्रिका होगी । किशोरके भाईका हाल सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई ।

तुम्हारे लिये मैंने एक जारजेटकी साड़ी खरीद रखी है, वह स्वयं लाऊँगा और पहनाकर तसवीर उतारूँगा । एक-दो दिन खराब करनेकी तो बात क्या मैं एक दिन पहले ही वहाँ पहुँच जाऊँगा । जबसे तुम्हारा पत्र मिला है तबसे हर जगह तुम्हारे ही पत्रके अक्षर तुम्हारी चंचल आँखोंकी तरह नाचते रहते हैं ! ऐसी अवस्थामें सिनेमा देखनेके लिए दिल कहाँ से आएगा ।

तुम्हारा केवल

.....

लॉर्ड क्लाइवके प्रेम-पत्र

अनुवादक—श्री० विश्वम्भरनाथजी कौशिक

[बंगालके सबसे पहले अंगरेज-गवर्नर लॉर्ड क्लाइवके घृणित व्यक्तिगत चरित्रका परिचय इतिहासके अनेक विद्यार्थियों-को नहीं है। नीचेके दो पत्र हम क्लाइवकी एक अंगरेजी जीवनीसे अक्षरशः अनुवाद करके दे रहे हैं। इन पत्रोंसे कई बातोंका परिचय मिलता है। एक यह कि क्लाइव व्यक्तिगत आचरणमें भी कितना भ्रष्ट एवं पतित था। दूसरा यह कि उस समय भारतमें इस तरहके अंगरेज भी मौजूद थे, जो क्लाइवके राजनीतिक कृत्यों-को अन्याय और अत्याचार समझते थे। तीसरे यह कि भले घरों-को अंगरेज-स्त्रियोंमें भी सतीत्व-रक्षाका भाव इतना ही प्रबल होता है, जितना कि संसारके किसी भी देशकी स्त्रियोंमें। चौथे यह कि वर्षों भारतमें रहने और नवाबोंके दरबारोंमें बैठनेके बाद भी क्लाइवको भारतीय भाषाओंका ज्ञान इतना अद्भुत था कि वह 'जादी'को पुरुष-वाचक और 'मिरजा'को स्त्री-वाचक समझता था। पाँचवें यह कि क्लाइवके इस तरहके पाप-प्रयत्नोंकी यह केवल एक छोटी-सी मिसाल थी, इत्यादि। उस पत्रको क्लाइवने रूपकके रूपमें लिखा था, जिसमें अपना नाम जादी और पत्र पानेवाली महिलाका नाम मिरजा रक्खा था।

—अनुवादक]

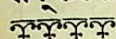
कैरेकियाली कृत “लाइफ ऑफ क्लाइव” भाग एक, पृष्ठ ४४७ पर लिखा है :—

“एक अत्यन्त सुन्दर अङ्गरेज-महिलाकी ओर, जो अपने चरित्रके लिए प्रसिद्ध थी और जो आजकल इङ्गलिस्तानमें रहती है, क्लाइवका चित्त आकर्षित हुआ। उस महिलाको देखकर क्लाइवकी काम-वासना जाग्रत हुई। क्लाइव जानता था कि वह महिला अपने निष्कलङ्क चरित्रके लिए विख्यात थी। स्वयं क्लाइव प्रतिष्ठित सम्मान जाता था और एक सम्माननीय ढङ्गसे रहता था, इसलिए वह जानता था कि उस महिलातक अपने हृदयके भावोंकी खबर पहुँचानेके लिए अत्यन्त सावधानी और गुप्त उपायोंकी आवश्यकता है। कम्पनीके मुलाजिमोंमें एक नौजवान अङ्गरेज था, जो सदा इस तरहके प्रेम-पत्रोंके पहुँचानेमें वफादारीके साथ लॉर्ड क्लाइवकी सहायता किया करता था। उस महिलाके साथ पत्र-व्यवहार करना भी इस अङ्गरेज मुलाजिमको ही सौंपा गया। वह महिला बहुत समझदार और हाजिर-जवाब थी। ज्यों ही उसे इस बातका पता लगा कि लॉर्ड क्लाइव मेरे गुणोंके लिए कितना अधिक आदर रखता है और मुझे कितना अधिक प्यार करता है, उसने क्लाइवके प्रेम-प्रदर्शन और उसकी इच्छाओंको उपहासके साथ ठुकरा दिया।

“एक दिन प्रातःकाल उस महिलाने देखा कि उसके श्रृङ्गारकी मेजपर पूर्वीय शैलीमें लिखा हुआ निम्न-लिखित पत्र पड़ा हुआ था। मालूम होता है कि क्लाइवके चतुर दलालने उस महिलाके किसी चाकरको अपनी ओर कर लिया था और उस चाकरद्वारा वह पत्र उस मेजपर रखवा दिया गया था। इस पत्रमें

लॉर्ड क्लाइवने रूपक बाँधकर अपने वीर-कृत्योंको और साथ ही उस महिलाकी ओर अपने प्रबल प्रेमको निम्न-लिखित शब्दोंमें प्रकट किया है :—

“जादीको आरम्भमें व्यापारके काममें नियुक्त किया गया था । उस काममें अत्यन्त धन-वैभव प्राप्त किया जा सकता था ; किन्तु जादीमें युद्धके लिए स्वाभाविक योग्यता और असाधारण प्रवृत्ति मौजूद थी । इसलिए एक वीरके सदृश धन-वैभवका तिरस्कार करते हुए जादीने अपनी भीतरी प्रेरणासे उन वीरों और मनुष्य-जातिके उपकारकोंके यशस्वी जीवनमें प्रवेश किया, जोकि बादशाहों और कौमोंको विजय करके अपने पराजितोंको सुख और शान्ति प्रदान करते हैं । युद्धके मैदानमें जादीकी सबसे पहली सफलताका परिणाम यह हुआ कि उसने एक धन-सम्पन्न प्रान्त विजय कर लिया । इसके बाद उसने एक युद्ध-प्रेमी और बलवान शत्रुके हाथोंसे एक महत्वपूर्ण दुर्ग विजय किया, जिसके द्वारा उसने अपने नए विजित प्रान्तको सुरक्षित कर लिया । यह दुर्ग एक तुच्छ अन्यायी नरेशका प्रबल दुर्ग था, जिसके जङ्गी जहाजी बेड़ोंने योरोप और एशियाके व्यापारको आपत्तिमें डाल रक्खा था । यह दुर्ग जादीकी विजयी सेनाके सामने न ठहर सका । जादीने शीघ्र ही उस स्थानको, जहाँपर कि एक निर्दय, असभ्य और विश्वासघातक नरेशने भयङ्कर हत्याकाण्ड मचाया था, फिरसे प्राप्त करके अपने देश-वासियोंकी निर्दय हत्याका बदला लिया । जादीने उस स्वेच्छाचारी, अन्यायी नरेशकी प्रबल सेनाको परास्त कर उसे तख्तसे उतार दिया । जादीके चित्तमें अपने लिए बादशाहतें प्राप्त करनेकी कोई इच्छा न थी, इसलिए इसके



बाद उसने दूसरोंको बादशाहतें प्रदान कीं । इस प्रकार वह एशिया-का भाग्य-विधाता बन गया । जादीकी विजयकी कीर्ति गङ्गाके तटोंसे लेकर योरोपकी पश्चिमी सीमातक फैल गई । जादी फिर अपनी जन्म-भूमिको लौटा । वहाँपर जादीको यह देखकर सन्तोष हुआ कि उनलोगोंने, जिन्हें कि जादीने एक धन-सम्पन्न प्रायद्वीप-का स्वामी बना दिया था, खुले-तौरपर जादीकी सेवाओंका आदर-किया, और वहाँ के अनुग्रहशील बादशाहने जादीको इनाम दिया । इसपर जादीने उदारताके साथ उस विशाल धनके समस्त सुखोंको तिलाञ्जलि देकर, जोकि उसने अपने व्यवहार और अपनी वीरतासे उपार्जन किया था, फिर भारत लौटकर अभागे देशी नरेशोंको उनके पैतृक राज्य वापस दिलाने और इन पूर्वीय प्रदेशोंमें, जहाँपर कि जादी इतनी बार विजय प्राप्त कर चुका था, स्थायी और गौरवान्वित शान्ति स्थापित करनेका निश्चय किया । किन्तु इन समस्त स्मरणीय वीर-कृत्योंके बाद और उनके कारण जादीके महान यश प्राप्त करनेके बाद, उच्च आत्माओंकी सर्वोच्च भावना, अर्थात् प्रेमने जादीकी समस्त महत्वाकांक्षाओंपर पानी फेर दिया । जादीने मिरजाको देखा है, और जबसे जादीने मिरजाका दिव्य मुखड़ा देखा है, तबसे जादीको एक क्षणके लिए भी सुख अथवा चैन नसीब नहीं हुआ । यद्यपि जादीके पास धन और उसका यश इतना अधिक है कि शायद योरोप तथा एशियाके अन्दर अनेक सुन्दर स्त्रियाँ उससे प्रगाढ़ प्रेम दर्शानेको तैयार हो जातीं, तथापि जादीके हृदयमें किसी दूसरी स्त्रीके लिए अणुमात्र भी विचार अथवा स्थान नहीं है । जादीके समस्त मन, हृदय और आत्माके अन्दर प्रियतमा मिरजा ही मिरजा भरी हुई है । जादी-

के लिए मिरजा ही उसका विश्व है। यदि जादीको यह पता लग जाय कि वह प्रबल मोहिनी, अर्थात् मिरजा जादीकी प्रतिज्ञासे प्रसन्न है, तो जादी सृष्टिमें अपनेको सबसे अधिक भाग्यवान समझेगा और अपना समस्त धन और नैभव मिरजाके चरणोंपर अर्पण कर देगा। जादीके लिए मिरजा ही इस पृथ्वीपर सबसे बड़ी सुन्दरी है ! जबतक जादीको मिरजाके अन्तिम निश्चयका पता नहीं लगता उसे विश्राम नहीं मिल सकता। प्रेमके मामले-में सन्देह और शङ्काकी अवस्था इतनी अधिक कष्टकर होती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसलिए जादी अपने प्रशंसा-पात्र मिरजासे प्रार्थना करता है कि जादीकी अधीरताको देखते हुए वह इस पत्रका शीघ्र ही उत्तर दे। दयालु परमात्मा मिरजाके चित्तमें वह दया उत्पन्न करे कि मिरजा जादीकी सन्तप्त आत्माको फिरसे शान्ति प्रदान कर सके। जहाँपर आपको यह अप्रकट लेख मिले, वहींपर इसका उत्तर रख दीजिए। उत्तर जादीके हाथोंमें सुरक्षित पहुँच जायगा।”

उस महिलाने तुरन्त अनुमान कर लिया कि इस पत्रका भेजनेवाला कौन है। उसने इस बातकी जाँच करना उचित न समझा कि जादीका यह पत्र, जिसमें उसने अपने प्रेम और यश दोनोंकी डींग हाँकी थी, मेरे सोनेके कमरोंमें किस तरह पहुँच गया। उसने स्वभावतः यह समझा कि जादीके किसी आदमीने मेरी किसी नौकरानीको रिश्वत देकर अपनी ओर कर लिया है। उस महिलाके सतीत्वने उसे इस बातकी इजाजत न दी कि वह जादीके प्रेमका आदर करे। जादीके इन प्रेम-दर्शनोंसे छुटकारा पानेके लिए और इस विचारसे कि जादी मेरे चुप रहनेका

यह अर्थ न समझे कि मैं उसके प्रेमको स्वीकार करनेके लिए तैयार हूँ, उस महिलाने साहसके साथ निम्नलिखित पत्र उत्तरमें भेजा:—

“मिरजा ईमानदार, परिश्रमी और प्रतिष्ठित माता-पिताकी लड़की है। उसके माता-पिताने अपनी आँखोंके सामने उसे समस्त आवश्यक सद्गुणोंकी शिक्षा दी है। मिरजा जादीके पूर्वीय, अत्युक्तिपूर्ण पत्रका उत्तर देनेका कष्ट न उठाती, चाहे जादीका पद कितना भी उच्च क्यों न हो; किन्तु मिरजाको यह विश्वास न हुआ कि जादी मिरजाके उत्तर न देनेका यह अर्थ समझ लेगा वा नहीं कि मिरजा जादीके प्रेम-प्रदर्शन और धृष्टताको घृणाकी दृष्टिसे देखती है। मिरजाको इस बातकी कोई आकांक्षा नहीं है कि वह अपने पिताकी जीविका, अर्थात् वाणिज्य-व्यापारसे बढ़कर इस तरहके किसी नीच कामकी ओर जाय। मिरजा उस धनके प्रलोभनोंको घृणित समझती है, जो धन कि दूसरोंको लूटकर और बर्बाद करके कमाया गया हो, विशेषकर जबकि वह धन निर्दोष स्त्रियोंको बहकाने और उनके निष्कलङ्क चरित्रको कलङ्कित करनेके लिए काममें लाया जाय। यदि जादीको क्रियात्मक बुद्धि और उसका युद्ध-कौशल अब लड़ाईके मैदानमें और अधिक नहीं चमक सकता, तो उसे चाहिए कि शान्तिके उद्योगोंको उन्नति दे और शान्तिसे शासन करके करोड़ों दुखित जनताको फिरसे शान्ति और समृद्धि प्रदान करे। सच्चे वीर वास्तवमें वे हैं, जो मनुष्य-जातिके मित्र हैं, उसके नाशक नहीं। यदि जादी वर्तमान मानव-समाज और उसकी भावी सन्ततिकी दृष्टिमें उनका मित्र दिखाई देना चाहता है, तो मेरी रायमें उसे चाहिए कि वह अपने उन कृत्योंका इतिहास, जिनकी वह डींग

हाँकता है, अपने हाथसे लिखे। कायर देशी नरेशोंको वशमें किया गया, उन्हें धोखा दिया गया और अन्यायद्वारा उन्हें गद्दीसे उतार दिया गया। निर्दय लुटेरोंने उनकी दुखित प्रजाको सताया। अब चाहिए कि उनके देशकी जिन पैदावारोंपर गैरोंने अपना अनन्य अधिकार जमा लिया है, वे फिरसे देशवासियोंको दे दी जायँ। मिरजा जादीके उन सब भयङ्कर कृत्योंको दुहरानेका प्रयत्न न करेगी, जिनमें कि जन-संहार, बर्बादी, एक अन्यायीको गद्दीसे उतारकर उसकी जगह दूसरे अन्यायीको गद्दीपर बैठाना इत्यादि शामिल हैं। समय ही इस बातको साबित कर सकेगा कि योरोप और एशियामें जादीकी कीर्ति न्यायद्वारा प्राप्त की गई है अथवा अन्यायद्वारा, और जादीके संग्राम मानव-जातिके अधिकारोंका समर्थन करनेके लिए लड़े गए हैं अथवा अपनी धन-पिपासा और महत्वाकांक्षाको शान्त करनेके लिए। रही उपाधियों और सम्मानकी बात, सो ये चीजें इतनी अधिक बार अयोग्य मनुष्योंको प्रदान की जाती हैं कि उन्हें सच्ची योग्यता और न्यायपरताका पारितोषिक नहीं कहा जा सकता। जादीको चाहिए कि निःस्वार्थ सेवा और दयालुताद्वारा भारतवासियोंको इस बातका विश्वास दिलावे कि वह उनको दुख देनेके लिए नहीं, बल्कि उनकी रक्षा करनेके लिए आया था। यदि भारत-वासी क्षणिक शान्तिका सुख भोग रहे हैं, तो उसके साथ ही वे न्याय-विरुद्ध लूट-खसोट और दुष्कालके भयङ्कर कष्टोंका भी अनुभव कर रहे हैं। जादीको चाहिए कि वह अपनी विजयोंकी छायामें स्वयं ही आनन्दसे बैठे और प्रतिष्ठित घरानोंको अपमानित और कलङ्कित करनेका विचार न करे। सच्चा और हार्दिक प्रेम वास्तव-

में उच्च आत्माओंकी एक वासना है, किन्तु वह पाशविक वासना नहीं, जोकि निर्दोष और सच्चरित्र लोगोंको चरित्र-भ्रष्ट करनेका अपनेको अधिकारी समझती है। मिरजा चाहती है कि जादी पूर्ववत् आनन्दसे रहे और फिर कभी इस तरहके एक व्यक्तिका अपमान न करे, जो अपने सदाचारके लिए जादीके आदरका पात्र है। जादीके धन और उसकी शानसे चकाचौंध हो जाना वेश्याओंका काम है, मिरजाको जादी और उसके प्रेम-प्रदर्शन, दोनोंसे हार्दिक घृणा है।”

क्लाइवकी जीवनी लिखनेवाला अङ्गरेज लेखक, जो उसका समकालीन था, लिखता है :—

“इस उत्तरने लॉर्ड क्लाइवके पत्र-व्यवहारको समाप्त कर दिया। फिर कभी उसने उस महिलाको पत्र लिखनेका प्रयत्न न किया। रूपकके रूपमें यह प्रेमपत्र और उस महिलाका जवाब दोनों मुझे उस महिलाके एक घनिष्ठ मित्रने दिए हैं और उसको इजाजतसे दिए हैं। यह घटना सन् १७६६के प्रारम्भ की है। यदि पाठकको इन पत्रोंकी सत्यतापर कोई सन्देह हो, तो वह महिला इस समय हैनोवर स्क्वेयर, सेण्ट जॉर्जके पैरिसमें रहती है। यदि आवश्यकता हो तो अपने मित्रद्वारा वह इस बातको तसदीक करनेके लिए तैयार है कि जो पत्रोत्तर मैंने ऊपर दिया है, वह मूल पत्रोंकी ठीक-ठीक नकल है।”

बङ्गालके अन्दर गोरी और काली दोनों रङ्गकी स्त्रियोंकी अनेक ऐसी मिसालें मौजूद थीं, जिन्होंने अपमानके साथ क्लाइवके प्रेम-प्रदर्शनको अस्वीकार किया और उसे संसारके सामने उपहासका पात्र बनाया।”

अ नु न य

[लेखक—देवनारायण द्विवेदी]

(१)

ता० ३-९-३८

काशी

मेरी हृदयेश्वरी,

आज मैं फिर अपने हृदयकी विकलतासे विवश होकर तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। हमेशाकी भाँति आज भी मेरे दिलकी यही धारणा है कि तुम मेरे पत्रका उत्तर अवश्य दोगी; किन्तु पिछलो बारकी भाँति इस बार भी मेरे हृदयकी उस धारणाकी तहमें इस बातकी स्पष्ट झलक दिखायी पड़ रही है कि तुम मेरे पत्रका उत्तर कदापि न दोगी—क्योंकि तुम रूठी हो। मेरे हृदयकी एक तन्त्री बज रही है कि तुम रूठी नहीं हो, मान किये बैठी हो; किन्तु एकाग्रधिक तन्त्रियाँ तुमल ध्वनिसे उस एक तन्त्रीके स्वरको अपनेमें विलीन करके उच्च स्वरमें बज रही हैं कि नहीं, तुम मान किये नहीं बैठी हो, रूठी हो। जो भी हो, इतना तो मैं

अच्छी तरह जानता हूँ कि अभी भी तुम्हारे हृदयके किसी कोनेमें मेरी मधुर स्मृति शेष है। उसीके फल-स्वरूप पत्र न लिखनेका दृढ़ संकल्प करनेपर भी उस संकल्पको तोड़कर मुझे यह पत्र लिखनेके लिए विवश होना पड़ रहा है।

याद है न तुम्हें अपने वे शब्द जिन्हें तुमने जाते समय कहा था ? तुमने कहा था कि 'अबतक मेरा भाव तुम्हारी ओरसे जरा भी नहीं बदला था, पर अब तुमने जबर्दस्ती उसे अपनेसे बदल दिया।' क्या तुम अपने हृदयपर हाथ रखकर कह सकती हो कि मैंने तुम्हारा भाव बदल दिया ? क्या मैं इतना अनाड़ी हूँ कि अपने ही हाथसे अपने पैरमें कुल्हाड़ी मारूँगा ? मेरी रानी ! रोपमें आकर मुझपर अन्याय न करो। वे दिन याद हैं जब तुम मेरे लिए करवटें बदलना भी मुश्किल कर देती थीं और करवट बदलते ही मूक भाषामें सूचित करती थीं कि 'मेरे पास तुम्हारा दिल नहीं लगता, इसीसे तुम मुँह फेर लिया करते हो ?' मेरे जीवनकी वे सुनहली घड़ियाँ थीं जब मुझे जरा-सी नींद आते ही तुम मानिनी बनकर आँसू बहाने लग जाती थीं और कसमें दिलाकर बहुत पूछनेपर कहती थीं, 'मेरे पास आते ही तुम्हें नींद आने लगती है—वैसे हो तो रात-भर जागरण करो।' मैं तुम्हारे उस भोलेपनको, लज्जासे ढँके हुए उस शान्त और गम्भीर प्रेमको आमरण नहीं भूल सकता। ओफ् ! उस समय तुम अपने प्रेमको प्रकट होने देनेमें भी लज्जित होती थीं। मेरे सो जानेपर तुम्हारा मेरे बालोंपर कंधी फेरना, मेरे मुँहपर बड़े यत्नसे क्रीम लगाना, चकोरीकी भाँति पुलकित नेत्रोंसे मेरे मुखकी ओर देखते रहना उसका द्योतक था। तुम्हारे कोमल करोंके स्पर्शसे मेरी नींद खुल

जाती थी और मैं सोया हुआ-सा पड़ा रहकर तुम्हारे प्रत्येक कार्यको बड़े ध्यानसे देख-देखकर मन-ही-मन आनन्द-सागरमें डूब जाया करता था ।

जानती हो तुम्हारा प्रेम इतना क्यों था और मैं आनन्द-विह्वल क्यों रहा करता था ? इसलिए कि हमदोनोंके हृदयमें सन्देह नहीं था ; एक दूसरेका आकर्षण, हृदयस्थ प्रगाढ़ प्रेमकी ओर था । 'हित अनहित पसु पंछिउ जाना ।' मनुष्य अपना मनोगत भाव न तो वाणीद्वारा प्रकट करता है और न अन्य किसी प्रकार-से व्यक्त होने देता है ; किन्तु दूसरा मनुष्य अनायास ही उसके हृदयका गुप्त भाव ताड़ जाता है । यही तो आत्मैक्यका प्रभाव है ; यही तो प्राकाम्य शक्ति है ।

किन्तु हाय ! आज वही तुम मुझपर झूठा सन्देह करके तनी बैठी हो । मेरे और अपने सुखमय स्वर्गीय जीवनको मिट्टीमें मिला रही हो । किसलिए ? इसलिए कि उस दिन मैं रेखासे हँसकर बातें करता हुआ थोड़ी दूरतक उसके साथ चला गया था । उस दृश्यको तुमने खिड़कीसे देख लिया था । इतनी-सी बात ही सारे अनर्थकी जड़ हो गयी । उसी दिनसे तुम्हारे हृदयका भाव मेरे प्रति बदल गया । बातोंमें कड़वाहट आ गयी । बोलीमें असह्य गम्भीरता आ गयी । व्यवहारमें तनाव हो गया । उच्छृंखल अवस्था होनेके कारण कुछ दिनोंके लिए उसका प्रभाव मेरे हृदयपर भी पड़ गया था । मैं भी तुमसे कुछ खिंच-सा गया था । परिणाम-स्वरूप दोनोंके हृदयमें अन्तर पड़ता गया । उसके बाद तो मैं रेखाकी परछाईं से भी बचकर रहने लगा, पर उसका फल कुछ न हुआ । कुछ दिन बाद ही तुम अपने पिताके साथ मायके चली गयीं ; और

लव लेटर्स
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

आज यहाँ तक नौबत आ गयी कि मेरे पत्रों का उत्तर देना भी तुम अपनी शान के खिलाफ समझ रही हो।

इतने पर भी मैंने, यदाकदा ही सही—पत्र भेजना जारी रखा है। यह इसलिए कि तुम्हारे जाने के बाद मैंने गम्भीरतापूर्वक आपस के नैमनस्य पर विचार किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि हम लोग जीवन-सुलभ मार्ग को छोड़कर ऐसे कंटकाकीर्ण मार्ग से आगे बढ़े जा रहे हैं कि कुछ ही दूर और आगे जाने पर हम विकट भाड़ी में फँस जायेंगे और उससे निस्तार पाना कठिन ही नहीं एक प्रकार से असम्भव-सा हो जायगा। जीवन तो हम दोनों को एक साथ रहकर ही बिताना पड़ेगा—चाहे उसे आनन्द-पूर्वक बिताने अथवा कुढ़-कुढ़कर। ऐसी दशामें हम क्यों न हृदय की मैल को धो बहावें? तुमसे मेरा यही अनुरोध है कि तुम अपने दिल के भूठे शक को निकाल बाहर कर दो। इससे अहित के बदले हित नहीं हो सकता। यदि तुमने अपना शक तुरन्त ही मुझसे कह दिया होता, तो सम्भवतः मैं तुम्हारा शक दूर कर देता और तिलका पहाड़ न हो पाता। सुन्दरी युवती से किसी युवक का मौका आने पर एक बार हँसकर बोल देना इतना बड़ा गुनाह नहीं है कि उसके लिए दाम्पत्य जीवन ही बर्बाद कर दिया जाय। मेरी बातों को ध्यान से पढ़ो और शान्त भाव से उस पर विचार करो। इस प्रकार तन बैठना तो एक प्रकार से चुनौती देना है जिसका परिणाम हम दोनों के लिए अच्छा नहीं हो सकता। तुम्हारे रूठने का तो मेरी समझ से यही अभिप्राय होगा कि इससे मैं अन्य किसी युवती के प्रेम में न फँसकर फिर तुम्हारे निकट आ जाऊँ न कि यह कि मैं तुमसे दूर हो जाऊँ। किन्तु ऐसा समझना तुम्हारी

भूल है। मैं हृदयके साथ कहूँगा कि तुमने गलत रास्ता अख्तियार किया है। किसीके हृदयको अपनी ओर आकर्षित करनेकी शक्ति प्रेममें है न कि व्यर्थ रूठनेमें। 'नखरो राह राहको नीको।' यदि तुम्हें शक ही हुआ तो तुम्हें चाहिए था कि कुछ दिनोंतक पूर्ण सतर्कतासे मेरी गति-विधिपर लक्ष्य रखतीं, इतनी जल्दबाजीसे काम न लेतीं। मेरा विश्वास है कि वैसा करनेपर तुम्हारा शक अपने-आप ही दूर हो जाता और हमदोनों व्यर्थ ही एक दूसरेके लिए इतना अधिक मानसिक कष्ट न भोगते।

इसलिए मेरे कहनेसे तुम अब भी चेत जाओ। भेद-भावको मिटाकर पूर्ववत् हो जाओ। अभी हमलोगोंमें बिगाड़ ही किस बातका हुआ है। सुबहका भूला हुआ यदि शामतक घर आ जाय तो उसे भूला हुआ नहीं कहा जा सकता। आशा है कि तुम मेरी बातोंपर विचार करके अपने तथा मेरे उत्तम हृदयको शीतल करनेका प्रयत्न करोगी। अन्तमें मैं ईश्वरको साक्षी देकर फिर कहता हूँ कि मैं निष्कलंक हूँ और तुम्हारा शक भूठा है। तुमने मेरे हृदयकी रमणीक प्रेम-बाटिकाको उजाड़कर क्या फल पाया? मैं तो समझता था कि मेरे तुम्हारे बीचके प्रेममें आदान-प्रदानका भाव है ही नहीं। किन्तु यह तुमने क्या किया? क्या प्रत्यक्ष सत्य बातपर भी एक बार विश्वास न करना तुम्हारे प्रेमके लिए बड़प्पनकी बात न होती? किन्तु हरि इच्छा बलवान है, तुम्हारा कोई दोष नहीं। मेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि मैं अपनी अर्द्धांगिनोका घृणा-पात्र न बन सकूँ।

तुम्हारा वही

.....म।

(२)

कानपुर

६—९—३८

प्राणनाथ,

तुम्हारा ३—९—३८ का पत्र मिला । इसके पहलेके पत्र भी यथा-समय मिलते गये थे ; किन्तु अबतक मैं इसी उधेड़-बुन-में लगी रही कि उत्तरमें क्या लिखूँ । कभी जीमें आता था कि खूब फटकारकर पत्र लिखूँ ; किन्तु लिखने बैठनेपर उसमें मैं अपनेको कमजोर पाती थी । कभी सोचती थी अपने हृदयका आँसू तुम्हारे पासतक पहुँचाऊँगी, किन्तु उसमें भी मैं असफल ही रहती थी । इधर दो-तीन दिनसे मैं एक परिणामपर पहुँची थी और तुम्हें पत्र लिखनेवाली थी, इतनेहीमें तुम्हारा यह पत्र भी आ पहुँचा । मैंने अच्छी तरह सोचकर देखा, तुम्हारे बिना मुझे सुख और शान्ति कहीं नहीं मिल सकती । इसीसे मैं चाहतो थी कि यदि मुझसे कुछ अपराध हुआ हो तो उसके लिए तुमसे क्षमा माँगूँ । किन्तु अब तो उसकी आवश्यकता ही नहीं रही । क्षमा-प्रार्थिनी बननेके पहले ही मुझे इस पत्रमें क्षमादान मिल गया ।

हाँ, एक बात मेरी समझमें नहीं आयी, यदि प्राकाम्य शक्तिसे मनुष्य दूसरेके हृदयका भाव समझ ही लेता है, तो मैं तुम्हारे दिलका भाव क्यों नहीं समझ सकी ? क्यों भूठा सन्देह कर बैठी ? प्राणनाथ, सब दोष मेरा ही नहीं है । तुम्हीं बतलाओ, यदि तुम मेरे स्थानपर होते तो उस समय क्या निश्चय करते ? मानती हूँ कि आदर्श प्रेममें आदान-प्रदानका भाव रहना ठीक नहीं ; क्योंकि प्रेम स्वर्गीय पदार्थ है । उसमें तो यह भाव होना

चाहिए कि तुम मुझे चाहो या न चाहो, पर मेरा प्रेम तुमपर व्योका-त्यों रहेगा। किन्तु विनिमयका भाव तो तुम्हारे ही प्रेममें दिखायी पड़ा—मेरे नहीं। यदि ऐसा न होता तो मेरे रूठनेपर तुम भी न रूठ जाते। मेरा रूठना तो स्वाभाविक था। अपने प्राणको निकलते देखकर किसे दुःख न होगा? अपने सर्वस्वको लुटते देखकर किसकी धैर्यच्युति न होगी? मुझे तुम्हारे चरित्र और स्वभावकी पवित्रतापर पूर्ण विश्वास था; किन्तु जब मैंने अपने प्राचीन इतिहासपर नजर डाली और बड़े-बड़े तपस्वी ऋषि-महर्षियोंको अपनी सारी तपस्याको आहुति देकर मेनका, उर्वशी आदि अप्सराओंके चरणोंपर लोटते पाया, तब तो मेरा विश्वास निमेष-मात्रमें टूट गया। जो भी हो, अब गड़ा मुर्दा उखाड़नेसे कोई लाभ नहीं। यदि तुम मेरी गलतियोंको भूलकर अपने पत्रमें मेरी शंकाका समाधान करोगे तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगी। क्या मैं आशा करूँ कि मुझे शीघ्र अपने पास बुलाकर शान्ति दोगे? कब आओगे? दर्शन किये बिना हृदयका दुःख पूर्णतया दूर न होगा।

—तुम्हारी दासी

(३)

ता० १०—९—३८

सन्ध्याकाल ५॥ बजे

बनारस

प्राणेश्वरी,

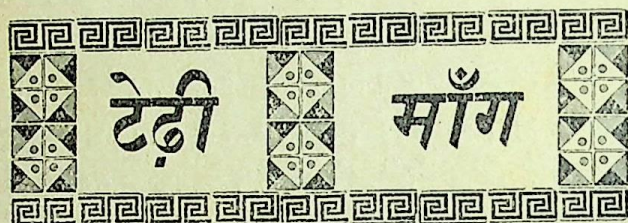
तुम्हारे पत्रने मुझे उबार लिया। मैं पत्रोत्तर पानेकी आशा छोड़ चुका था और भावी कर्तव्य स्थिर कर चुका था। तुम्हारा

घृणापात्र बनकर जीवन व्यतीत करनेकी अपेक्षा तुम्हें पानेके लिए जीवनकी आहुति दे देना मैं श्रेयस्कर समझता था। किन्तु जान पड़ता है कि विधाताको वह स्वीकार नहीं था। इसीसे तुम्हारा विचार हठात् पलट गया है और तुम स्नेह-सिंचित पत्र लिखनेके लिए बाध्य हुई हो।

प्राकाम्यके सम्बन्धमें तुमने जो प्रश्न किया है, वह बहुत ही उचित है। बात यह है कि मनुष्य बुद्धिद्वारा अविष्कृत वस्तुओंका सहारा न लेकर अपनी इन्द्रियोंसे जितना ही अधिक काम लेता है, प्राकाम्यकी उतनी ही अधिकता होती जाती है। यही कारण है कि यह शक्ति मनुष्यकी अपेक्षा पशुओंमें कहीं अधिक है। तुमने मुझे रेखाके साथ हँसकर बातें करते देखा, तुम्हारा दिमाग घूम गया। उस समय तुमने बुद्धिसे जरा भी काम नहीं लिया। क्रोधपर विजय करके शान्ति-पूर्वक उसे समझनेकी चेष्टा नहीं की। इसीसे तुम्हें धोखा हुआ। क्रोध और ईर्ष्याने तुम्हें मेरे दिलका भाव समझने नहीं दिया। जिन वस्तुओंसे यह शक्ति प्राप्त हुआ करती है, वे वस्तुएँ ही उस समय तुम्हारे भीतरसे निकल गयी थीं। तपस्वियोंमें यह शक्ति बहुत अधिक होती है; वे दूसरोंके दिलकी बातें बहुत जल्द और अधिक स्पष्ट रीतिसे जान लेते हैं। क्यों? इसलिए कि उनका अन्तःकरण पवित्र रहता है। वे क्रोधादि शत्रुओंको अपने पास जल्द फटकने नहीं देते। आशा है कि अब तुम इस गम्भीर विषयको अच्छी तरह समझ जाओगी। मैं तुमसे खिंच गया था; किन्तु जब मैंने यह जाननेकी चेष्टा की कि तुम मुझपर क्यों नाराज हो, तो फौरन ही मुझे सारी बातें मालूम हो गयीं। यदि मैं उसे जाननेकी चेष्टा न

करता तो मैं भी तुम्हारी ही तरह अन्धकारमें पड़ा रहता । अस्तु, तुमने जो यह पत्र भेजकर मेरे हृदयकी व्यथाको दूर कर दिया है, उसके लिए मैं तुम्हारा चिरश्रेणी रहूँगा । इतने दिनोंतक मुझ-पर कैसी बीती है, शब्दोंद्वारा व्यक्त करनेमें असमर्थ हूँ । इस समय मेरा हृदय भी तुम्हारी ही तरह मिलनेके लिए अधीर हो रहा है । एक-एक क्षण युगके समान बीत रहा है । यदि यह पत्र ठीक समयपर तुम्हें मिला तो उसके चौबीस घंटेके भीतर ही मैं भी तुम्हें लेनेके लिए तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा । ठीक है न ? परमात्मा सब अच्छेहीके लिए करते हैं । इस सम्मिलनमें हम-लोगोंको जो अपूर्व आनन्द आवेगा, वह शायद नैसे न आता । वास्तवमें जीवनमें घटनाओंका संघात प्राप्त हुए बिना जीवनमें सजीवता नहीं आती । अस्तु । असीम आनन्दका भार वहन करनेके लिए तैयार हो जाओ । मैं भी तैयारी कर रहा हूँ ।

तुम्हारा
.....म ।



[लेखक—अन्नपूर्णानन्दजी]

प्रिये

इसके पहलेके पत्रमें मैंने तुम्हें क्या लिखा था ? प्राणेश्वरी या प्राणधिके ? भूल गया । खैर इतना याद है कि इस बार पारी प्राणबल्लभकी थी ; पर लिखता हूँ प्रिये । मुझे दस हाथ लम्बा प्यारका शब्द पसन्द नहीं । तुम भी मुझे प्राणबल्लभ न लिखा करो । ज़रा बल्लभका तुक मिलाकर देखो । शलभ, वृषभ, रासभ, बस ऐसे ही शब्द मिलेंगे । मारो गोली ! सबसे अच्छा प्राणप्यारे ।

हाँ, प्रेमसे लबालब कोई लम्बा पत्र अब लिखना तो पेजोंमें आलपीन मत लगा देना । इस बार तुम्हारा पत्र पढ़कर छातीसे लगाया तो आलपीन चुभ गयी ।

सोचता हूँ तुम्हारे खत सब लौटा दूँ । उनके पारायणमें बड़ा समय लगता है । कम्बख्त किताबोंको कब पढ़ूँ जिन्हें पढ़कर पास होना है ।

गत दिसम्बरमें घरवालोंकी चोरीसे मैंने तुम्हारी तसवीर

खिंचायी थी। तुम्हारे २॥) में अपने ॥) मिलाकर पूरे तीन रुपये उस फोटोग्राफरको मैंने दिये थे। याद है न ? पर यह न जानती होगी कि उस लुटेरे फोटोग्राफरने इधर तीन महीनेमें तीन बार करके छः रुपये मेरे और ऐंठ लिये। जब उसे पान-पत्तेके लिये दो रुपयोंकी कमी होती है मुझे खत लिखता है कि भेज दीजिये, नहीं तो आपके बाबूजीसे कह दूँगा कि आपने अपनी बीबीकी तसवीर खिंचायी है। मैं धीरेसे दो रुपये उसके नाम रवाना कर देता हूँ। क्या करूँ, जानती हो, बाबूजी कैसे मटियाफूस विचारोंके आदमी हैं; कहेंगे कि लड़केने कुलकी नाक काट ली। जो बापने नहीं किया, दादाने नहीं किया, परदादाने नहीं किया—सो इसने कर डाला।

खैर, उन तसवीरोंमेंसे दो मेरे पास भेज दो। दो जो मैं अपने साथ लाया था खर्च हो गयीं। कैसे ? एक तो मैं अपने हाथमें लिये हुए एक दिन सो गया। सुबह उस फोटोकी ऐसी गत बन गयी थी जैसे बरसों ऐरावतके अरदबमें पड़ा रह गया हो। जान पड़ता था कि कई सहस्र भुर्रियोंको एक स्थानपर बटोरकर उनका फोटो ले लिया गया है।

दूसरी तसवीर यहीं बोर्डिंगमें मेरे एक साथीके हाथ लग गयी। उस नालायकने उसकी पुश्तपर एक कविता लिखी और लिखकर सारे बोर्डिंगको सुनाया। ज़रा तुम भी बानगी देखो—

दैवी गति, अनीति अजगैबी।

सखि ! तेरा पति अतिशय ऐबी ॥

हूर परी-सी तुम, वह हौआ।

तुम कलकंठी, है वह कौआ ॥

वह निमकौड़ी, तुम अंगूर ।

तुम दिवङ्गना, वह लंगूर ॥

हाय करै देखैं जो जोड़ी ।

कोसैं विधिकी बुद्धि निगोड़ी ॥

पूरा सुनकर क्या करोगी । इसी तरहकी बहुत-सी वाही-तबाही थी । मैंने उस लड़केको कई घूँसे लगाये—कुछ तो उनमें काफ़ी वज़नी थे—पर उससे होता क्या है । तबतक तो सौसे अधिक लड़कोंको पूरी कविता कण्ठस्थ हो चुकी थी । सबको लगानेके लिये इतने घूँसे कहाँ से लाता । सहस्रबाहुके लिये भी यह एक समस्या होती, मैं तो मैं ही हूँ ।

एक बात बहुत ज़रूरी लिखनेकी सोचा था । हाँ, याद पड़ गया । तुम अपनी माँग बिल्कुल बीचसे निकालती हो । मैं चाहता हूँ कि ज़रा बीचसे हटकर, एक बगलसे निकाला करो । यों तो तुम अपने बाल चाहे जैसे बाँधो हर हालतमें वाह-वाह है । सच पूछो तो तुम्हारे खुले बालोंकी भी एक निराली ही छटा होती है । पर माँग एक दिन ज़रा एक किनारेसे निकालो तो मैं देखूँ कैसा लगता है । तुम्हारी शोभाका यह मंदिर संस्करण देखते ही बनेगा । पर आँखें ठहरेंगी तब तो देखूँगा । लेकिन तुम्हें इससे क्या । तुम मेरा मन रख देना । भला न !

पर मैं अब भी यह माननेके लिये तैयार नहीं हूँ कि तुम्हारी चोटीमें फालसई फीता उन्नाबीसे ज्यादा अच्छा लगता है । नाहक तुमने उस दिन मुझसे बीस मिनटतक बहस किया । वह तो कहो कि मैंने तुम्हारे होठोंपर कसकर एक चुटकी काट ली, नहीं तो न जानें कितने बीस मिनट तुम्हारी बहस और चलती । तुम्हारे

पिताजी तो कोई इतने कट्टर आर्य-समाजी भी नहीं हैं, फिर तुम्हें ज़रा-ज़रा-सी बातपर इतना बहस करना किसने सिखाया ? खैर-यत है कि भगवानने आवाज़ ऐसी मीठी, ऐसी मुलायम दी है कि उन सारी बहसोंको भी मैं शर्वतकी तरह धुट-धुट पी जाता हूँ ।

खैर, अब मैं असली बातपर आता हूँ । कलका ज़िक्र है । मैं अपने कमरेमें बैठा पढ़-सा रहा था कि तुम्हारे बड़े भाई साहब आ धमके—याने पधारे । मैंने काफ़ी आवभगत की । मैं क्या जानता था कि मेरा गला रेतने आये हैं । इधर-उधरके गपोड़ेके बाद कहने लगे कि पचीस तारीखको मैं घर जाते समय लल्लीको भी तुम्हारे यहाँसे बिदा कराता जाऊँगा ।

यह सुनना था कि मुझे तो जैसे काठ मार गया । सारी आई-बाई पच गयी । २७ ता०से मेरी छुट्टी शुरू होगी, मैं तीरका छूटा-सा भागता हुआ घर पहुँचूँगा, और आप उसके दो दिन पहले ही पीहर चल देंगी । यह ख़ूब ! भाई साहबने कह दिया और मैंने मान लिया !! मैं काठका उल्लू हूँ न कि तुम्हें जानेकी अनुमति दे दूँगा । मैं घर आऊँगा भ्रुक मारनेके लिये, क्यों ? तुम्हारे भाई साहबकी अक़ चरने चल गयी है । मैंने उनका लिहाज़ किया, कुछ बोला नहीं ; पर अपना मुँह मैंने इस तरह और इतनी देरतक बिचकाया कि उनकी चरती हुई अक़ भी अपने ठिकाने लौट आयी । बात फेरकर वे चलते बने ।

अब तुमसे यह कहना है कि भाई साहब अगर इसपर भी न मानें और तुम्हें बिदा कराने वहाँ पहुँच ही जायँ तो तुम जाना मत । हीला करना, बहाना करना, सत्याग्रह करना, फौजदारी करना, पर जाना हरगिज़ नहीं । जावगी तो मैं जी-जानसे नाराज़

हो जाऊँगा ; कम-से-कम नाराज हो जानेकी कोशिश तो जरूर हो करूँगा ।

यह खत तो यों ही काफी लम्बा हो गया । मुझे अभी अपना विरह निवेदन करना था, अपने प्रेमका पचड़ा गाना था, तुम्हारे रूप और गुणकी प्रशंसामें सैकड़ों बातें लिखनी थीं । पर यह प्रसंग अगर छेड़ूँगा तो अपनी उस नयी मुसीबतकी हाल न लिख सकूँगा जो इस समय अकारण मेरे ऊपर आ पड़ी है ।

मेरे एक प्रोफेसर साहब पंजाबके रहनेवाले हैं । नौजवान आदमी हैं, मुझसे साल-छः महीने बड़े होंगे । गत वर्ष उन्होंने अपनी शादी की, प्रयागमें । इधर उनकी बीबी अपने मायके चली गयी । अब प्रश्न यह उठा कि उसे पत्र कैसे लिखा जाय । प्रोफेसर साहब पंजाबी होनेके नाते हिन्दी पढ़े नहीं थे और बीबी केवल हिन्दी जानती थी । ऐसी अवस्थामें पत्रद्वारा प्रेमका आदान-प्रदान कैसे हो । प्रोफेसर साहबने रो-धोकर हिन्दीके दो एक प्राइमर पढ़ डाले, पर प्राइमरोंमें बीबीको पत्र लिखना सिखाया नहीं जाता । अन्तमें वे मेरी शरण आये । मुझसे पूछने लगे कि अपनी स्त्रीको हिन्दीमें कैसे पत्र लिखा जाता है, आरम्भ और अन्तमें क्या लिखा जाता है । मैंने बता दिया कि आरम्भमें प्यारी या प्रिये लिखिये और अन्तमें त्वदीय या तुम्हारा लिखिये । पर उन्हें यह पसन्द न आया, वे कोई चुह-चुहाती चीज चाहते थे । तब मैंने बताया कि ऊपर लिखिये 'मेरे प्राणोंकी रानी' और नीचे लिखिये 'तुम्हारे प्रेमका प्यासा ।' यह उन्हें पसन्द आ गया । पर खत लिखते समय उन्होंने घपला कर दिया । उन्होंने ऊपर लिखा 'मेरे प्रेमोंकी रानी' और नीचे लिखा 'तुम्हारे प्राणका प्यासा ।'

बीबीको खत मिला तो वह 'प्राणका प्यासा' पढ़कर भड़की, और अपने जवाबमें उसने प्रोफेसर साहबको ऐसा लताड़ा कि वे भी मान गये। पर अब वे मुझसे नाराज़ हो गये हैं, कहते हैं कि तुम्हींने तो ऐसे लिखना बताया था, तुम्हारी ही वजहसे मुझे इतना सख्त-सुस्त सहना पड़ा। यही नहीं, धमकी दे रहे हैं कि तुमसे इम्तहानमें सम्झ लूँगा। बड़ी मुसीबत है। क्या करूँ ! होम करते हाथ जला।

एक तो यह सब चिन्ता, ऊपरसे तुम्हारी याद और भी जान मारती है। मैं जानता कि तुम्हारे बिना जीना दूभर हो जायगा तो शादी ही न करता। अभी और बीस रोज़ इसी बोर्डिंगके पिंजड़े-में फटफटाना है। तब कहीं तुम्हें देख पाऊँगा। वह कौन घड़ी होगी जब तुम्हें देखूँगा ! तुम्हारी ठुड्डीपर एक तिल है। आज रह-रहकर उसीका ध्यान आ रहा है।

तुम्हारा

.....

प्यारे

पहले तो अपनी आदतके अनुसार मैं आपको एक फिड़की सुनाऊँगी। पूरे नौ दिनके बाद आपने मुझे खत लिखा है। कैसी पराकाष्ठा है प्रेमकी ! थोड़े धन्यवाद दे डालूँ ? क्या सफ़ाई आप देंगे ? कार्याधिक्य या आलस्य या कोरी हृदयहीनता ? आपके लिये पढ़ना और पानी पीटना बराबर है। घंटेमें ५०० बार जिसका नाम आप रटते थे जब उसे आप इतनी जल्दी भूल गये तब आप कैसे उम्मीद करते हैं कि सालमें एक दो बारकी पढ़ी

किताबें आपको इस्तेहानमें याद रहेंगी। खैर इस बार तो मैं आपको क्षमा कर देती हूँ, पर अगर फिर ऐसा हुआ तो बस यही समझिये कि मैं आसमान सरपर उठा लूँगी।

और आपने यह कैसे जाना कि २५ ता०को भैया मुझे लिखाने आये तो मैं चली जाऊँगी। मैंने भाभीको साफ-साफ लिख दिया है कि २७ ता० को आप आ रहे हैं, इसलिये मैं अभी ठहरकर आऊँगी। जो इसे बेहयाई समझें समझा करें; गदहोंको बुद्धि बाँटना मेरा काम नहीं है। अपने पतिसे मिलनेको इच्छा रखना अगर पाप है तब तो फिर खी होना ही पाप है। ऐसे समय मैं क्यों चली जाऊँ जब आप दो महीने बाद घर आ रहे हैं। यह तो बड़ा अन्याय होगा आपके साथ; और खुद अपने साथ भी। लाज मेरा आभूषण है, मैं उसे अपना रोग नहीं बना सकती।

भाभीको मेरा खत जब मिलेगा और वे घरवालोंसे जब कहेंगी कि लत्लीको आना अभी मंजूर नहीं है उस समय सचमुच एक दृश्य उपस्थित हो जायगा। कुछ लोगोंको तो कलिकालकी माया प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने लगेगी; कहेंगे कि ससुराल जाते देर नहीं कि दुलहेका ऐसा चसका लग गया। पर आप ही इन्साफ करिये, कोई इन बातोंका कहाँतक खयाल करे। मैं सौकी सीधी एक जानती हूँ कि जो हमारे हितू हैं वे आपका-मेरा प्रेम देखकर प्रसन्न होंगे; और जो हमारे हितू नहीं हैं वे जहन्नुममें जायँ, उनकी मैं कहाँतक चलाऊँ।

अच्छा सुनिये, आपको एक ऐसी घटना सुनाऊँ जिसे सुनकर आप घंटों हँसें। आप बनवारीको जानते हैं न? अरे वही, लाला



पृष्ठ- ५३

"Love Letters" is
really a nice book!

'Karnik'

Confirmed.

Really a good book.

17-1-70. 'Laxmi Narayan'

मुग्ध होनेका अधिकार सब आँखवालोंको होगा। रूप अपना असर न छोड़े तो देखनेवालेकी आँखोंका क्या अपराध !

यहाँतक तो ठीक है पर उस नीचने यह क्यों समझा कि मेरे ऊपर ऐसी बातोंका, उसको कविताका, प्रभाव पड़ेगा। आखिर वह भी तो हिन्दू ही है। क्या हिन्दू ललनाओंका आदर्श उसने कहीं पढ़ा-सुना नहीं था ? मुझे क्रोध इस बातपर आ रहा था। उसे सफलताकी आशा करनेका साहस कैसे हुआ।

एक मन तो हुआ कि अभी चलकर यह कविता बाबूजीके हाथोंमें रख दूँ। आपके बाबूजी तो बस अपनी कुबड़ी उठाते और—फिर इसके बादका व्योरा तो उस दिनके अखबारोंमें पढ़नेको मिलता।

लेकिन मुझे उसके ऊपर कुछ दया भी आने लगी। स्त्रीका हृदय भी कैसे अनमेल आवेशोंका अखाड़ा है ; पहले हँसी—तब क्रोध—फिर दया। उसकी कुचेष्टामें मुझे पाप कम और मूर्खता ही अधिक दिखायी पड़ी। मूर्खता दयनीय है, दण्डनीय नहीं।

पतंग अब भी छतपर पड़ा था। बनवारी उसकी डोर पकड़े चुपचाप अपनी छतपर खड़ा था। वह मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा था।

संयोगसे मेरी फाउन्टेन मेरे पास ही थी। मैंने पतंगपर ही अपना उत्तर लिख दिया। उत्तर लिखकर मैंने पतंगको उड़ा दिया। बनवारी उसे खींच ले गया।

आपके पेटमें अब चूहे कूद रहे होंगे—यह जाननेके लिये कि मैंने उसे क्या उत्तर दिया। सुनिये, आपने पत्र सुना, अब

उत्तर भी सुन लीजिये । बहुत छोटा उत्तर था—

बाला, हूँ सरला सुन्दर हूँ
पर हूँ हट्टी - कट्टी ।
होश सँभाल—नहीं तो
तेरा सर औ मेरी चट्टी ॥

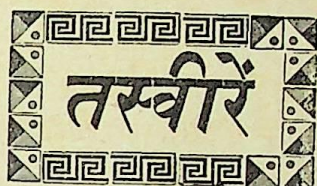
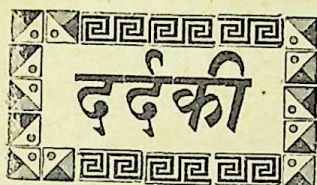
उत्तर पढ़ते ही बनवारी छतसे उतर गया । कल शामको वह छतपर न आया । आज भी नहीं आया । चलिये, साँप मरा, लाठी भी न टूटी । मेरा विश्वास है कि मेरे उत्तरसे उसके आत्म-सम्मान को अमरस्मतीय क्षति पहुँची है । अमरस्मतीय लिखना यदि गलत है तो मेरी बलासे ।

तो आप २७ ता० को जरूर आ जाँयगे न ? अगर न आये तो मैं ऐसा गाल फुलाऊँगी कि आप भी याद करेंगे । ऐसे समय-से चलिये कि शामतक यहाँ पहुँच जाइये । रात दो बजेकी गाड़ी-से पहुँचना कोई भलमनसी है !

हाँ, आपकी प्रार्थना है कि मैं अपनी माँग बगलसे निकाला करूँ । मैं इसपर विचार करूँगी । अभी कुछ वादा नहीं करती हूँ । ज्यादा गिड़गिड़ाइयेगा तो देखा जायगा ।

दासी

.....



[ले०—श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज']

शाहकुण्ड,

सोमवारके सबेरे ६ बजे

मेरी प्यारी बहिन !

कल शामको 'मधुसूदन-धामसे' लौट आई। लाख कहा, पर माँ ने माना नहीं—साथ घसीटती ही गईं। और यह बड़ा ही अच्छा हुआ। भगवान्‌का कोई भी काम ऐसा नहीं होता, जिसमें हमारी भलाईके भाव न छिपे हों। यह काम भी वैसा ही हुआ। मैं वहाँसे तुम्हारे लिए एक बहुत ही सुन्दर और कीमती चीज लेती आई हूँ। देखते ही खुशीके मारे सब कुछ भूल जाओगी, दीन-दुनिया किसीका भी ध्यान न रह जायगा। मगर वह इतनी सस्ती नहीं है कि तुम्हें घर बैठे ही मिल जाय। यहाँ-तक आनेका कष्ट उठाना पड़ेगा, गाँठके कुछ पैसे खर्च करने पड़ेंगे, मिठाइयाँ खिलानी होंगी, तब कहीं उसे पा सकोगी। जानती हो वह क्या है ? वह है एक आदमी ! कौन ? वही

तुम्हारे खोए हुए सर्वस्व, तुम्हारे रूठे हुए देवता, मेरे परम प्यारे जीजाजी !

बहिन ! अचरज मत करना—अविश्वास मत करना । इसे सपनेकी बातें न समझ बैठना । जो कुछ कह रही हूँ, उसे सचके सिवाय और कुछ मत समझना । हाँ, इसे सच मानकर अपने दिलको काबूमें रखना—उठते हुए तूफानोंको दबाए रखना । हसरत-भरी निगाहोंमें पागलपनका प्रलयकारी ज्वार मत उठने देना । अपनी दर्द-भरी दुनियाकी छातीपर दिन-रात किलोलें करनेवाली क्रयामतसे कह देना, वह थोड़ी देरके लिए रुक जाय । अधीर मत हो उठना बहिन ! तुम्हें मेरे सिरकी कसम । मैं खूब जानती हूँ, यह खबर पाकर तुम आपेमें न रह सकोगी—कोई रह भी नहीं सकता है । लगातार पाँच बरसोंसे तुम जिस आगमें जल रही हो, वह इस समय भीषण-रूपसे धधके बिना न रहेगी । यह आकस्मिक सुख घी बनकर तुम्हारी विपत्-ज्वालाओंको और भी जगा देगा । मगर चाहे जैसे हो, तुम्हें इस धक्केको सँभालना होगा !

मेरी ये बातें सुनकर तुम हलचलमें पड़ गई होगी । तुम्हारी समझमें कुछ आ नहीं रहा होगा कि मैं क्या कह रही हूँ । साथ ही तुम्हारा कौतूहल भी बढ़ रहा होगा कि मैंने असम्भवको सम्भव कैसे कर दिखाया—जो कभी हो ही नहीं सकता था, वह हो कैसे गया ! मगर सच तो यह है कि अपनी चीज खो जानेपर भी कभी-न-कभी मिलती जरूर है ; बशर्ते कि वह सचमुच अपनी हो—उसको छोड़ दुनियामें मेरी और कोई भी चीज अपनी हो ही नहीं सकती । यही बात तुम्हारे लिए भी कही जा सकती है बहिन ! नहीं तो किसे उम्मीद थी कि जीजाजी फिर

हमारे घर आ सकेंगे ? कौन जानता था कि मैं हो वहाँसे जीती लौटकर आज तुम्हें यह खुश-खबरी सुना सकूँगी ? गत पाँच बरसोंसे जो आदमी माया-ममता छोड़कर, हृदयहीन पशुकी तरह अपना गन्दा जीवन बिता रहा था, वही पाँच मिनटके भीतर देवता बन जायगा, इसकी आशा किसे थी ? मगर अब मैं समझ गई कि कोई भी आदमी जान-बूझकर बुरा नहीं हो जाता, किसीको पापी बननेका हौसला नहीं रहता । दुनिया—यह स्वार्थसे भरी हुई मायाविनी दुनिया ही—उसे हर तरहसे जलाकर बुरा बना देती है । किसीकी थोड़ी-सी कमजोरियाँ देखकर हम उससे घृणा करने लगते हैं, उसकी उपेक्षा करने लगते हैं । उसे अपनेमें मिलाकर सुधारना नहीं जानते—दूर हटाकर उसे और भी बिगाड़ना ही जानते हैं । जीजाजीके साथ भी लोगोंने यही किया । परिणाम यह हुआ कि इन्हें मनुष्यतासे डाह हो गई—ये परले सिरके अधम बन गए । मगर आज देखो तो आकर ये कैसे हो गए हैं ? वही सरलता, वही सज्जनता, वही हृदय और वे ही लुभावने भाव । सच कहती हूँ, देखते ही रीझ जाओगी ।

अब यह सुनो कि तुम्हारी यह खोई हुई निधि मेरे हाथ कैसे लगी ! कहानी कड़वी भी है और मीठी भी, मगर अब मैं उसका कड़ुवापन भूल गई हूँ । तुम भी इसपर बिलकुल ध्यान मत देना ।

हाँ, यह तो तुम जानती ही हो कि इस अवसरपर मकर-संक्रान्तिके दिन—‘मधुसूदन’ बाबाके दरबारमें, उस छोटी-सी पहाड़ीपर कैसी भयङ्कर भीड़ होती है । तिल धरनेकी जगह नहीं मिलती, पाँव रखनेकी तो बात ही क्या ! इस बार भी वही भीड़

थी। न-जानें दिन-रातमें कितनी बार स्पेशल ट्रेनें जाती-आती रहीं, मगर सब खचाखच भरी हुई।

लौटते समयकी बात लिख रही हूँ। जब मैं भागलपुर जङ्कशनपर आई, तो देखा कि भीड़के भारे लोगोंका नाकोंदम है। मेरी माँ बहुत थक गई थीं—विश्राम आवश्यक था। मगर चिन्ता यह थी कि यदि इसी गाड़ीसे घर न चल दूँगी, तो कल किसी तरह भी घरपर ब्राह्मण-भोजन नहीं हो सकेंगा। मैं तो तुम्हारी ही तरह इन बातोंको विशेष महत्व नहीं देती। मगर माँ कब माननेवाली थीं? डट गई कि रातहीवाली गाड़ीसे चलना होगा। खैर, मैं माँका हाथ पकड़कर गाड़ी बदलनेके लिए दो नम्बरके प्लेटफॉर्मकी ओर चली। इसी समय गाड़ी आ पहुँची। भीड़में रेल-पेल मच गई—धक्के-मुक्केसे जान आफतमें फँस गई। उसी समय मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसीने पैर लगाकर पीछेसे मेरे दोनो पैर खींच लिए। मैं गिर पड़ी। माँका हाथ छूट गया। उठते-उठते मुझे दो-तीन मिनट लग गए। उठकर देखा तो माँका कहीं पता नहीं! मैं घबराकर इधर-उधर दौड़ने लगी। मुझे इस तरह दौड़ते देख एक टिकट-बाबू मेरे पास आकर मीठे स्वरमें बोले—कोई खो गया है?

मुझे सहारा मिल गया। घबराए हुए स्वरमें मैंने कहा—हाँ।

“औरत है या मर्द?”

“मेरी माँ मुझसे छूट गई।”

“सफेद कपड़े पहने हुए हैं?”

मेरा भरोसा और भी बढ़ गया। मैंने कहा—हाँ, वह कहाँ हैं?

“उसे मैं अभी गाड़ीमें बैठा आया हूँ—वह भी बेटी-बेटी कर रही थी। चलो, जल्दी करो, गाड़ीने सीटी दे दी।”

मैं बिना कुछ कहे-सुने उसके साथ चल पड़ी। गाड़ीने सीटी दे दी। उसने कहा—चढ़ जाओ इसी डिब्बेमें, वह उधर बैठी है। अगले स्टेशनमें उससे भेंट हो जायगी।

मेरे होश-हवास सब हवा हो गए थे। काँपती हुई मैं उसीमें जा बैठी। गाड़ी खुल गई—मगर मुझे यह पता न चल सका कि वह किस ओरको जा रही है—दिशाका भ्रम हो गया !

अगले स्टेशनपर गाड़ी रुकी, तो देखा कि दरवाजेपर वही आदमी खड़ा है। इस बार उसने डपटकर पूछा—तुम्हें जाना कहाँ है ?

मैं सहम उठी ! धीरेसे जवाब दिया—अकबरनगर !

“तो वहीं क्यों नहीं बोली ? यह गाड़ी तो कलकत्तेकी ओर जा रही है।”

मुझे काटो तो खून नहीं। मैं घबराकर उतरने लगी। इस बार वह जरा मुलायम होकर बोला—अच्छा, कोई हर्ज नहीं ; चली चलो इसी तरह, साहबगञ्जमें यह गाड़ी मेल खायगी। वहीं तुम्हें दूसरी गाड़ीपर बैठा दूँगा। तुम्हारे टिकटपर लिख दूँगा। दाम नहीं देने होंगे।

मैंने कहा—और मेरी माँ ?

“अब गाड़ी खुल रही है, जाकर बैठो—वहीं माँसे भी भेंट हो जायगी।”

मेरा कोई वश न चला। गाड़ी खुल गई।

भागलपुरसे आगे पूरबकी ओर तो कभी मैं गई थी नहीं, क्या

जानती कि कौन स्टेशन कहाँ है ? कई स्टेशनोंके बाद एक जगह गाड़ी रुकी, मैंने देखा, वह स्टेशन बहुत छोटा था । वहाँ न तो कोई चढ़ा ही और न उतरा ही । गाड़ी रुकते ही वही आदमी फिर आ पहुँचा और बोला—उतर आओ । उस गाड़ीके आनेमें आज आध घण्टेकी देर है । यहाँ गाड़ी दो ही मिनट ठहरती है । उतरो जल्दी ।

मैं घबड़ाकर उतर पड़ी । मेरे उतरते ही गाड़ी खुल गई । मैंने घबराकर पूछा—मेरी माँ ?

“ऐं ! वह तो गाड़ीपर ही रह गई ।” वह अकचकाकर बोला—“अच्छा, कोई हर्ज नहीं है, मैं अभी तार दे देता हूँ । अगले स्टेशनपर वह उतारकर उसी गाड़ीपर बैठा दी जायगी, जिसपर तुम्हें चढ़ना है । घबरानेकी कोई बात नहीं ।”

यह कहकर वह मुझे अकेली ही छोड़, एक कमरेमें घुस गया । मैंने चारो ओर नजर डालकर देखा, वह जगह बड़ी भयावनी मालूम पड़ती थी । यह भी देख लिया कि वह साहबगञ्ज स्टेशन नहीं था । स्टेशनका नाम ‘ओलाचक’ या कुछ ऐसा ही था, याद नहीं । मैं भयके मारे काँप उठी ! मेरी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया । धीरे-धीरे मेरी समझमें सारी बातें आने लगीं । मगर करती क्या ? उसी जगह थरथराकर बैठ गई ।

इस बार वह आकर बोला—चलो, जनाना ‘वेटिङ्गरूम’में तबतक आराम करो । तुम्हारी माँको तार देकर उतरवा लिया है, वह अभी आ जायगी ।

मैं डरके मारे न-जानें क्या हो गई थी ! उठी, और उसके बताए हुए कमरेमें घुस गई । मेरे घुसते ही कमरा बाहरसे बन्द

हो गया। साथ ही क्षणभरके लिए मेरी छातीकी धड़कन भी बन्द हो गयी। मैं अपनेको सँभाल न सकी। वहीं एक आराम-कुरसी पड़ी थी, उसीपर गिर पड़ी।

थोड़ी ही देर बाद बाहरसे कुछ गुनगुनानेकी आवाज आई। मैं उठ बैठी और दरवाजेके पास आकर ध्यानसे कान लगाकर सुनने लगी—

“पहले मैं जाऊँगा भाई ! चखूँ तो कैसा माल है !

“वाह जनाव ! इतनी दूरसे ले आया हूँ मैं; और भोग लगाइएगा आप ?”

‘आप भी तो कभी-कभी ऐसा ही करते हैं, आज मैं ही सही।’

‘अच्छी बात है—जाइए।’

मैं सब समझ गई। इन पिशाचोंकी बातें सुनते ही मेरा सारा भय भाग गया। मेरी नसोंमें क्षत्राणियोंका खून खौल उठा। समूचे शरीरमें आग लग गई। तुम तो जानती हो बहिन ! तुम्हारे दुलारे देवर—नन्नू बाबूकी वह छोटी-सी कटारी मुझे कितनी प्यारी है ! जबसे उन्होंने मुझे उपहार-स्वरूप वह दिया है, तभीसे एक क्षणके लिए भी मैं उसे नहीं छोड़ती, हमेशा कपड़ेके नीचे कमरमें बाँधे रहती हूँ। इस समय भी वह मेरे साथ है। उस समय भी वह मेरे साथ ही थी। मैंने चटपट अपने वस्त्रोंसे सारे शरीरको खूब मजबूतीसे कस लिया—स्त्री-वेशमें नहीं रह गई, केवल केश ही भर लटक रहे थे। मेरे अङ्ग-अङ्ग मजबूतीसे कसे हुए थे। मैंने कटारी हाथमें ली और काली-मैयाकी तरह लाल-लाल आँखें निकाले, अविचल भावसे द्वारसे हटकर कुछ दूरीपर खड़ी हो गई। कमरेका द्वार खुल गया !

आनेवाले उस सलाने नौजवानने जो मेरा वह रूप देखा तो उसके रसीले अधरोंकी सारी मुस्कराहट न-जाने कहाँ भाग गई ! उसके चेहरेपर सफेदी छा गई—उसपर हवाइयाँ उड़ने लगीं । न उससे आगे बढ़ा जाय न पीछे हटा जाय ! साहस करके उसने किवाड़ बन्द कर दिया और दो कदम आगे बढ़ आया । मैं वेगसे कटारी लेकर उसकी ओर झपट पड़ी ! अरे यह क्या ? वह तो विद्युत्की भाँति आकर मेरे पैरोंपर गिर पड़ा ! मेरे हाथसे कटारी गिर पड़ी—उसके शरीरपर नहीं, धरतीपर । मैंने हड़बड़ाकर उससे पैर छुड़ा लिए और लपककर फिर अपनी कटारी उठा ली । इस बार देखा, वह कातर-दृष्टिसे मेरी ओर देख रहा है—उसकी आँखोंसे आँसूकी धारा उमड़ रही है । वह बोला—आओ लक्खो ! मेरी छातीमें वह कटारी घुसेड़ दो—मेरे पापोंका अन्त कर दो ।

मालूम हुआ, जैसे मैं स्वप्न देख रही हूँ । सिरसे पैरतक मैं काँप उठी । मेरे मुँहसे निकल पड़ा—जीजाजी !

“हाँ, लक्खो रानी ! कभी मैं तुम्हारा जीजा ही था, आज नरकका कीड़ा हूँ—मेरी ओर देखो भी मत । सीधेसे आकर छातीमें कटारी घुसेड़ दो । तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ ।”—कहकर वह मेरे पैरोंपर लोटने लगा ।

अब मैं अपनेको सँभाल न सकी । साफ-साफ पहचान गई, वह मेरे जीजाजी ही थे । तूफानकी तरह चञ्चल होकर मैं रो उठी । उनके गलेसे चिपक गई और खूब रो लेनेके बाद बोली—बस, अब चलिए यहाँसे ! आपको घर चलना होगा ।

वे अपराधीकी तरह बोले—कौन-सा मुँह लेकर चल्छूँ ?

मैं उनके आँसू पोंछती हुई बोली—आपके मुँहकी ओर

उँगली उठानेवाली आँखें बैठ जायँगी । आप चलिएगा नहीं तो मैं अकेली जाऊँगी कैसे ?

इसी समय वह पिशाच भी, जो मुझे वहाँतक बहकाकर ले गया था, कमरेमें घुस आया और बोला—भाई ! तुम तो बड़ी देर कर रहे हो, गाड़ीका समय हो गया ।

“चुप रहो, बदमाश कहींके !” जीजाजी शेरकी तरह गरजकर बोले—होशमें आकर बातें किया करो । यह मेरी बहिन है, एक कदम भी आगे बढ़े तो सिर उड़ा दूँगा ।

वह बेचारा सिकुड़कर हम दोनोंकी ओर ताकता ही रह गया और हमलोग वहाँसे बाहर निकल आए ।

बाहर निकलते ही मैंने कहा—माँ भी साथ थीं !

“उनका साथ कहाँ छूटा ?” जीजा जी घबरा उठे ।

“भागलपुरमें”—मैंने भराए हुए शब्दोंमें उत्तर दिया—

“मगर वह तो कहता था कि वह भी मेरे साथ एक ही गाड़ीमें आ रही थीं—साहबगञ्जमें उतरी होंगी ।”

“सब बातें झूठी हैं, शायद वे वहीं छूट गई हों”—कहकर उन्होंने फोनसे साहबगञ्जके स्टेशन-मास्टरसे पूछा, “कोई औरत आपकी निगरानीमें है, जो इस गाड़ीसे भागलपुर भेजी जायगी ?”

उत्तर मिला—नहीं ।

जीजाजी अस्थिर हो उठे । बोले—उसने तुमको सरासर धोखा दिया । माँ वहीं छूट गईं । इसी गाड़ीसे चलते हैं, वहाँ चलकर पता लग जायगा ।

इसके बाद उन्होंने कुछ लिखा और उसी पिशाचको बुलाकर लाल-लाल आँखें दिखाते हुए उससे कहा—ले लो सब चार्ज, मैं

अभी इस्तीफा देता हूँ। इस नरकमें अब नहीं रहूँगा।

वह चुपचाप काँप रहा था। कुछ बोला नहीं। बैठकर कागज-पत्तर सँभालने लगा।

गाड़ी आई और हम दोनों रवाना हो गए। भागलपुर पहुँचते-पहुँचते सूरज निकल आया। पहुँचते ही मैंने चारों ओर आँखें दौड़ानी शुरू कीं। देखा, कुछ लोग प्लेटफॉर्म पर किसीको घेरे खड़े थे। मैं लपककर गाड़ीसे उतर पड़ी। जीजा भी उतर पड़े। हमलोगों-ने भीड़को चीरकर देखा, उसके बीच माँ बैठी-बैठी रो रही थीं। उनके सारे वस्त्र आँसूसे भीग गये थे। जीजाजी उनके पैरोंसे लिपट गए। मैं उनके गर्दनसे चिपक गई। तीनों जनों खूब रोए, खूब रोए—इतना रोए कि आँसुओंकी बाढ़में हमारा सारा दुख, सारा दर्द बह गया।

इसके बाद हमलोग गङ्गा नहाने चले गए। वहीं माँने ब्राह्मण-भोजन कराया। शामकी गाड़ीसे हमलोग घर पहुँच गए।

माँका विचार है कि इस खुशीमें खूब धूमधामसे सत्यनारायण प्रभुकी पूजा हो। पूजाका दिन तुम्हारे आ जानेपर निश्चित होगा। जीजाजीकी तबीयत आज जरा ठीक नहीं है—कुछ-कुछ ज्वरका अंश मालूम होता है। मगर तुम इसकी कोई चिन्ता मत करना, केवल हरारतका फसाद है। तुम पत्र पाते ही यहाँके लिए चल दो। साथमें अपने दुलरूवा देवरजीको लाना, भूल मत जाना। उन्हें मेरी याद दिला देना और मेरी ओरसे मिन्नतें करना कि दो घड़ी-के लिए यहाँ आकर अपने भैयाको देख जायँ। तुम्हारी प्रतीक्षामें—
तुम्हारी छोटी बहिन,

—लक्खो

[२]

वासुदेवपुर (मुँगेर)
गुरुवारकी आधी रात

मेरी लक्खो रानी !

भौजीके नाम तुम्हारा जो पत्र आज शामको आया, वही अगर कल आया होता...! मैं इस समय खाटपर पड़ा हुआ हूँ—आज सबेरे ही ज्वर हो आया है। इस समय जरा होशमें हूँ। बड़ी मुश्किलसे तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। मगर लिखूँ क्या ? तुम्हारे पत्रका जवाब क्या दूँ ? इस पत्रका तो एक ही जवाब था, और वह यही कि मैं भौजीको साथ लेकर जल्दी-से-जल्दी तुम्हारे पास आ जाता। मगर किस्मतकी लड़ाईसे फुरसत मिले तब तो ! यहाँ तो जबसे होश सँभाला, बराबर उसीके खेल देखता आ रहा हूँ। देखते-देखते आँखें चलट गईं, मगर खेलका रोज एक-न-एक नया रूप बदलता ही रहता है। क्या करूँ ? बद-नसीबीके हर एक पहलूमें मेरी तबाहीकी ऐसी-ऐसी भयङ्कर तस्वीरें खींची हुई हैं कि उन्हें यदि एक बार भी यह अन्धी दुनिया देख ले, तो उसे मेरे ऊपर रहम करनेका मौका मिल जाय ! लेकिन यह देखे ही क्यों ? इसे कौन-सी गरज पड़ी है ? सच कहता हूँ लक्खो ! इस बीस ही बरसकी अवस्थामें मुझे अपने जीवनसे अरुचि हो गई—मेरा जीवन, जीवन नहीं रह गया, यह अब कुछ ऐसा पदार्थ हो गया है, जो मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाता ! पर कुछ कर नहीं सकता। पिछले जन्ममें मुझसे कोई बड़ी भारी चूक हो गई होगी, उसीका यह दण्ड भोग रहा हूँ !

इस समय मेरे ऊपर क्या बीत रही है, तुम्हें, कैसे बताऊँ ?

अपने दर्दका सन्देशा तुम्हारे पासतक पहुँचाया चाहता हूँ, मगर कोई उपाय नजर नहीं आता। सुनता था, कागजपर भी कलेजा निकालकर रख दिया जाता है। मुझे तो यह बिलकुल भूठ-सा जँचता है। कोशिश करते-करते तबाह हो गया, फिर भी इस कागजके टुकड़ेपर कलेजा निकालकर रखनेकी बात तो क्या, कलेजे-की कोई तस्वीर भी नहीं खींच सका !

मेरी ये बातें सुनकर न-जानें तुम्हारा मन कैसा हो रहा होगा ! तुम समझती होगी, इन्हें अपना ही रोना रोनेसे फुरसत नहीं मिलती। यह भी सच है। सचमुच इस जीवनमें मेरा और कोई काम ही नहीं रह गया है। आँसुओंकी बाढ़में अपनी सूनी दुनिया-को डुबोकर एक बार क्यामतका वह नजारा देख लेना चाहता हूँ, जिसके बाद कुछ और देखनेका अरमान न रह जाय। मगर हाथ री मेरी किस्मत ! सर्वनाशका लीला-मन्दिर भी तो मेरे लिए बन्द ही रहता है ! मैं लाख प्रयत्न करनेपर भी उसके किवाड़ नहीं खोल पाता। हाथ काँप उठते हैं, पैर डगमगा जाते हैं, आँखें पथरा जाती हैं, और मैं अचेत होकर अपनी निराशाके अनन्त आँगनमें गिर पड़ता हूँ ! यही मेरा रोजका काम है।

न-जानें क्या लिखता जा रहा हूँ ! यह निर्बल हृदयके साथ सबल भावनाओंका अत्याचार है। मेरा इसमें कोई कसूर नहीं। बेहोशीकी पागल लहरोंमें बहता जा रहा हूँ। कह नहीं सकता, कहाँ जाकर किनारे लगूँगा !

अच्छा, अब तुम अपना कलेजा थाम लो। देखना, भावनाओंकी वह कोमल सृष्टि—बात-बातपर मचल जानेवाला तुम्हारा वह अबोध हृदय—इस आकस्मिक आघातसे फूट न पड़े। उसपर

तुम्हारा कोई अधिकार नहीं। वह मेरी चीज है, उसे लुटा न देना। बचाना, बचाना मेरी रानी ! उसे जिस तरह हो, बचाए रखना। जानता हूँ, यह चोट ऐसी-वैसी नहीं—बड़ी ही मार्मिक और कठोर है। मगर तुम्हें अपना कलेजा पत्थर बनाना पड़ेगा ; उसे समझाओ-बुझाओ, मनाओ और ऐसा उपाय करो, जिससे वह फटने न पाए।

जानती हो, इसके बाद तुम्हें क्या सुनानेवाला हूँ ? यही कि तुम्हारी प्यारी बहिन—मेरी दुलारी भौजी—भैयाकी अभागिनी दासी, अब इस घरमें—प्यार, आदर और सुखसे विहीन इस पाप-मन्दिरमें—नहीं हैं। मेरी सौतेली माँ के द्वारा अपमानित, लाञ्छित और तिरस्कृत होकर वह बेचारी कल रात हो न-जानें कहाँ भाग गई ! तुम्हारे पास तो वह गई नहीं होंगी, इसे मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ। वह जीवित भी हैं या नहीं कुछ कहा नहीं जा सकता। इस जीवनमें फिर उनका प्यार पा सकूँगा या नहीं, इसका मुझे कोई भरोसा नहीं रह गया। आह ! मेरे ही कारण उस सतीको आज यह विपत भी गले लगानी पड़ी ! विमाताके राजमें रहकर भी मुझे अपनी माँका अभाव नहीं खटकता था, सिर्फ इसीलिए कि भौजी मुझे बेटेसे भी बढ़कर मानती थीं ! कौन जानता था कि उनका वही प्यार साँप बनकर हमदोनों-को एक ही साथ डँस लेगा ! किसे मालूम था कि उसी सुखकै परदेमें छिपकर हमारी किस्मत हमारे संहारका आयोजन कर रही है।

जबसे भैया इस घरको छोड़कर भाग गए, तभीसे भौजीके और मेरे भाग्य भी नष्ट हो गए। वह बेचारी तपस्विनीकी तरह

अपने सुहागकी सूनी घड़ियाँ बिताने लगीं, और मैं उसी तपस्या-की ज्योतिमें बैठकर उसका मीठा-मीठा बरदान पीने लगा । लौंडी-की तरह दिन-रात काममें जुती रहकर भी, जब वह अम्माजीको खुश नहीं रख सकती थीं, तब मेरे-जैसे निकम्मेकी क्या बात ? मुझे तो शायद डरके मारे—मेरी भुजाओंके बलका अनुमान करके—वे कुछ ऐसी-वैसी बातें नहीं बोलतीं, मगर भौजीका तो नाकों दम था । यह सब कुछ तो होता ही रहता था, इसकी न मुझे ही कुछ परवाह थी, न भौजीहीको । दोनों चुपचाप अपना-अपना काम किए जाते थे । मगर कल रातमें अम्माजीने बुरी तरह बदला लिया—ऐसा बदला कोई अपने शत्रुसे भी न लेगा !

सुनोगी क्या हुआ ? आह ! स्मृति-मात्रसे हृदयमें आग जल उठी—उसकी जीवित ज्वालाएँ अपने पञ्जोंको विकराल रूपसे बढ़ाए आ रही हैं ! ग्लानि, धिक्कार और क्रोधकी मिली हुई इन दारुण चोटोंसे इतना निर्बल हो रहा हूँ कि तड़पनेकी हविस रखकर भी एक बार तड़प नहीं सकता ! क्या बताऊँ लम्बो, कहते नहीं बनता ! मगर चाहे जिस तरह हो, कहना ही पड़ेगा । दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

बात यों हुई कि कल शामहीसे मेरे सिरमें बड़ी तेज पीड़ा शुरू हो गई—मालूम होता था, सिर फट जायगा । उस समय मुझे तुम्हारी याद हो आई । जानती हो क्यों ? तुम शायद भूल गई हो ; मगर मैं भूलना भी चाहूँ तो कभी नहीं भूल सकता । आजसे दो बरस पहलेकी बात है । मैं तुम्हारे घर गया हुआ था । इसी तरह मेरे सिरमें पीड़ा उठ आई । उस समय तुमने घण्टों बैठकर मेरे सिरमें तेल लगाया था । मैं कहता—जाने दो अब ।

तुम कहतीं—अभी कैसे जाने दूँ ? पीड़ा दूर हुए बिना नहीं छोड़ूँगी ।

लाख बार कहा, मगर तुम बराबर इसी तरहके जवाबोंसे मुँह बन्द करती गईं । आखिर न-जानें मैं कब सो गया । वह दिन क्या कभी भूलनेका है ?

ठीक उसी तरह भौजी भी मेरे माथेमें तेलकी मालिश कर रही थीं । लालटेनका प्रकाश बहुत तेज था । मैंने कहा—उसे खूब कम कर दो ।

वही हुआ—प्रकाश बहुत धीमा हो गया । वे उसी तरह धीरे-धीरे मेरे सिरको सहला रही थीं । मैं आँखें बन्द किए चुपचाप पड़ा-पड़ा ही मन-ही-मन उस प्यारकी—उस सेवाकी पूजा कर रहा था । कमरेमें नीरवता छाई हुई थी । इसी समय उनकी छातीसे लगकर एक कर्कश आवाज टकराई 'न-जाने' कलमुँही कहाँ जाकर बैठी है ! सारा दूध उबलकर चूल्हेमें जा गिरा !'

यह मेरी अम्माजीकी आवाज थी । भौजी कुछ बोलीं नहीं । मिनटभर भी नहीं बीता होगा कि वह चुड़ैल मेरे सिरपर खड़ी होकर चिल्ला उठी—'हाय रे बाप ! मैं नहीं जानती थी कि अँधेरे-में लेटकर यहाँ यह करम किया जा रहा है ! आओ, देखो रे लोगो ! आँखें खोलकर देख जाओ ! पीछे कहोगे कि मैं झूठ-झूठ इन दोनोंकी बदनामी करती हूँ !' यह कहकर वह छाती पीट-पीटकर, कपार धुन-धुनकर चिल्लाने लगी । बहुतसे लोग वहाँ आ जुटे । भौजी अपराधिनीकी तरह चुपचाप एक कोनेमें खड़ी होकर रोने लगीं । मैं पीड़ाके मारे उसी तरह आँखें बन्द किए पड़ा रहा—

मुझमें कुछ बोलनेकी शक्ति नहीं रह गई थी। धीरे-धीरे सभी लोग चले गए। भौजी फिर आकर मेरे पास बैठ गईं और उसी तरह मेरे सिरपर हाथ फेरने लगीं। न-जाने मैं कब सो गया। सबेरे ८ बजे नींद खुली तो देखा, भौजी नहीं थीं। चारों ओर हो-हल्ला मचा हुआ था। मुझे ज्वर चढ़ आया। मैं मुँह ढाँपकर जोर-जोरसे रोने लगा; मगर मेरे आँसू पोंछनेवाला कोई नहीं था! अपनी माँके मरनेपर भी मैं इस तरह नहीं रोया। कलङ्ककी झूठी बातोंसे विद्ध होकर भौजी न-जाने कहाँ चली गईं। अगर वे मर न गई होंगी तो मैं उन्हें पातालसे भी खोज लाऊँगा। आज ही भोरको, चाहे ज्वर उतरे या नहीं, मैं यहाँसे चल दूँगा। योगी बनकर सारा देश छान डालूँगा, और यदि वे जीती होंगी तो चाहे जैसे हो, उन्हें लाकर तुम्हारे सामने—भैयाके चरणोंपर लिटा दूँगा। अगर मैं ही मर गया, तब तो लाचारी है। आह! इस समय फिर बड़े जोरसे सिरमें दर्द होने लगा। प्यासके मारे बेचैन हूँ, पर कोई एक गिलास पानी देनेवाला नहीं! ऐसे घरमें रहनेसे क्या लाभ? अच्छा, बचूँगा तो फिर कभी! इस समय इतना ही। अपनी माँ और मेरे भैयासे प्रणाम कहना। मुझे भूलना नहीं।

तुम्हारा ही,

—नन्नु

[३]

काशी-अनाथ-नारी-सदन
रविवारका रोता हुआ प्रातःकाल

मेरे नन्नू !

देखती हूँ, अभी बहुत दिनोंतक दुख भोगना बाकी है। जिसे मौतके लिए भी हाथ पसारकर भीख माँगनी पड़ती है और फिर भी नहीं मिलती, वह और कौनसे सुखकी आशा करे ? मैं अभागिनी घरसे तुम्हें उस दर्द-भरी सेजपर बेहोश छोड़कर, इसलिए निकल पड़ी कि सीधे गंगा-सैयाके पेटमें समा जाऊँगी और अपने सूने जीवनकी इन सारी यातनाओंका अन्त कर दूँगी। यही सोचकर उस काली रातके परदेमें, अपने कालिमा-भरे मुँहको छिपाए मैं गङ्गाके तीरपर पहुँच गई। मगर उस समय वहाँ डूब मरनेकी सुविधा न पाकर मैं घूमती हुई स्टेशनपर पहुँच गई। जीमें आया, अगर मरना ही है तो काशी चलकर क्यों न मरूँ ? सुना था, काशीमें मरनेसे सीधे बैकुण्ठ मिलता है। नरकमें रहते-रहते ऊब उठी थी, इसलिए मरते समय भी स्वर्ग और पुण्यका प्रलोभन न छूट सका। मगर प्रलोभन चाहे जिस वस्तुका भी हो, बुरा ही होता है ; इसे मैं जानती थी, लेकिन उस समय भूल गई। चुपकेसे गाड़ीमें बैठ गई। खिड़कीसे ठण्ढी-ठण्ढी हवा आ रही थी, मेरी आँखें बन्द हो गईं। जब खुलीं तो देखा, मुगलसराय पहुँच गई हूँ। रातभर मैं गाड़ीपर अचेत पड़ी रही। हड़बड़ाकर उतरी तो सामने ही एक आदमी आ पड़ा। वह था तो असलमें राक्षस, मगर उसकी खाल आदमीहीकी थी।

वह बड़े आदरसे बोला—आपको काशी चलना है माताजी ?

उसने कहते समय कुछ ऐसी अदा इखितयार की कि मैं उस समय किसी तरह भी उसकी आदमियतपर शक नहीं कर सकी। सीधे-सादे भावसे बोल उठी—हाँ, चलूँगी तो वहीं, बड़ी दया हो, अगर वहाँकी गाड़ी बतला दीजिए।

वह और भी नम्रतासे बोला—चलिए न, मैं भी तो वहीं चलूँगा। मैं बाबा विश्वनाथजीका पण्डा हूँ।

उस समयतक तीर्थ-पण्डोंपर मेरी पूरी निष्ठा थी। मैं उन्हें धर्मके ठेकेदार समझती थी। उसकी जो वह नम्रता देखो, तो श्रद्धा और भी बढ़ गई। उसे मन-ही-मन धन्यवाद देकर उसके साथ चल पड़ी। गाड़ोमें उसका व्यवहार और भी सुन्दर हो गया। मगर काशी-स्टेशनपर ज्यों ही उतरी, त्यों ही एकाएक तीन-चार लठुधर उसके साथ मिल गए। वे लोग बनारसी बोलीमें कुछ ऐसी-ऐसी बातें करने लगे, जिससे मैं सहम उठी ! देखा, वह भला आदमी भी उसी तरहकी बातें करते हुए बराबर मेरी ओर नजर दौड़ा-दौड़ाकर गन्दे इशारे करने लगा।

मेरी तो नस-नसमें आग भरी हुई थी—मैं बिना पल-भर विलम्ब किए गङ्गाकी ओर दौड़ पड़ी। जबतक वे लोग दौड़े, मैं गंगाके गर्भमें समा चुकी थी। अपने जानते अपनी सारी जलन मिटा चुकी थी !

मगर यह क्या ? जब आँखें खुलीं तो देखा, मैं एक ऐसे कमरेमें बन्द हूँ, जिसमें न किसी दरवाजेका पता चलता है, न कोई खिड़की नजर आती है। न वहाँसे बाहरके कोई शब्द ही सुनाई पड़ते हैं ! कमरेमें एक लालटेन जल रही थी। उसीके

प्रकाशमें देखा, समूचा कमरा खूब सुन्दरतासे सजाया हुआ है। मैं एक गुलगुले गलीचेपर लेटी हुई थी। ये सारी बातें जो मैंने देखीं, तो प्राण काँप उठे—वे ही प्राण, जिनका मुझे कोई मोह नहीं रह गया था। मैं माथा ठोंककर रह गई—मेरी आँखोंसे दुर्बल आँसुओंकी धारा उमड़ चली !

इसी समय धीरे-धीरे एक ओरका दरवाजा खुला और तुरंत बन्द हो गया। मैंने देखा, मेरे आगे वही भला आदमी खड़ा है।

इस समय मैंने और कोई भाव नहीं दिखाए। बहुत ही स्वाभाविकताके साथ कहा—आप ही विश्वनाथजीके खास पण्डा हैं ?

“नहीं, मैं खास पण्डा तो नहीं—खास पण्डा इस तरह कहीं जाते-आते थोड़े ही हैं—हाँ, मुझे भी उनके सेवकोंमें ही समझो। किसी तरह रुपए मिल ही जाते हैं !”

“आपने तो कहा था कि मैं विश्वनाथजीका पण्डा हूँ !”

“हाँ, सो तो हूँ ही ; वहाँ एक पण्डा तो है नहीं—अनेक हैं, उनमेंसे एक मैं भी हूँ।”

मैंने एक बार क्रोध-भरी आँखोंसे उसकी ओर देखा और चुप हो रही।

अब उसने अपनी शैतानी शुरू की। धीरेसे आकर मेरे गलीचेपर बैठ गया और बोला—तुम डूब क्यों गई थीं प्यारी मेरी ?

उसके इस सम्बोधनसे मैं और भी जल उठी और डपटकर बोली—होशमें आकर बातें करो !

वह पैशाचिक हँसी हँसकर बोला—बाह रे तेरे नखरे ! मगर

बीबीजी ! अब तो इसी महलकी रानी बनकर रहना होगा । यहाँ-से तुम किसी तरह निकल न सकोगी और अगर नहीं मानोगी तो कसाईके हाथ बेच डालूँगा, जनम-भर रोते ही बीतेगा । ये सब नखरे छोड़कर चुपचाप मेरी गोदमें आ जाओ—देखो कितना सुख मिलता है !

इतना कहकर ज्यों ही वह मेरी ओर बढ़ा, मैं शेरनीकी तरह झपटकर उसपर दूट पड़ी । दनादन उसकी छातीपर लात जमाना शुरू कर दिया । बीच कलेजेहीपर पहली लात ऐसी सरपट पड़ी कि बच्चूके मुँहसे खून बलबला पड़ा—मैं लगातार लात और धँसे जमाती गई । जब वह कराहने लायक भी नहीं रह गया, तब मैंने धीरेसे उसकी तालियोंका गुच्छा ले लिया और बड़ी सावधानीसे दरवाजा खोलकर मैं बाहर आई । तब पता चला कि मैं तहखानेमें बन्द थी । मगर अब कोई दिक्कत नहीं थी—धीरे-धीरे एकके बाद दूसरे कमरेका दरवाजा खोलते-खोलते मैं गलीमें आ खड़ी हुई ! अब मेरा साहस और भी बढ़ गया ; मगर काशीकी गलियोंसे इतनी जल्दी निकल भागना आसान नहीं है । खैर मैं किसी तरह निकलकर सदर सड़कपर आई । आते ही लाल पगड़ीवालेका सामना हुआ । उसने डपटकर पूछा—कौन औरत है ? कहाँ जा रही है रे ?

मैं उसकी डपट सुनकर इतनी डरी, जितनी आजतक कभी डरी ही नहीं । उस समय मालूम हुआ कि पुलिसके आदमी और यमराजमें थोड़ा ही अन्तर होता है । मगर वह बेचारा बड़ा ही नेक निकला । किसी भले बापका बेटा रहा होगा । डरके मारे मैं सकबकाकर रोने लगी । मुझे मालूम हुआ, जैसे संसारकी सारी

विपदाएँ भगवान् ने मेरे ही लिए बनाई हैं ? मैं उसे कुछ जवाब न देकर रोने लगी। उसे मेरे ऊपर बड़ी दया आई। नम्रतापूर्वक वह मेरे नजदीक आ खड़ा हुआ और लगा प्यारसे सारी बातें पूछने। उसे और-और बातें तो मैं नहीं बता सकी, सिर्फ यही बता दिया कि मैं एक अनाथिनी अबला हूँ और पण्डोंके फेरमें पड़कर मेरी यह दशा हुई है। वह बेचारा भी मेरे साथ रोने लगा। उसके बाद वह मुझे इसी 'नारी-सदन'में छोड़ गया !

मगर मैं तो दुनियासे ऊब चठी हूँ, यहाँ तो मेरा मन और भी न-जानें कैसा हो रहा है। यहाँके कर्मचारी भी बड़े सज्जन हैं—मेरे आरामकी कोई बात उठा नहीं रखते ; दीन-दुखियोंका बड़ा आदर हैं। सब कुछ है, फिर भी मैं शान्त नहीं हो सकी हूँ—तड़प-तड़पकर दिन बिताती हूँ और रो-रोकर रातें। अभी तुमसे बिल्कुड़े शायद दस ही दिन हुए हैं, इसी बीचमें मैं क्या-से-क्या हो गयी ! यदि मुझमें क्षत्रिय-वंशका रक्त नहीं होता तो उस पापीके हाथों मेरी क्या दुर्दशा होती ? या कौन जानता है, उस बेहोशीमें उसने मेरे साथ क्या-क्या सलूक किए ?

नन्नु ! मैं पापिनी हूँ। पर-पुरुषने मेरा स्पर्श किया है ! जान-बूझकर न सही, किसी भी अवस्थामें हो, मैंने अपने जीवनकी सारी साधना, सारी तपस्या नष्ट कर दी ! अब मैं इस लायक नहीं कि किसी भी जन्ममें तुम्हारे भैयाकी दासी हो सकूँ ! मुझ पापिनीका सुहाग सदाके लिए—जन्म-जन्मान्तरके लिए—सो गया। किसी हालतमें भी अब तुमलोगोंको अपनी यह पाप-प्रतिमा, अपना यह काला मुख न दिखा सकूंगी। यहाँ मत

आना ! मैं आज ही किसी-न-किसी तरह इस दुनियासे कूच कर दूँगी ।

तुम्हारी
—अभागिनी 'भौजी'

[४]

दुनियाका एक अँधेरा कोना
मङ्गलवारकी तड़पती हुई सन्ध्या

मेरी दुलारी लखो !

उस रात तुम लोगोंको बिना जनाए हो इसलिए चल पड़ा कि कहने-सुननेपर तुम किसी तरह भी मुझे आने नहीं देतीं । और अगर मैं वैसा नहीं करता तो जीवनकी सबसे बड़ी साध मेरी लाशके साथ ही चिताकी गोदमें समा जाती । जिसे आज पाँच बरसोंके बीच भूलकर भी एक बार यादतक नहीं किया ; जिसे कुत्तोंके जुठारे हुए पत्तलकी तरह निर्मोही होकर नरककी नालीमें फेंक दिया था ; जिसके असहाय अन्तस्तलमें इतने दिनोंसे मैं सदैव आग ही लगाता आया, अपनी उसी अभागिनी बीबीकी यादमें उस रात मैं इतना पागल हो गया कि मुझसे उसके सिवाय दुनियामें और कोई चीज ही नजर नहीं आने लगी ! जिधर देखता, उसीका जलवा नजर आता—उसीकी सौन्दर्य-ज्योति हँसती हुई मिलती । वही मुस्कराहट, वही बाँकपन, वही अदा, वही लुभावनी चितवन—सब कुछ वही ; मगर मैं ही वह नहीं ! कहाँ वह स्वर्गकी देवी और कहाँ मैं नावदानका घृणित कीड़ा !

तुलना नहीं—कोई मुकाबिला नहीं ! फिर भी दिल तड़प उठा, बेचैनीकी लहर नाच उठी ! तय कर लिया कि चाहे जहाँ भी गई होगी, जाकर एक बार उसके पैरोंपर लोटे बिना न रहूँगा । और कुछ नहीं बोलूँगा, अपने पश्चात्तापके आँसुओंसे उसके पावन पैर पसारकर उसीका थोड़ा-सा चरणामृत ले लूँगा । वही मेरा सबसे बड़ा प्रसाद होगा ! वही मेरी पाप-मुक्तिका सबसे बड़ा साधन होगा !

मगर वह मुराद भी पूरी न हो सकी । जिस समय उसके चरणोंपर मेरा शीश गिरा, उस समय मेरी आँखोंमें एक बूँद भी पानी नहीं रह गया था । हृदय तो श्मशान हो चुका था, उसमें न रस था, न प्यास थी । प्यास बुझ चुकी थी, रस सूख गया था ! भीतर हाहाकार मचा हुआ था, बाहर आँखोंकी राहपर राख उड़ रही थी ! लाख चाहा कि एक बार भी जीभर रो लूँ, मगर रो नहीं सका । उस समय अगर कोई मुझसे जन्म-जन्मांतरकी गुलामी लिखवा लेता और इसके बदले किसी तरह मेरी आँखोंकी राहसे दो बूँद पानी गिरवा देता तो मैं समझता, मुझे स्वर्गका सिंहासन मिल गया ! पर जो हो ही नहीं सकता था, वह होता कैसे ? आखिर जी मसोसकर रह जाना पड़ा !

खैर, यह तो जो हुआ सो हुआ ही । इसके आगे भी सुनना चाहती हो ? सुनो, हाँ, खूब अच्छी तरहसे सुन लो ! आखिर मैं अबतक जी किस लिए रहा हूँ ? इसीलिए न कि हृदयको पत्थर बनाकर तुमलोगोंको जनमभर रुलाऊँ ? बस, जीवनभर मेरा यही काम रहा—आज भी यही कर रहा हूँ ।

कई जगहोंसे होता हुआ मैं उसी रविवारके दोपहरमें काशी

पहुँचा। ज्यों ही गाड़ीसे उतरा, सुना कि मुसलमानोंने अनाथ-नारी सदनके सामने दङ्गा भी मचा रखवा है। न-जाने आप-ही-आप मेरा दिल क्यों धड़कने लगा। मैंने एक आदमीसे पूछा—बात क्या है भाई ?

“अरे साहब ! बात क्या होगी ? ये सब इसी तरह शैतानी करनेपर तुले रहते हैं। जबतक एक बार खूब अच्छी तरह सीखेंगे नहीं, इन्हें होश नहीं होगा।”

“आखिर कुछ तो हुआ होगा ?”

“होगा क्या ? नारी-सदनके भीतर घुसकर एक मुसलमान लौंडा बिना किसीसे पूछे गुलाबके फूल तोड़ने लगा। इतनेमें प्रधान जी आए तो बोले कि क्यों वह इस तरह फूल तोड़ रहा था। बस, फिर क्या था, तन गया वह छोकरा, और लगा अनाप-शनाप बकने। प्रधानजीने कान पकड़कर उसे तीन चपतें रशीद कीं और गरदनियाँ देकर हातेसे बाहर निकाल दिया। इसीपर हो-हल्ला मच गया। घण्टेभरमें सैकड़ों मुसलमान जुट गए और लगे नारी-सदनपर ईट-पत्थर फेंकने। अभी-अभी घण्टेभरकी तो बात है।”

शरारतकी यह नङ्गी तस्वीर देखकर मेरा राजपूती खून खौल उठा। मगर जबतक वहाँ पहुँचा, मामला बहुत-कुछ शान्त हो चुका था। दो-चार हिन्दू और पाँच-छः मुसलमान वहाँ घायल पड़े हुए थे। नारी-सदनकी एक स्त्री भी बुरी तरह घायल हुई थी। जब मुसलमान लोग फाटक तोड़कर जबरदस्ती ‘सदन’ में घुसे जा रहे थे, उस समय जिनलोगोंने वीरताके साथ उनका मुकाबिला किया, उनमें यह स्त्री भी थी। सुनते ही मेरा हृदय गौरव

और आह्लादसे उमड़ उठा। मैं श्रद्धाकी आँखें लेकर उस देवीके पास पहुँचा। नजदीक जाकर जरा गौरसे देखा तो काँप उठा ! वह तुम्हारी ही बहिन थी ! मुझे यकीन हो गया कि वह वही थी ! उसकी तड़प देखकर मैं स्थिर न रह सका—उसके पैरोंपर गिर पड़ा !

उसने अकचका कर देखा और बोली—ना-ना, मुझे मत छुओ। मैं दूसरेसे छू गई हूँ—अब तुम्हारे लायक नहीं हूँ। इसके बाद वह तड़प-तड़पकर रोने लगी। मैं कह नहीं सकता, कबतक उसी तरह पड़ा रहा। जब आँखें खुलीं तो देखा, मेरे कमरेसे एक लाश निकल रही थी। वह अस्पतालका कमरा था। मैं वेग-से उठकर बाहर निकल पड़ा और चिल्ला उठा—इसे कहाँ लिए जाते हो ?

मेरा चिल्लाना व्यर्थ था। दो-तीन आदमियोंने पकड़कर मुझे जबरदस्ती खाटपर लिटा दिया। उनमेंसे एकने आँसू-भरी आँखों-से मेरी ओर देखकर कहा—अब जो होना था, हो गया। धैर्य रखिए। देखिए, आपको खोपड़ी फट गई है—बड़ा भारी घाव है। आरामसे लेटे रहिए।

उसके बाद मैं बेहोश हो गया। कह नहीं सकता, बीचमें कितनी बार बेहोशी आई और गई। मगर पूरे सप्ताहभर मैं वहीं रहा। उसके बाद मुझे आज्ञा मिली कि अब यदि मैं चाहूँ तो अस्पताल छोड़ सकता हूँ। न भी मिलती तो भी छोड़ देता। बस, उसी दम मैं वहाँसे निकल पड़ा।

इस समय कहाँ हूँ, यह न बताऊँगा। तुम्हारा क्या ठिकाना, किसी-न-किसी तरह पहुँच जाओ तो ? बस, यही समझ लो कि

इसके बाद तुमको न तो मेरा कोई पत्र मिलेगा न कभी मैं ही तुम लोगोंको अपना मुँह दिखाऊँगा। यह पत्र जिस समय तुम्हें मिलेगा, उस समयतक मैं तुम्हारी बहिनके चरणों-तले लेटता रहूँगा। जहाँ वह गई है, वहाँ जानेकी मेरी तैयारी हो चुकी। बस, अब बिदा माँगता हूँ। यदि भाग्यमें होगा तो फिर किसी दूसरे जन्ममें...! पता नहीं तुम्हारा 'नन्नू' कहाँ है! इस समय उसकी बड़ी याद आ रही है। मिले तो मेरा लाख-लाख प्यार कह देना। बस—

तुम्हारा,
—जन्मका दुखिया 'जीजा'

[५]

एक अज्ञातप्रदेश
दिनका दोपहर

माँ !

इस अभागिनी बेटीको माफ करना। इस बुढ़ापेमें तुम्हें जो कुछ दुःख मिल चुका था, उससे शायद भगवान् सन्तुष्ट नहीं हो सके। उन्हें कुछ और मंजूर था। तुम्हारे बचे-खुचे सुखको मेरे ही हाथोंसे मिटवानेमें उन्हें बड़ा आनन्द आया होगा। मैं क्या करती ? मेरा क्या बश ?

बहिन और जीजाके साथ-साथ मेरी दुनिया भी खाकमें मिल गई—मेरे लिए भी संसारमें कुछ रह नहीं गया। जो चीज इतने दिनोंसे मैं कलेजेके भीतर छिपाए बैठी थी, वह भी न-जाने किस

राहसे उड़ गई। हाय ! मेरे मनमें कितनी बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं; कितने सुन्दर-सुन्दर अरमान थे; कितने खूबसूरत हौसले थे ! सबके सब ध्वस्त हो गए ! बिखर गए ! मिट्टीमें मिल गए !! आज उसी हौसलेकी समाधिपर बैठी-बैठी अपने दर्दकी तस्वीरें खींच रही हूँ, तरह-तरहकी किस्मतोंके रङ्ग-रूपका मिलान कर रही हूँ। आह ! प्रत्येकमें कितनी गहरी भिन्नता है !

माँ ! मेरी अभागिनी माँ ! तुम्हारी यह बेटी योगिन बन गई ! अपने प्रियतमकी अलख जगाते-जगाते जीवनका अवसान कर देगी। कह नहीं सकती, कभी रूप-रसका पान कर सकूंगी या नहीं। हाँ इतना जानती हूँ कि यहाँ नहीं तो किसी-न-किसी लोक-में वे मुझे मिलेंगे अवश्य। आजतक उन्हें छोड़कर मैंने हृदयमें किसीका ध्यान नहीं किया। सोते-जागते, खाते-पीते, रोते-हँसते, सदैव उन्हींकी सूरत मेरी आँखोंमें फिरा करती है। ठहरो, देख लूँ वह लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाए कौन आ रहा है ? हाँ, वही तो हैं माँ ! अच्छा, फिर लिखूंगी.....!

माँ ! मेरी दुखिया माँ ! लो, अब मेरा अन्तिक प्रणाम स्वीकार कर लो। उस समय पत्र अधूरा रह गया था, अब इसे पूरा किए देती हूँ। हाँ, उस समय 'वही' थे। कई दिनोंसे शायद उनके पेटमें एक दाना भी नहीं पड़ा था। न-जाने इस जङ्गली राहसे किधरको जा रहे थे ! मुझे दूरहीसे कुछ ऐसा जँचा कि वही हैं। मैं कलम पटककर उनके पास दौड़ गई। मुझे देखते ही वे रुक गए और चकित होकर बोले—तुम हो लकखो ?

आह ! उनकी वाणीमें कितनी कातर चीख थी ! वे कितने

दुर्बल और कमजोर हो गए थे ! मेरी आँखोंसे आँसू भरभरा गए ! रुँधे हुए स्वरमें बोली—प्राणेश !

“हाय ! लम्बो ! तुम्हारी भी यह दशा हो गई ?”—कहकर वे उसी समय गिर पड़े और माँ, उन्होंने फिर उठनेकी चेष्टा नहीं की !

मैं रो नहीं सकी । रोती क्या करने ? मेरे रोनेका मूल्य ही क्या रह गया ? मैं तो अपने भाग्यको सराहने लगी, अब भी सराहती हूँ कि वे मरें तो मेरी ही गोदीमें सिर रखकर । मुझसे बढ़कर और कौन सुहागिन होगी, जिसके सुहागकी सेजपर विच्छेदका कभी पैर ही नहीं पड़ सकता ? अब इनसे मुझे कौन अलग कर सकता है ?

सुनो, तुम इस समय रोना मत । मुझे आशीर्वाद देना । उस जन्ममें फिर हम दोनों तुम्हारे ही चरणोंकी सीमामें पलेंगे और तुम्हारा यह ऋण चुकानेका यत्न करेंगे । इस समय अब माफ़ करो ! उन्हींके साथ जा रही हूँ ।

तुम्हारी सर्वस्वहीना बेटी,
—लम्बो

एक विधवाका अपने सखीको

[रचयिता—श्री० 'प्रभात']

.....!

प्रथम-मिलनके सुखका अनुभव, अभी न कर पाई थी हाय !

बन्द कलीके भीतर था, आशाओंका सौरभ असहाय ॥

चितवनमें थी लाज अधर—पर थी संकोच-भरी मुस्कान !

हृदय-कुमुदने अभी न पाया—था पावन-प्रिय-दर्शन-दान ॥

जीवन - बीणाके तारोंसे, नव-यौवनका पहला गान ।

अभी-अभी तो निकला ही था, प्रथम पुलक-सा शुचि-रुचिमान ॥

जाग रहा था धीरे-धीरे, अन्तरमें अजान - अनुराग ।

किसे ज्ञात था इतनेमें ही, फूट जायगा मेरा भाग ॥

विकसित होनेके पहले ही, सूख गई कलिका बनमें ।

दलित हुए दल काम-कमलके, वज्र-निपात हुआ छनमें ॥

प्यारी सखी ! रहा सुख अब क्या, इस विषादमय जीवनमें ?

आग लगी सौन्दर्य-सदनमें, रही हाय ! मनकी मनमें ॥

पथकी हुई भिखारिनि अब मैं, अभिशापिता प्रणय-धन-हीन ।

यौवनके चिर-रुदन-रागमें, हुई हास्यकी रेखा लीन ॥

निधनी हुई बहिन ! खोकर मैं, जीवनका धन अलग-महान ।

भस्म हुई जलकर इच्छाएँ, आज हृदय-तल बना मसान ॥

करकी चारु - चूड़ियाँ टूटीं, धुला माँगका शुभ - सिन्दूर ।
बना भेष मेरा योगिनिका, हुई हर्षकी घड़ियाँ दूर ॥
अस्त हुआ सौभाग्य - दिवाकर, विधवा कहलाई मैं आज ।
ललित-लोल-लावण्य-मुकुलपर, गिरी अचानक आकर गाज ॥

सूखा स्रोत हृदयका, नीरस—हुआ चन्द्रिकाका शृङ्गार ।
प्राणोंकी गति आज रुक गई, अन्त हुआ मेरा संसार ॥
अङ्ग - अङ्गमें दहक रहे हैं, प्रलयंकर दाहक अङ्गार ।
वसुन्धरे माँ ! मुझे छिपा ले, अपना खोल चिरन्तन द्वार ॥
अब न अधिक उन्माद-भरी, आहोंकी कथा सुनाऊँगी ।
रोती हूँ—रो : रो जीवनकी, घड़ियाँ शेष बिताऊँगी ॥
एक रुदन हो रहा विश्वमें, अब मेरा अनन्त - आधार ।
एक रुदन ही रहा विश्वमें, अब मेरा सर्वस्व अपार ॥

❀ ❀ ❀ ❀
पढ़ना, हृदय थामकर पढ़ना, इन शब्दोंको सखी ! उदार ।
मुझ पापिनके अधम भाग्यपर, अश्रु गिराना तुम दो-चार ॥

❀ ❀ ❀ ❀
अन्धकार सर्वत्र हृदयमें, और विश्वमें भी साकार ।
अन्धकार उस पार दृष्टिके, अन्धकार इस पार अपार ॥
अश्रु-लहर भीषण-ज्वाला—उन्माद प्रलय आकृत उच्छ्वास ।
आज आ रहा मुझे निगलने, मुँह बाए अनन्त-आकाश ॥
शिथिल हुई जा रही शक्तियाँ, दग्ध-हृदय-तलकी सारी ।
और अधिक क्या लिखूँ ?.....

तुम्हारी,

—अभागिनी सखि 'सुकुमारी'

अन्तःपुरका आत्मनाद

[लेखक—महादेव सिंह शर्मा]

(यह सब पत्र व्यक्तिगत हैं, सिर्फ नाम बदला गया है। जो नाम दिये गये हैं; वह फर्जी हैं।)

.....
दो बजे रात
समुद्रका किनारा

.....री !

परसोंसे तबीयत घबरा रही है ; उस दिन तुम्हें सपनेमें देखा। आशा थी, कि आज तुम्हारा पत्र मिलेगा, किन्तु सारा दिन डाकियेकी राह देखनेपर शामको आशा निराशामें बदल गई। उम्मी ! मैं तुम्हें और घरको जितना भूलनेकी कोशिश करता हूँ, उतनी ही विपत्तिकी तरह और अधिक याद आती है। मैं तो कहूँगा, कि यदि मैं नहीं भूल सकता, तो तुम्हीं मेरे अपराधोंको यादकर मुझे भूल जाओ। शादीके बाद मेरा धर्म

था, कि मैं तुम्हारा पालन-पोषण करता ; तुम्हें सुखी बनाता, किन्तु संसारमें सभी तो लायक नहीं होते ? फिर नालायकको भूल जानेमें क्या हर्ज है ; कम-से-कम तुम्हें शान्ति, सुख और सन्तोष तो होगा । जिस यादसे हृदयमें बेचैनी, तड़प, कोलाहल और उलझन हो ; जिससे माथेमें अशान्तिकी आँधी चले, उस यादमें आग लगा दो न उम्मी !

मैं जानता हूँ, कि तुम अपनी तकलीफें बहुत छिपाती हो ; यह भी मालूम है, कि तुम्हें बड़ा दुःख है ; लेकिन मैं तो ऐसा कापुरुष हूँ, कि न-जाने किस भयसे मैं तुम्हारे कष्टोंके सुनने और पढ़नेमें भी आना-कानी करता हूँ । क्यों ? इसका कोई जवाब मेरे पास नहीं । आज्ञा नहीं हॉ, तुमसे एक प्रार्थना है, कि तुम अब मुझे कभी पत्र न लिखना और मैं भी तुम्हें कभी कोई पत्र न लिखूँगा । इसका यह अर्थ न लगा बैठना; कि तुम्हारे लिये मेरे हृदयमें कोई आदर नहीं, विचार नहीं और प्रेम नहीं । उम्मी ! आँखोंमें आँसू भरे हैं, पर रो नहीं सकता, हृदयमें वेदना है, व्यक्त कर नहीं सकता । इस समय हृदयमें बल नहीं, कि मैं तुम्हारी तकलीफोंको बर्दाश्त कर सकूँ, अथवा संयुक्त परिवारके कीचड़से निकालकर तुम्हें ऐसी जगह रख दूँ, जहाँ दिन-रातमें सौ बार सोहागके सिन्दूर-के धोये जानेका शुभाशीर्वाद सुन न सको ।

जबतक बाबूजी हैं, माताजी हैं, तबतक वह जो चाहें, करें । मैं तो अभागा हूँ । चार पैसे मैं भी कमा पाता, तो भाइयों और उनकी स्त्रियोंके ताने क्यों सुनने पड़ते ! खैर, अपनेको सम्भालना ; कभी किसीको कटु बात न कहना । स्त्रियोंकी लज्जा कच्चे घड़ेसे भी अधिक तुनुक है ; देखना, इसे बचाना ; किसी तरह भी ठेस

न लगे। मेरा शरीर अच्छा है। यदि यह बेकारी कुछ दिन और रही, तो शायद कहीं दूसरी जगह चला जाऊँ अथवा आगे मैं क्या करूँगा और क्या हाल होगा, मैं नहीं जानता। तुम अधीर न होना, यदि सुख न रहा, तो दुःख भी न रहेगा। जीवन रहेगा, तो फिर मिलूँगा। बस आज इतना ही—

तुम्हारा
वही अभागा।

आशापुर
काशी,

जीवनाधार !

.....

चरणोंमें अनेक प्रणाम।

चीठी आई, बड़ी प्रसन्न हुई। मेरी खुशीका क्या ठिकाना ! जैसे मुझे कोई खजाना मिल गया। जेठानीजी तो मेरी खुशी देखके मेरे पास चली आई, पूछने लगी,—‘क्या चिट्ठीमें नोट आये हैं ?’ मैंने सिर झुकाके कहा,—‘बड़े नोट आये हैं, वह अच्छे हैं।’ झुंझलाके उन्होंने कहा,—‘तब क्या उन्हें हैजा प्लेग थोड़े खाये जाता है। अपने मजा कर रहे हैं ; जोड़ूको खिलाये-पहनाये, तो मालिक।’ मैं चुप हो गई, क्या जवाब देती ? निगोड़ी मौत भी नहीं आती। खैर ! फिर भी मैं सबकी बातोंको सुन-सुनाके सुखी हूँ ; जानते हैं क्यों ? वही आपकी तसवीर, हँसती हुई तसवीर !! जब बड़ी तकलीफ होती है, तब उसीसे हँस-बोल लेती हूँ ; छातीकी पीड़ा कम हो जाती है।

कई दिनसे चीठी लिखनेकी सोच रही थी ; दिनमें कामकाज से फुरसत न मिली ; रातको डेबरीमें तेल नहीं, जानते ही हैं, कि नापकर तेल समझौतीके लिये मिलता है ; मुश्किलसे बिछौना लगा पाती हूँ । भाग्यसे भगवानने महीनेमें तीन दिन हमलोगोंके लिये भी छुट्टीके बना दिये हैं, जान तो इसमें भी नहीं बचती ; फिर भी दम मारने की फुरसत मिल जाती है । किसी तरह चीठी लिखी, तो टिकट नहीं, डाकमें छोड़नेवाला कोई नहीं । खैर, फिर भी मैं सुखी हूँ ।

हाँ, यह आपने क्या लिख डाला, कि पत्र न लिखना, क्या आप मेरे इस नन्हे-से अधिकारको भी छीन लेना चाहते हैं । यदि कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा करें । मैं तो देहाती दुनियाकी गँवार लड़की हूँ, आप तो इतने पढ़े-लिखे हैं, कि देश-कोसवाले वाहवा ! करते हैं । रुपया पैसा तो भाग्यकी बात है । कोई रुपया पैसा, जेवर, कपड़ा दिखाव-बनावपर गर्व करता है, तो मैं तुम्हींको पाकर अभिमान करती हूँ । जी क्यों छोटा करते हो ? घरपर जैसे सब लोग हैं ; आकर आप भी रहें । वहाँ क्यों तकलीफ उठा रहे हैं ? नहीं नौकरी लगी, तो न सही । यदि इतना अधीर होना है, और यहाँ आ नहीं सकते, तो मुझे ही अपने पास बुला लें, मैं कहीं पिसौनी करके, कसीदा-बूटा काढ़कर खानेभरका इन्तजाम कर लूँगी । नहीं होगा, तो कहीं दो लड़कियोंको लेकर पढ़ाऊँगी, तौभी खाने-पहननेका काम चल जायेगा । प्राणेश्वर ! दिल छोटा नहीं करना चाहिये । क्या रुपया कमानेके लिये ही पढ़ा-लिखा जाता है ? कोई आपको मूर्ख तो न कहेगा ; फिर आप जैसे विद्वान्के लिये इससे बढ़कर और कौनसी कमाई है ? यदि वहाँ काम न

लगे, तो चीठी देखते घर चले आइये ; मैं कड़े रखवाकर खर्चेके लिये परसों रुपये भी भेज दूँगी । जरा भी दुःखी न हों, हमेशा रातके बाद ही दिन आता है । अन्धेरे-उजालेकी भूलभुलैयासे आप जैसे समझदार और विद्वान्को घबरानेकी जरूरत नहीं । तीन-तीन बरस हो गये ; एक बार घर तो चले आइये—पत्रका जवाब शीघ्र दें—अधिक क्या लिखूँ ।

आपकी स्नेहमयी

उर्मिलला

.....

कोठरीका कोना

.....री !

तुम्हारा पत्र मिला, रुपये भी मिल गये । तुम्हारे पत्रसे बड़ा सन्तोष हुआ, शान्ति मिली । इसमें सन्देह नहीं, कि तुम्हारी-जैसी स्त्रियाँ ही हमारे घरोंकी जीती-जागती देवियाँ हैं । फटही धोती, आधा पेट अरुचिकर भोजन, चौबीस घण्टे बेदामके गुलामकी तरह काममें तुले रहना आदिसे साफ जाहिर है, कि यदि तुम्हारा अस्तित्व न होता, तो हमारे मकान श्मशानसे कम न होते । सन्तोष, सहन-शीलता, शान्ति और सेवा ही तुम्हारी शोभा है । सचमुच तुमने मेरी विचार-धारा पलट दी । जहाँ क्रोध, क्षोभ, चिन्ताकी आग धौंय-धौंय जल रही थी, वहाँ तुमने मीठी भावनाओंकी कैसी सुन्दर वर्षा की है, उसका बखान कर नहीं सकता । हाँ, यह सच है, कि मैंने बहुत पढ़ा-लिखा, किन्तु तुम्हारा विचार

इस पढ़ाई-लिखाईको हजार बार मात करता है। मैं तुम्हारा कायल हूँ, उम्मी !

तुमने लिखा है, कि घर चले आओ। सोचता हूँ, हारका हार पहनकर तुम्हारे सामने कैसे खड़ा हूँगा, तुम्हें भी समझा लूँगा, किन्तु और लोग तो यही कहेंगे न, कि इतना पढ़े-लिखे, लेकिन रोटीका ठिकाना कहीं न लगा, तो घर ही भागे आये। उम्मी ! क्या इन बातोंको सुनकर परसी थाली विषकी न हो जायेगी ; नींद हराम न होगी ? तुम कहोगी,—‘मैं कैसे बर्दाश्त करती हूँ ?’ तुमको प्रकृतिने शक्तिमयी और शान्तमयी बनाया है। स्त्रीकी शक्ति अनन्त होती है, उनकी ताकत हमेशा अनूठी और अनोखी होती है। यदि उन्हें महिमाययी और पुरुषको कापुरुष कहा जाये, तो शायद उचित ही है। पुरुष इस सम्बन्धमें सदा कमजोर हुआ करता है। वह लगती बातोंको नहीं सह सकते, स्त्रियाँ विषके घूँट पीती हैं, फिर भी वेदनाको छिपाकर अपनोंके सामने मुस्कुरा देती हैं। जब उपवासों और तकलोफोंसे जवानीमें ही बुढ़िया हो चली थी, दमदमाता चेहरा पोला पड़ रहा था और पेवन्द लगी धोतीसे लाज छिपाई जाती थी, तो तुमने—मुझे अच्छी तरह याद है—अपने भाईसे कहा था,—‘मुझे मीठा ज्वर आता है ; भूख नहीं लगती।’ फटी धोतीको रोटी बनानेकी धोती कहके ढाला था। यह सब क्या है, उम्मी ? मातृ जातिकी शोभा, कुल-ललनाका आदर्श और हिन्दू-स्त्री-जगत्का गौरव !! खैर।

मैं जानता हूँ, कि मेरे भाई हैं, भौजाई हैं, मा-बाप हैं, पति-परायणा तुम हो, धन-दौलत, कारबार, सब कुछ है, लेकिन उम्मी !

दुःख है, कि न तो मैं किसीका हो सका और न किसीको अपना बना सका। घरकी सारी बातें याद आती हैं, तब माथेमें हजार बिच्छुओंके डंक मारने जैसी ज्वाला उत्पन्न होती है। इस ज्वालाकी कौन-सी दवा है ? शायद कुछ भी नहीं। ऐसी हालतमें मैं अभी-तक यह तय न कर सका, कि मुझे क्या करना चाहिये।

इधर बुखार आ रहा था, अब अच्छा है। तुम्हारे रुपयेने बड़ा काम किया, दवा तो अस्पतालसे लाता था, किन्तु पथ्यके लिये पैसे न थे, परमात्माने तुम्हारे ही हाथों पथ्य दिया। उम्मी ! सचमुच तुम कल्याणी हो, तुम्हारी जैसी स्त्रीको तो तकलीफ नहीं होना चाहिये, यदि हो, तो विधिके विचित्र विधानके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। अभीतक तो मेरा विचार नहीं बदला है, आगे हरीच्छा। तबीयत सुधर रही है। अपना कुशल लिखना।

तुम्हारा...

अभागा।

आशापुर,

काशी,

आश्विन शुक्ल ११

प्राणेश्वर !

कृपा पत्र मिला। इस साल तो मेरी विजया बन गई। लोग दशहरेके दिन नये-नये कपड़े पहनते हैं, अच्छा-अच्छा भोजन करते हैं, स्त्रियाँ सोहाग भरती हैं; मिलती-जुलती हैं, तरह-तरहसे खुशियाँ मनाती हैं; किन्तु मुझे भी ऐन दसहरेके दिन मेरे

सोहागकी चीठी मिली, बस इससे बढ़के मेरे लिये और सौभाग्य का दिन क्या हो सकता है ? सच मानिये ; मैं सारा दिन उछल-उछलके काम करती रही, शामके वक्त माँग भरी, वही सोहागकी चुनरी, हिस्सेकी चार काँचकी चूड़ियाँ, पावोंमें महावर !! बस खाली दुल्हन !! जाकर माताजीके पाँव लगी, जेठानीके चरण छूए...बादको तुम थे, बात करते-करते निगोड़ी नींदने सुला दिया, सोई, तो तुम्हें पकड़ लिया—फिर तो.....नींद खुली,... आह !! इसके बाद आँगनमें आई, गश खाके गिर पड़ी । लोग कहते हैं, कि मृगीका रोग हो गया है, होगा । लेकिन जब बेहोश होती हूँ, तब तुम्हारे दर्शन होते हैं । इसलिये यही भगवानसे मनाती हूँ, कि चौबीसो घण्टे बेहोश रहूँ । मेरी बेहोशीकी दवा तलाशनेकी चेष्टा न करना, यह तुम खुद हो । जेठानीजी तो कहती हैं, कि पिछवारेके पीपलकी चुड़ैल है, माताजी नैहरका भूत बताती हैं । बाबूजीकी बात सुनियेगा तो हँसी आ जायेगी, कहते हैं,—‘पट्टोदारकी जमीन्दारीका ब्रह्म है ।’

भला तुमने मुझे अपने पत्रमें क्या-क्या बना डाला है । दासी-चरणदासीको क्या-क्या पद दे दिया है—पढ़े-लिखे हैं, इसीलिये न । अच्छी बात है । विचार बदल दीजिये, घर चले आइये । कल दरवाजेपर चर्चा हो रही थी, कि यहाँ एक निसवाँ स्कूल खुलेगा और मुझे लोग पढ़ानेके लिये कहेंगे । बाबूजी तो राजी हैं ; पर जेठानीजी कहती हैं,—‘यह कैसे हो सकता है, कि घरकी बहू-बेटी मदरसा पढ़ाने जाये ।’ देवरानीजीकी पूछिये ही नहीं, शायद उनके मैकेकी गिलास मेरे कमरेमें उन्हींका बेटा फुसुआ पानी पीके छोड़ गया था । मैंने धोके रख दिया था । झनकती

हुई आई', तो कहने लगी,—'किसीकी गिलास क्यों चुराती हो, अब तो माष्टरानी बनोगी, बीस रुपये महीने मिलेंगे, तब चाँदीकी गिलास खरीद लेना।' भला इन बातोंका क्या ठिकाना ? यदि आप आ जायें, तो मैं माष्टरानी जरूर बन जाऊँ। माष्टर साहबके बिना माष्टरानीकी शोभा नहीं। पर्दा-प्रथा सौतकी तरह गलेपर सवार है यदि आप चाहें, तो मेरा भी भूतोंसे पिराड छूट जाये ; निगोड़ी बेहोशी भी टूट जाये। बस प्राणनाथ ! वापस आयें, यहाँ सब सुख है, जो आप बिदेशमें रहके न कर सकें, वह घरमें रहके कर लेंगे। कहावत है—

‘उत्तम खेती मध्यम वान, निर्धिन सेवा भीख निदान।’

बाबूजीकी तबीयत खराब है, वह कई बार आपको याद कर चुके। वही इस बड़े परिवारके पतवार है, सब लोग आ गये हैं। आप भी चीठी पाते ही चले आयें, जिन्दगीका क्या ठिकाना। जब वह देखेंगे, कि सारा परिवार उनकी आँखके सामने हैं, तब उन्हें मरनेमें भी शान्ति और सुख मिलेगा। अधिक क्या लिखूँ, चले आओ न नाथ !

चरणानुरागिनी
उम्मी।

परदेकी आवाज

[लेखक—श्रीयुत अमर, काव्यतीर्थ, एम. ए.]

[मेरा सम्बन्ध कुछ सिनेमा-संसारसे था और अब भी है । यूँ तो सिनेमा-जगत्का वातावरण कलुषित और जघन्य माना जाता है ; फिर भी वहाँ अच्छे और सदाचारी स्त्री-पुरुषोंकी कमी नहीं । मेरे पास कितने ही मित्रोंके पत्र हैं । जिन्हें केवल अय्यारों के हथकण्डोंसे समाजको सावधान कर देनेके अभिप्रायसे कृत्रिम नाम देकर उद्धृत कर देना अनुचित नहीं कहा जा सकता ।]

अल्मोड़ा

श्रद्धेय.....जी !

आपके संवाद बड़े चुभते हुए हैं । विशेषतया जहाँ आपने लिखा है,—‘पापका नाटक हँसीसे आरम्भ होता है और आसुओं पर समाप्त होता है ।’ उस दिन बम्बईमें जब आपने मेरी उदासी का कारण पूछा था, मैं टाल गई । जानते हैं, क्यों ? मिष्टर...के भयसे, कि कहीं नाराजगी और न बढ़ जाये । पर देखतो हूँ, मैं

जितना झुकती गई, मुझे झुकानेमें कोई कोर-कसर न की गई। मुझे बड़े-बड़े सेठ-साहूकारोंको नजर करके खीसें भरनेकी तय्यारी की गई, मैं नट गई, तो बदमाशकी उपाधि दे दी गई। विश्वास रखें, मैं आपको अपना समझती हूँ, इसलिये अपने पचीस वर्षके नन्हेंसे कच्चे चिट्ठे को सामने रखती हूँ। मैं...में पढ़ती थी। संस्कृतकी उत्कृष्ट परीक्षा पास कर चुकी थी। अन्य परीक्षाकी तय्यारी कर रही थी, कि इतनेमें.....की दृष्टि पड़ी। लगे चक्कर काटने और प्रेमका मोहन मन्त्र पढ़ने। एक दिन गलेमें फाँसी लगाके झूलने चले, मैं झुक गई, उन्हें बचा लिया। बम्बई आई, परदेसे निकलकर तत्कालीन बेहतरीन चित्रोंके पर्देपर आई; पर कृपानाथ ! जिनकी आँखें वासनाके सुरमेकी आदी हैं, उन्हें अपने वादे, सिविल मैरेज और संस्कारी विवाहकी क्या परवाह ! मुझे धोका दिया गया, कि वह अविवाहित हैं। बाकायदे रजिष्ट्रारके यहाँ शादी हुई। पीछे मालूम हुआ, कि हजरतकी शादी हो चुकी है, स्त्री जवान और रूपवती है। देवीजी भी आगई, मैं झल्लाई तो जरूर; किन्तु भाग्यकी विडम्बना कहके चुप हो गई।

धीरे-धीरे उनका मन फिरा, मैं बीमार होने लगी, वह बड़ी-से-बड़ी कम्पनी बनानेमें लगे। जान बड़ी प्यारी होती है। माँके पास भाग आई। आज पूरे बरस बीत गये, बीमार-सो ही हूँ। वह ऊँच हैं, मैं नीच हूँ, कैर-वेर क्या संग ? मेरे योग्य कोई कार्य्य हो, तो लिखें मैं आने और काम करनेके लिये तय्यार हूँ। वैद्यजी को नमस्कार कहे। आशा है, कि आप देवी...के साथ प्रसन्न होंगे।

आपकी वही

—बीणा।

बम्बई

सुभद्रे !

कुशल है, चाहिये । पत्र मिला । पढ़कर बड़ा दुःख हुआ । अबतक इन बातोंको जानता न था । निस्सन्देह संसार ठगोंकी बस्ती है । उन्होंने कभी मुझसे यह न बताया । कि तुम उनसे नीची जातिको हो, उनकी श्रद्धा भक्ति और प्रेम मुझे जहाँ तक दिखाई देता था, सन्तोष जनक जान पड़ता था । उनके बाहरी व्यवहार और विचारसे जरा भी सन्देह करना कठिन था । यदि उन्होंने तुम्हारे जीवनको इस तरह बिगाड़नेकी चेष्टा की है, तो विश्वास रखें, समय और प्रकृति बिना बदला चुकाये न रहेगी । मैं आपको क्या समझाऊँ । आप स्वयं संस्कृतकी शास्त्री हैं । आपने काव्य-ग्रन्थोंको पढ़ा है, उनमें सन्तोष, शान्ति और सान्त्वनाका पर्याप्त मसाला है । यद्यपि जीवन प्रतिशोधमय है, फिर भी, आप जैसी विदुषी भद्र महिलाके लिये आनन्दमयी और दयामयीसे बदलके रुद्राणी और चण्डी बनना शोभा न देगा ।

मेरी तुच्छ रायमें तो यही है,—‘सच्ची मार कबीरकी, चितसे दिया उतार ।’ मैं निस्संकोच कहूँगा, कि आपको पूरा धोका दिया गया । शायद उनके लिये परमात्माके दरवारमें क्षमा की कोई गुञ्जाइश नहीं । आपकी यह धारणा सचमुच सराहनीय ही नहीं, वरं अनुकरणीय और अलौकिक है । जब एक पुरुषने धोका दिया, तब उसके पापका प्रायश्चित मृत्यु ही है, किन्तु उनकी मृत्युसे हमारी एक दूसरी वहनके जीवनका दीप निर्वाण होता है ; सोहाग सिन्दूर धुलता है ; हिन्दू स्त्रीके लिये माथेके सिन्दूरसे

बढ़के संसारमें कोई वस्तु नहीं। अतः उन्हें क्षमा करना ही उचित प्रतीत हुआ। धन्य हैं आप और आदर्श है आपका त्याग। इसे शायद बिरली स्त्रियाँ सोच और कर सकती हैं। एक बार फिर आपके विचारोंके लिये साधुवाद !

हाँ, यदि आपकी तबीयत ठीक है और आप काम करना चाहें, तो यहाँ कम्पनियाँ बहुत हैं, साथ ही आपका भावपूर्ण अभिनय अभी तक दर्शकों और मालिकोंको भूला नहीं है। मैंने कहीं-कहीं चर्चा की है। लोग आपकी उत्सुकतासे चर्चा करते थे। हाँ; वेतन शायद वह न मिल सकेगा, जो आपको पहली कम्पनी अपने सुनहले युगमें देती थी। कृपया लौटती डाकसे अपना शुभ समाचार लिखें। मैं शीघ्रही काशी और वहाँसे कलकत्ते जाऊँगा। यदि मुझे वह मिले, तो यथेष्ट उलाहना दूँगा। श्रीमती जी पासही हैं, नमस्ते कहती हैं।

आपका

—‘अमर’

(कई पत्र कुशल-समाचारके लिखे गये; पर कोई उत्तर न मिला। अन्तमें शिमलेसे निम्नलिखित पत्र १६-८-३८ का लिखा हुआ मिला, जो अतीव मार्मिक है।)

श्री:

श्रीमत्पादार्विन्देषु सादरं सविनश्च

प्रणतयः सन्तुतराम।

आपके सब पत्र मिले ! शीघ्र उत्तर न मिलनेका कारण मौसमी बुखार था, जो कि अभी तक भी पीछा नहीं छोड़ रहा

है। डेढ़ महीनेसे विस्तरमें पड़ी हूँ, पहले रायल होस्पिटलमें थी, अब एक सप्ताहसे शिमलेमें हूँ और यहाँ डाक्टरोंकी चिकित्सा करवा रही हूँ। अगर शीघ्र इसकी चिकित्सा समुचित न करवाई गई, तो डाक्टरोंकी राय है, कि तपेदिक हो जानेका भी अँदेशा है।

आप कलकत्ते जा रहे हैं मेरी यह खुशखबरी, कै० शर्माजी को भी सुना देना ; अगर आपको वे मिलें तो।

अधिक क्या लिखूँ, मेरी सेहत बिल्कुल गिर गई है। मैं आज एक हड्डियोंका ढाँचा रह गई हूँ, जिसमें खूनका नाम भी नहीं। एक तकियेके सहारे विस्तरमें बैठकर आपको यह खत लिख रही हूँ। स्वस्थ हो गई तो फिर भी लिखूँगी, नहीं तो क्षमा करना मेरी ओरसे हुए अपराधोंको भूल जाना, विद्वन् !

मालूम हो रहा है, कि अब इस दुनियाँसे कूच कर जानेका समय आ गया है। देखो ! मृत्यु देवी सामने खड़ी मुस्कुरा रही हैं। डाक्टरों और यमदूतोंमें परस्पर होड़सी लगी हुई है। देखते हैं किसकी विजय होती है।

वह मृत्यु जिसका नाम सुनते ही संसारके प्रत्येक प्राणीका हृदय काँप उठता है, वही मृत्युदेवी आज मेरे सामने कितनी शान्तमयी मूर्ति बनकर आई है।

ओह ! करुणामयी मा ! आज तेरी गोदमें सोकर मेरी यातनायें दूर हो जायेंगी; तुम मुझे थपकियाँ देकर सदाके लिये सुला दोगी। मैं फिर एक बार उसी सुखका अनुभव करूँगी, जिसका बचपनमें करुणामयी जननीकी गोदमें लेटकर किया करती थी। परन्तु वह अन्त था, यह अनन्त होगा। और निकट आओ मा ! आओ मा !!

न जाने मैं क्या लिख गई । दिमागमें कुछ विचारोंका ववण्डर
सा घूम रहा है, किन्तु लेखनी लिखनेमें असमर्थ है । रक्तरहित
हाथ काँप रहा है विद्वन् ! 'अमर वरदे अमर' ।

जीवन शेष रहा, तो बाकी फिर ।

आपकी—वांछा

काशी

—५-३८

देवि !

पत्र मिला; पढ़कर बड़ा दुःख हुआ । अन्तःकरणसे परमात्मासे
प्रार्थी हूँ, कि आप शीघ्र निरामय हों । केवल फसली बुखार है,
कमजोरी है; निकल जायेगी । चिन्ता न करें, क्षयका रोग शत्रुको
भी न हो । मैं एक भाईके इसीके हाथ खो चुका हूँ । यदि आने
लायक हों, तो काशी आजायें । यहाँ अच्छे-से-अच्छे वैद्य हैं;
गङ्गातट; हिन्दूधर्मका किला, शान्तिका स्थान, जलवायुका परि-
वर्त्तन ; अधिक लाभ होनेकी सम्भावना है । मैं सब तरहसे आपकी
सेवा करनेके लिये तैयार हूँ । अधिक न लिखकर केवल इतना ही
कहना है, कि आप चिन्ता न करें ।

जिसकी उदारतासे दोचार बेकार और गरीबकी परिवरिश
होती थी; वही अपराधिनी !! आश्चर्य ! हाँ, इतना अवश्य कहूँगा,
कि बड़ोंपर ही भाग्यकी विडम्बना भी थिरकती है, आपके भाई
और बहन कहाँ हैं ? क्या पिता और माताजी भी साथ हैं ? यदि
मनोहर साथ हों, तो उन्हींसे पत्र लिखा दीजियेगा; स्वयं कष्ट न

करेंगी। मुझे शुभ समाचार अवश्य मिलना चाहिये। बड़ी चिन्ता रहेगी। शेष कुशल ही है।

भवदीय शुभाकांक्षी
'अमर'

[अनमेल विवाहिता, वेश्यागामी पतिद्वारा परित्यक्ता, सास-ससुर द्वारा विताड़िता तथा विपत्तिकी मारी हुई एक निराधार युवती और कुशल अभिनेत्रीके कुछ पत्र, जिनके द्वारा साधारण जीवन पर प्रकाश पड़ता है]

बम्बई

प्रिय...!

सादर प्रणाम। कुशल है—आपकी चाहती हूँ। मैं २७वीं को यहाँ आगई। साथमें वही दोनों अभागिनी लड़कियाँ आई हैं, जिनकी चर्चा कर चुकी हूँ। आनेपर मालूम हुआ, कि आप चले गये। पता नहीं मालूम था, किसी प्रकार खोज लगा पता प्राप्त कर सकी।

अब आप वहाँ कब तक ठहरेंगे? आपके न होनेसे बड़ी कमी महसूस हो रही है। बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। कृपया जहाँ तक हो सके, शीघ्रतासे काम निपटाके यहाँ आइये। मैं अच्छी ही हूँ, समयका फेर है। अभी तक तो कोई सिलसिला आमदनीका नहीं है। आगे भगवान मालिक हैं, कृपया आप कुशल समाचार शीघ्र दीजियेगा। शेष क्या? दया चाहिये।

भवदीय

—सरस्वती।

×

×

×

श्रीमान्.....जी !

सादर प्रणाम—कृपापत्र मिला; चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। आपने वहाँ जानेके बारेमें पूछा है ? यह तो मजाक सा है। जो भी हो, दर्शन होने पर कहूँगी। आपकी तबीयत अब कैसी है ? भगवान् अच्छा करेंगे। मैं यहाँसे बराबर शुभकामना करती रहूँगी। कृपानाथ ! अभागिन हूँ न, किसी अपने बड़े या शुभचिन्तककी सेवा करना भी तो भाग्यकी बात है ! ... कृपया आप शीघ्र आइये। मैं कुछ भी तो नहीं कर सकती। अभी तो बेकार हूँ। एक अजीब परेशानी है—लिखियेगा, आप कब तक आयेंगे ? दयाके लिये घन्यवाद, कष्टके लिये क्षमा।

आपकी वही
सरस्वती।

बम्बई

मेरे परम पूजनीय जी !

पत्र भी लिखे, तो रूठकर ! भला निरीहों पर जुल्म करना क्या पुरुष जातिकी आदत है ? मैं तो दुखिया हूँ। क्या कविके नोरस वसन्तकी पंक्तियाँ आपको भूल गईं !!

दुखिया हूँ, एकान्त अकेली, सूना है मेरा संसार।
कभी नहीं जाना जीवनमें मैंने किसी हृदयका प्यार।
अपने टूटे हुए हृदयको भला किसे मैं दिखलाऊँ ?
किन चरणोंपर सखि ! ये अपने दुखिया आँसू बिखराऊँ ?
२१

नहीं, तो इतना क्यों कहते । जानती हूँ, कि मैं अपात्र हूँ, किन्तु बड़ोंकी दया तो प्राकृतिक धूपसी है न ? फिर भेद क्यों ? क्या वहाँ जाकर बदल गये ? बदल जाना भी तो स्वाभाविक है । आँखोंकी ओट हुए, कि दिलमें खोट आई, दुनिया खोकर पाती है, मैंने पाके खो दिया !! विश्वास तो नहीं होता; फिर क्या सबब है, कि रुख पलटा हुआ दिखाई देता है । जिस भावना वेलि को सच्चे अन्तःकरणसे वर्षों तक प्रेम-आशा-सन्तोषके आँसुओंसे सींचा था, उसे पुष्पिता और फलवती देखनेके पहले सूखते देखना कितना दुःखद होगा ? दयानाथ ! यदि आप हवाके झोंकेसे पत्तों का हिलना और समुद्रकी तरङ्गोंका चलना बन्द कर सकते हैं, तो आज्ञा दीजिये, मेरे हृदयकी धड़कन, स्पन्दन और प्रगति भी अपने आप रुक जाये । जानते हैं, प्रकृतिको रोकनेसे विकृति होगी और विकृतिके बाद विनाश !!

उलहना नहीं दे रही हूँ; ठुकराना जितना आपके लिये सरल है, क्या उतना ही नारी-हृदयके ऊपर खिंची हुई तसवीरको मिटा देना सहज है ? पहाड़से कुदाकर तमाशवीनोंकी तरह तमाशा देखना आपको शोभा नहीं देता । क्या इस तमाशोके देखनेसे शान्ति मिलेगी ? हाँ; यह मालूम है, कि बजाय शान्तिके सन्ताप की आगमें जलना पड़ेगा । ज्यादा क्या लिखूँ, स्थितिबश हृदय बहुत शोकातुर है ।

क्या होगा ? क्या करूँगी ? क्या सचमुच जीवन अवधि पूरी होगई । पूरी होनेकी भी कुछ परवाह नहीं, दुःख यही है, कि सन्ताप, बदनामी और पतित... ही साथ जायेगा । सुख ने स्वप्न में भी साथ नहीं दिया । चारो तरफ अन्धकार है । अन्धकारमें

तवीयत ऊब रही है। धुँधला प्रकाश भी लोप होना चाहता है। क्या आपके रहते हुए वह लोपही हो जायगा ? नहीं, आप ऐसे असमर्थ नहीं हैं, कि लोप हो जाये। ज्यादा नहीं लिख सकती, सिर्फ अपनत्वका निर्वाह कीजिये; यही मेरी प्रार्थना है, अनुरोध है ? क्या दर्शनकी भीख भी अनाथिनीके भाग्यमें नहीं ! कृपया मुझे न ठुकरायें। आप तो कहते थे,—

हाथसे दामन पकड़कर, वह जो इठलाता चला।

दिल भी आगे हो लिया, ठोकरें खाता चला ॥

आपकी अभागिन

सरस्वती ।

अमरावती,

.....

सरले !

पत्र मिला, पढ़ा ; सोचा। परिणाम ? आतुरता, अकारण दोषारोपण। बस यही न ! इससे अधिक क्या ? कहाँ यह दावा, कि मैं आत्म-शक्ति, आत्म-संयम और आत्म-ज्ञान लेके ही चित्रमय जगत्में आई हूँ। कहाँ परदेपर आते ही हिचकियाँ ! वही बेबशी !! जो कच्चे मकानकी चहार-दीवारीके अन्दर थी। मुझे मालूम है, कि हमारे अन्तःपुरवालिओंकी आँखोंकी बरसातसे परदे और अवांछनीय परम्पराकी दीवार टूट जाती है, किन्तु समय लगता है। तुम्हारी आँखोंसे जेठ या पूसकी वर्षा हो रही है ! असमयकी चीज अच्छी नहीं होती है। जबतक पास बैठा रहा ; प्रेमकी परिभाषा ही समाप्त न हुई, उसका ज्ञान ही नहीं हुआ ;

परीक्षा-कसौटी चल रही थी ; अब परेशानी है ! क्योंजी ! इसे स्त्री-चरित्रकी परिभाषामें डाल दूँ ; बुरा तो न मानोगी ? प्रेम-दर्शन नहीं चाहता ; स्पर्श नहीं चाहता ; कोई प्रतिकार भी नहीं चाहता—चाहता है वह दो हृदयोंका सामञ्जस्य ! पत्रमें आह ! ऊह !! करनेकी आवश्यकता ही नहीं । यदि सच्चा प्रेम है, तो 'आप ही चले आयेँगे, नालोंमें असर होने तो दो ।' जहाँ अन्धकार होता है वहीं पासमें तलाश करनेपर प्रकाश भी मिल जायेगा । जिसके दर्शनके लिये अँखियाँ प्यासी हैं, वह भी तो वहीं निर्गुन होके दिलके आईनेमें अपना-सा मुँह लिये बैठा है । फिर भीख माँगनेकी आवश्यकता ? तबीयतमें तूफान लानेकी जरूरत ? समझ कहती है, बेकार है ; विचार बताता है, व्यर्थ है और परिस्थितिकी घोपणा है, कि यह प्रेम नहीं ; कृत्रिमता है, माफ कीजिये वासनाकी धधकती ज्वाला है, जिसे आत्म-संयम और आत्मशक्तिके ठण्डे जलसे अनन्तकालतकके लिये शान्त किया जा सकता है । कहती हो, 'वहाँ जाके बदल गये ।' इधर तो बदलनेके लिए कोई चीज है ही नहीं । जो था उसे दे चुका हूँ, जो है, उसपर अपना कोई अधिकार ही नहीं । फिर अनधिकारी होनेके कारण देने-लेनेकी कोई गुञ्जाइश नहीं ।

जब भँवरा भी बसन्तकी आशमें गुलाबके मूलमें बैठा रहता है, तब तुम्हारे मुँहसे अवधिकी चर्चा अच्छी नहीं लगती । समय आनेपर ही सब होगा । इधर तबीयत खराब थी, फलतः पत्रमें देर ; आनेमें देर और उधरसे आँधी, बदली, बरसात, कड़क, गरज ; प्रलयका सामान !! मीराकी रट ; चन्द्रावलीकी पुकार !! शकुन्तलाकी तड़प !!! सब एक साँसमें । सन्तोष रखो सरस्वती!!

इन्तजारीमें जो मजा है, शायद वह मिलनेमें नहीं । दुःखके बाद सुखानुभव बड़ा मधुर और सुहावना होता है ।

‘मीठी भावे नोनपर, और मीठेपर नोन ।’

बस आज इतना ही ।

तुम्हारा अपराधी

—बसन्त ।

बम्बई

.....

मेरी सान्त्वना !

चीठी आई, लेकिन जली-कटी । आह ! मेरा कैसा अन्धा विश्वास आपके प्रति है, उसे मैं नहीं समझ सकती, किन्तु दुर्भाग्यवश समय समझा रहा है । या यूँ समझिये, कि दुर्भाग्य नहीं, सौभाग्य समझा रहा है, क्योंकि यदि इस संसारमें जीवन रहता, तो उसकी बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं, कितने मनोराज्य थे ; कितनी मीठी कल्पनाएँ थी और कितना क्या था ? लेकिन यह मेरे ही पापोंका प्रायश्चित्त है । आप महान हैं ; बड़े हैं ; बड़े दिल रखते हैं ; यह तो मेरी दीवानगी है न, कि अपना सूर्यकी नोक-सानन्हा दिल समुन्दर जैसे हृदयमें फँककर अब वापसीकी भीक माँग रही हूँ, गिड़गिड़ा रही हूँ । जो चीज आपकी नजरोंमें हो ; आपके दिलमें हो और उसकी वेदना आप महसूस न करें, आश्चर्य ही है । अभागिन होनेपर भी वासनाकी पुतली नहीं । संसार स्वार्थका है । आपके साथ साहित्यिक चर्चा सन्तोषजनक वार्त्ता और आशा-जनक कल्पनाओंसे बड़ी शान्ति मिलती थी । महाराज ! जीवनका भेद सबसे रामायणकी तरह गाया नहीं

जाता । आप तो मेरी हँसी उड़ा रहे हैं ; कटेपर नमक बुरकना इसे ही कहते हैं । 'जाके पाँव न फटी वेवाई, सो का जाने पीर पराई ।' कहीं दिलपर ठेस लगी होती, तो पता चलता । फिर भी, देवता ! मैं विपद्की मारी हूँ, जिसका जीवन दुःखोंकी आँधीमें बीता हो, उसे सहारा देके उठा देना मनुष्यत्व ही नहीं, देवत्व कहा जाये, तो कोई अत्युक्ति नहीं ! देखते तो हैं, ऐन जवानीमें चेहरेपर मुर्रियाँ दिखाई देती है, यदि 'मेकअप' अच्छा न हो, तो हम युवतियाँ भी बुढ़िया नजर आयें । मेरी दशा तो उस सुन्दरी नायिका जैसी है, जिसे उसने किसी मन चले युवकके प्रति कहा था ।

श्रवण, नयन, कुच, नासिका, निरखत कहाँ सुजान !

मदन नगर बसि ऊजरो, ताको खड़े निशान ।

मुझे वासना नहीं, सच्ची श्रद्धा और भक्ति है, आपकी उदारता है, जिसके वशीभूत होके बार-बार आपके दर्शनके लिये उत्सुक हूँ । आप जो चाहें कहें । मैं जानती हूँ, कि आपकी श्रीमतीजी मुझसे अधिक सेवा करती हैं ; सुन्दरी भी हैं, किन्तु वह भी तो दास ही कहे जाते हैं, जो खड़े रहकर आज्ञाओंकी प्रतीक्षा किया करते हैं । इनमें मुझे भी एक समझ लीजिये । अतः दर्शन दें और मेरी डूबती नय्याको पार लगायें । मैं अपना सर्वस्व सौंप चुकी हूँ, चाहे उबारें या डुबायें यह आपके आधीन है । समझदारको अधिक क्या समझाऊँ, कुशल समाचार लिखे नहीं, आपके सुनायें, यही प्रार्थना है ।

आपकी अभागिन

सरस्वती ।

मनचलोंके कुछ खतूत

[लेखक—दो दीवाने]

खाना बदोश,
ताज महल—

.....

मेरी जान

अगर यह सौजान होती, तो बार-बार कुरवान होनेमें भी मजा आता । अफसोस ! वह एक है, जिसकी कुर्बानी, तुम्हारे हुस्नके मन्दिरमें उसी दिन कर चुका हूँ, जिस दिन कालेजमें हमदोनोंकी पहली बात-चीत हुई । उसदिन बेतहाशा मेरे मुँहसे निकल पड़ा था—
'She smiled, a well was formed on her cheek, I fell in, whence there was no escape.' तुमने मुस्कुरा दिया ; गालोंपर एक कुँआ बना ; मैं उसमें गिरा और फिर निकल न सका । लोग कहते हैं, कि हसीनोंकी बेरुखाई और बेवफाईसे दिली दुनियामें बेकरारीका सैलाब आता है ; पर शुक्र है, कि यहाँ वह दुनिया ही नहीं । अगर कभी आँसुओंने बेवक्तकी बरसात

कर भी दी, तो बेखुदी डूब जाती है ; दिलकी फुलवारी और निखर जाती है ; कहने-सुननेवालोंके बेबुनियाद ख्यालात अपने आप धुल जाते हैं ।

इरादा तो न था, कि तुम्हें खत लिखता, या दीदारका तालिब बनता । सिर्फ याद ही किसीकी दीवानगीके लिये काफी थी ; मैंने वारहा बेकाबू दिलको समझाया और कहा,

‘याद न कर दिले हज्जीं, भूली हुई कहानियाँ ।’

लेकिन दिलने जरा सत्र किया, कि कमवख्त आँखें तड़प गईं और लगीं तलाश करने ; अगर तसवीर सामने आनेमें जरा भी देर हुई, तो वह ऐसी मचल जाती हैं, कि सावन-भादोंकी झड़ी लगा देती हैं । इन बदनसीबोंकी तो यह हालत है, कि खुलती हैं; तो बन्द नहीं होतीं और बन्द हुईं, तो खुलनेका नाम नहीं लेतीं । ज्यादा तङ्ग करो, तो कह उठती हैं, जनाब ! मेरे पास उनकी हुस्न बयानीकी ताकत होती, तो तुम्हारे ‘कल दिखा देंगे, परसों ला देंगे !’ के भूटे वादोंमें अपनी बीनाई खोनेकी नौबत न आती ! उनकी हालत तो यह है,—

‘रात कटें गिन-गिनके तारे, ढूँढ़त नैना साँझ सकारे ।’

इसपर जनाब दिल तान तोड़ बैठते हैं ;—

‘आय सुनाओ, मनके बासी मधुर-मधुर बैन !’

सुलोचने ! तुम्हीं बताओ न, इस मरजकी दवा क्या है ? दिल और आँखकी लड़ाईमें मैं खामख्वाह रूईकी तरह जल रहा हूँ । आँखोंने दिलपर इलजाम लगाया,—‘तुमने हमको प्रेम सिखाया ।’

यह सुनकर हजरत दिल कब चुप रहने लगे, उन्होंने छूटते ही फरमा दिया ।

‘रूप दिखाया, मस्त बनाया ।’

अब तुम्हीं कहो ना ! इन गरीबोंकी हालत कैसे सम्भाली जाये ? बेचारे इतने नासमझ, बावफा और ईमानदार हैं, कि एक बार जिधर ढले, वस उधर ही चले । इसका नतीजा क्या है, मैं परेशान हूँ, नातवान हूँ, कमजोरी बढ़ती ही जा रही है ; ख्वत्तगी है जो रफता-रफता खानाबदोशीमें तबदील होती जा रही है । शायद तुम इसकी दवा जानती हो, कहाँ अमृतका घूट बनकर जावेदानी वख्शनेकी अनायत होनेवाली थी ; अगर उसकी जगह मेरी परेशानी ही मिट जाती, तो मैं गनीमत जानता । कमबख्त मिलकर मेरो दुनिया ही उजाड़नेको फिराकमें हैं ; हस्ती मिटानेकी ताकमें हैं । उस दिन तुमने कहा था, कि देवदास पिकचरमें दर्शन हो जायँगे, आखिरी तमाशेतक दरवाजेपर धरना देता रहा, तुम्हारा भीतर-बाहर कहीं भी सुराग न चला, मैं अपना-सा मुँह लेके वापस आया । खैर, इसका मैं बुरा नहीं मानता, क्योंकि जिस राहका राहगीर हूँ, उसकी हर मंजिल कड़ी, हरएकमें ना उम्मीदी !—‘अब दो बातें सोच रहा हूँ, एक तो यह, कि जबतक जीता हूँ, यूँ ही रोया करूँगा । दूसरी यह, कि आखिर एक-न-एक दिन मरूँगा ।’

‘मुनहसर मरने पै हो जिसकी उम्मीद,
नाउम्मीदी उसकी देखा चाहिये ।’

सुलोचने ! मुझे अच्छी तरह मालूम है, कि हमारे और

तुम्हारे बीच समाज, जात और दीगर वजूहातका एक बसीअ समुन्दर बेतहाशा मौजे मार रहा है, एक बौना चाँदको मुठ्ठीमें बन्द कर लेनेकी बेहद कोशिश कर रहा है ; फिर भी दिलकी सलतनतमें ऊँच-नीच, अमीर-गरीबका ख्याल नहीं होता । भगवान उसीका होता है, जिसमें पाक इबादतकी लव होती है । तुम्हारी सूरत और सीरत दोनोंका मैं तो अन्धा पुजारी हूँ, क्या मेरे अरमानोंकी देवि ! कभो मुझे भी जोभरके पूजा करनेकी इजाजत होगी ? दस्ते मुकद्दसको चूमते हुए एक बार, सिर्फ एक बार तुमसे सुनना नसीब होगा ?

‘पुजारी मन्दिरमें आओ ।’

तुम्हारा पुजारी

—राजकुमार

सुन्दरपुर,

श्रीनगर,

.....

.....कुमार !

सप्रेम बन्दे । खत मिला ; निहायत मशकूर हूँ । सचमुच तुम मुस्सविर हो कुमार ! आँखोंमें एक सूरत नाचने लगी, सोये हुए दिली जजबातको नामेने फिफोड़के जगा दिया और मैं चौँकके अतराफमें नजरसानी की ; गौर तलब हुई, तो मालूम हुआ, कि कोई मेरे हाथोंको चूमके जैसे कोई किसी नई दुल्हनके कानोंमें साँय-साँय मुहब्बतका पहला पाठ पढ़ा रहा हो । वह दुल्हन भी ऐसी

अल्हड़ और बेसमझ जिसपर कभी भी मुहब्बतके सूरजकी किरनें नहीं पड़ीं, गरीबने सिर्फ पहाड़ीकी तलैटियों और नदियोंकी छातीपर खेलती हुई चाँदनीकी अठखेलियाँ देखी है। अब तो मैं भी महसूस करने लगी हूँ।

‘तान वाशद चीजके, मरदुम न गोयद चीजहा।’

जबतक किसी बातमें असलियत नहीं होती, इन्सान उसे बढ़ाके नहीं कहता ! सचमुच मुहब्बत ऐसी शै है, इसमें इतना नशा है, कि आदमीको बेहोश और मदहोश बना देता है। साँपके काटेका तो उतार ; जहरकी दवा, सुनी है, लेकिन इस लामालूम मर्जका इलाज क्या है ? मैं खुद नहीं जानती। जनाव फरमाते हैं ; कूँएमें गिरा, निकल न सका, लेकिन उस कूँएका पानी अब तो सिर्फ तुम्हारे हाथ है, कितना पानी है, कैसा पानी है, यह मेरे तहरीरकी चीज नहीं ; हुजूर खुद अपने फरायज समझ लें। आबदार मोतीकी परख जौहरी ही कर सकता है। जब एक बादशाह सिर्फ मुहब्बतके पानीकी हिफाजतमें एक दुनियाकी सलतनत को बालाये ताक रख सकता है, ठुकरा सकता है, तो क्या एक राजकुमारसे यह भी उम्मीद न की जाये, जहाँ उनके यहाँ कितनी ही खादिमा वसरोचशम खिदमतमें मौजूद हों, वहाँ इसे भी दस्त-वस्तह हुक्मबरदारीका मौका दिया जाये। क्या मैं इतनी खुशनसीब हूँ, कि हुजूरके कदमनियाजीका फख्र वन्दीको भी हासिल होगा ?

कुमार ! तुमने मुहब्बतका इतना सुहावना तराना गाया, कि मेरे दिलकी बीना खुदबखुद बेखुदीमें बज उठी। जब जरा इधर गौर तलब होके कानोंको लगाके सुनती हूँ, तब वही तुम्हारी खुश-

अलहान रागिनी सुनाई देती है। तुमने कालेजमें गाया था—

‘प्रेम डगरिया महा अगम है, भूल न रखना पाँव।

तन मन धनकी वलिये चाहे, कभू न लीजे नाव ॥’

हाँ, इतनी तमीज नहीं है, तुम इसे कालेजके छेजपर गा रहे हो, या मेरे मनमें। बुरी हो, उस साइतकी, जब मैं कालेजके गर्ल एसोसियेशनकी ओरसे तुम्हें ‘वन्देमातरम्’ के हीरोका बेहतरीन पार्ट अदा करनेपर मुबारकबादी देने गई थी। साफ करना कुमार ! मैं समझती थी, कि मैं भी कुदरतकी फुलवारीके चमनका एक बेमिसाल गुल हूँ। लेकिन हाँ, तुम्हें भी कुदरतने हर नाजनीके लिये एक युसुफ बनाया है, जिसके कदमोंपर मेरे जैसे बेशुमार गुल हजार बार न्योछावर किये जायें, तो भी कम है।

नामा फरमाता है, कि तुम पुजारी हो, किसकी ? पाक मुव्वतकी, तो मेहरवान ! मुझे भी साथमें पुजारिन बना लें, फिर तो एक नई दुनिया तय्यार होगी, जिसमें सोजिश, जलन, दर्द, नाउम्मीदी और फुरकतकी तकलीफोंका नामोनिशान न होगा। क्या इतनी नवाजिश कर सकते हो कुमार ! तुम तो किसीकी तसवीर और तसव्वरसे निगोड़ी आँखों और बेकरार दिलको समझा भी लेते होगे, पर यहाँ तो दिल और आँखोंकी लड़ाईने कयामत वरपा कर रखा है। दिलके दर्दने नींद हराम कर दी है। उस दिन कमरेमें बैठी हुई थी और तुम्हारा मजमून चाँदमें देखा, तो दिल रामने सिसकियाँ शुरू कर दी। बेचारी आँखें घबरा उठीं, उन्हें कभी-कभी ख्वाबमें नियाज हासिल होता रहा, लेकिन हौलदिलसे सहा न गया, उसने गरीबोंकी नींद हराम कर दी। बेचारी कहने लगी—

‘नींद भी फुरकत में खा बैठी हैं, आनेकी कसम ।
खाबमें भी देखनेका, आसरा जाता रहा ॥’

कुमार ! मुझसे न पूछो, कि इसकी दवा क्या है, जिस मर्जमें
हुजूर मुव्तला है, वही बला मेरे भी गलेकी फाँसी है । यह फाँसी
तो तभी कट सकती है, जब महाराजकुमारकी नेक नजर हो ।
वालिदैनको मैं राजी कर लूँगी, सिर्फ तुम्हारी हाँकी जरूरत है,
वराय मेहरवानी वह ग्रूपवाले फोटोको एक कापी एनायत हो,
ममनून हूँगी । दुनिया काश्मीरकी सैर करने आती है और हुजूर
ताज महलकी रौनक बढ़ा रहे हैं, कहीं किसीसे.....लड़ न जाये,
मनचलोंकी कौन कहे, बन्दी तो दोनों हाथ उठाके दुआ करती है ।

जिसने दिया है दर्द दिल...उसका भला करे ।

खादिमा.....

—सुलोचनी ।

ताज महल

.....

१८-५-३८

.....!!

खत मिला, खुशीका क्या ठिकाना, गोया गूँगेको शीरनी दी
गई ; अन्धेके सामने कुदरतके नजारह की नुमाइश खोल दी गई,
दीवानेके हाथमें दागका दीवान दे दिया गया ; राहे मुहब्बतके
मायूस मुसाफिरसे कहा गया, कि जिन्दगी की मञ्जिलका आखिरी
पड़ाव पासमें है ; हिम्मतसे काम लो ; सत्रको साथी बनाके आगे

बढ़ो ; सारी मुसीबतें मिट जायेंगी । क्या यह सच है, कि यह तुम्हारा ही खत है और तुम्हारे ही हाथों लिखा गया !! मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है, गोया मैं एक सपना देख रहा हूँ, जिसका कोई वजूद नहीं । शायद मेरे जुनूनने कुछ ऐसी सूरत अख्तियार की है, कि मैं अपने खतका जवाब खुद-बखुद वैसा ही पढ़ रहा हूँ, जैसे मेरे ख्यालात दिल और दिमागमें चक्कर काट रहे हैं । डर तो यह है, कि लोग मुझपर शुबहा करने लग गये हैं । भूक नहीं, प्यास नहीं, नींद नहीं ; न तो कपड़े पहननेका शौक और न टहलनेकी जुर्रत । कुछ अजीबपरेशानो है ; बेहोशीकी हालतमें जिन्दगीका बार लिये जीता हूँ । अरमानोंका अम्बार लगा हुआ है ; नहीं मालूम, कि हसरतोंके तूफानमें जिन्दगीकी किश्ती किस घाट लगेगी ?

सबसे बड़े सर्जन आते हैं, फेफड़ेकी कमजोरी, खूनको पानी, मीठा बुखार, और न जाने क्या-क्या मर्ज बताते हैं । नौकर-चाकर, घरवाले, दोस्त अहबाव मेरी सेहतके लिए रात-दिन परेशान हैं, दवा-दारूके लिये रुपये पानीकी तरह खर्च किये जाते हैं । बलाकी खूबसूरत दाइयाँ रात-दिन मेरी हिफाजतके लिये थर्मामीटर और दवाकी शीशी लिये तय्यार हैं, मिलने-जुलनेवालों का भी हुजूम है, लेकिन मेरी बीमारी क्या है ? किसीको खबर नहीं । सुलोचने ! तुम खादिमा नहीं, दिलकी महारानी बन सकती हो । तुमने लिखा है, कि एक बादशाह मुहब्बतकी राहमें कवी और साबित कदम रहनेके लिए सलतनतको ठुकरा दिया । बेशक !! मैंने तो जानकी बाजी लगाई है, शायद इससे बढ़कर प्यारी शौ दुनियाके परदेपर नहीं । तुम्हारो हाँ में मेरी जिन्दगी, राहत सब-

कुछ है ; तुम्हारे नहींमें हसरतों और उम्मीदोंकी पामाली है ।
 बुरा न मानो तो एक बार यहाँ जरूर आओ । वालिदैनको समझा
 लो, कि तुम्हारा एक क्वासफ्रेण्ड सख्त बीमार है, उसे एक बार
 देख लेनेकी इजाजत दी जाये । अगर मुनासिब समझो, तो उन्हें
 भी साथ लाओ ।

कहते हैं, कि मुहब्बत अन्धी होती है, फिर इस अन्धीके पीछे
 इन्सान अपना सब कुछ कुर्बान करते हुए क्यों पागल बनता है ?
 क्या नफस अम्बारी ही मुहब्बतकी इन्तहा है ? मेरे ख्याले नाकिस
 में मुहब्बत वह पाक शै है, जो दो दिलोंमें एक ही वक्त और एक
 ही तरहकी हरकत पैदा करे । क्या इसे तुमने भी कभी महसूस
 किया है ?

यह खत मैं रातके सन्नाटेमें लिख रहा हूँ, तमाम दुनिया सो
 रही है । सिर्फ मैं जागता हूँ और सामने तुम्हारी तस्वीर है ।
 बार-बार ऐसा ख्याल हो रहा है, गोया तुम कुछ कहना चाहती हो,
 तुम्हारे होंठ हिल रहे हैं ; आँखोंकी पुतलियाँ मुझे देख रहीं हैं ;
 हल्की-सी मुस्कीने तुम्हारी खूबीको दो बाला बना दिया है ; काश
 तुम पास होती, तो यकीनन मेरी सेहत अच्छी होती । उम्मीद
 है, कि तुम जरूर आके अपनी मसीहाई ताकतसे मुझे बचाओगी ।
 इससे ज्यादा लिखनेकी हिम्मत नहीं ; हाथ काँप रहा है, अगर
 जिन्दा रहा तो फिर.....

तुम्हारा

—राजकुमार ।

*it is same
 that I am
 in blind
 But now it
 is opposite to
 that*

श्री नगर

.....

२७-८-३८

.....श्वर कुमार !

एनायत नामा मिला, मशकूर हुई । सेहत और घबराहटकी बातें पढ़कर निहायत रंज हुआ । इतना परेशान और हैरान होनेकी जरूरत नहीं । मैं तो अर्ज कर चुकी हूँ । माना आजादीका जमाना है ; फिर भी रस्म-रिवाज कोई चीज है । मेरी हस्ती और हैसियत नहीं, कि कुमारके दस्तयाबीकी तमन्ना करूँ । मैंने माताजी से सारी कहानी बयान कर दी तो उन्होंने पिताजीको सुना दी । उन्होंने मुझसे पूछा, तो मैंने सर झुका लिया । 'खामोशी नीम रजा' वाली बात हुई । कुमार बरहमन हैं, मैं राजपूतिन हूँ, क्या हमारे तअल्लुकात खान्दानके लिये एक धब्बेका वायस न होगा ? क्या तालुकके दोगर मूरिस और कुनवेके और लोग हमारी शादीको पसन्द करेंगे ? मेरे वालिदैन अन्तर्जातीय विवाहमें एतकाद रखते हैं और इस उसूलके कायल हैं, पर उधरसे क्या होगा ? जरा सोचनेकी बात है । हम लोग तालीमयाफता हैं, क्या इस बीसवी सदीमें दकियानूसी खयालात हमारे तअल्लुकातमें रोड़े अटका सकते हैं ? मैंने तयकर लिया है, कि जल्द-से-जल्द मैं आपकी खिदमत बजा लाऊँगी, लेकिन हमेशा मद्दे नजर रखना होगा, कि 'चार दिनाकी चाँदनी, फिर अन्धेरा पाख' न हो । मैंने तवारीख और नावेलोंमें पढ़ा है, कि पहले जॉनिसारी और कुरबानीकी रवायतें खूब सुनी जाती हैं ; लेकिन जहाँ दिलके ऊपर कब्जा हो गया, वहीं तोते-चश्मी अख्तियार कर ली गई ।

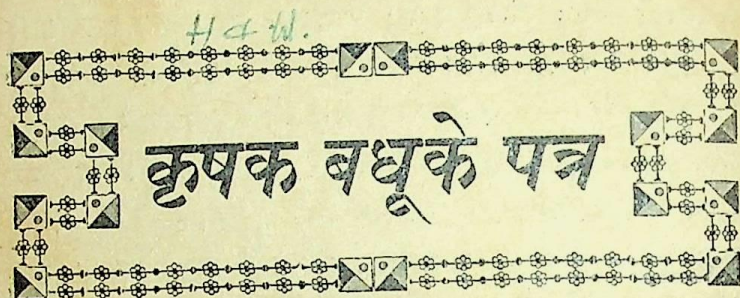
साफ कीजियेगा, कुमार ! मैं औरत हूँ, हजार पदी-लिखी और आजाद तबीयत रखनेपर भी हिन्दुस्तानकी बेटी हूँ। मेरी असमतकी कीमत दौलत नहीं; सनतनत नहीं, नफस अम्बारी नहीं, दुनियाका ऐशोअराम नहीं। मैं चाहती हूँ, कि एकको अपना पति चुनूँ और ताजिन्दगी उसकी खिदमत बजा लाऊँ। पहले खतमें अपने दिली मुद्दआका इजहार कर चुकी हूँ। बार-बार उसका जिक्र लाना तहजीबके खिलाफ होगा। साफ तो यूँ है, कि मैं कुमारके साथ हर तरहसे हमदर्दी रखती हूँ, इन्सानियतके नाते, क्रासफ्रेण्डके नाते और भलमनसाहतके नाते सब तरह खिदमत करनेके लिये तय्यार हूँ।

हुजूर ! इसका यह मतलब न लगा बैठें, कि मैं अपने खयाल को बदल रही हूँ, या आपकी गिरी हुई तबीयत या आजारीका नाजायज फायदा उठानेकी ताकमें हूँ। मैं साफगोईसे काम ले रही हूँ। मैं कुमारकी हूँ, कुमार मेरे हैं, अभीतक तो यही जानती और समझती हूँ, लेकिन दुनियाकी अंगुशतनुमाईसे जरा डरती हूँ। तन्दुरुस्तीपर खयाल रखें, मैं भी हाजिर आती हूँ। कुमारकी मेहरवानी और यादकी दोबारा मशकूर हूँ। ईश्वरने चाहा तो दूसरे खतके साथ ही बन्दी भी कदमोंमें मौजूद होगी।

वही खादिमा

—सुलोचना।

[नोट:—ऊपरके खतोंमें अरबी और फारसीके बहुतेरे आम बोल-चालके शब्द आये हैं, उनके नीचे-ऊपरके नुक्ते नहीं लगाके उन्हें अपने साँचेमें ढाल लिया गया है।—सं०]



[लेखक—सीताराम वर्मा]

स्वामी,

मुझे तुम्हारे घर आये अभी कुछ ही दिन हुए। मैं क्या जानती थी कि मेरा दुर्भाग्य नैहरसे ही मेरा पोछा कर रहा है। मेरे हाथोंमें मेंहदीकी लाली अभी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। मेरी चूनरोकै दाग अभी ज्यों-की-त्यों वर्तमान हैं। घूँघट उठाकर अभी मैंने सासके चरणोंके सिवा किसीका मुँह भी नहीं देखा, परन्तु आज एक विरहणोकी तरह मुझे तुम्हें खत लिखना पड़ रहा है।

मैं क्या जानती थी कि मेरे आते ही आते महाजनोका इतना तकाजा शुरू हो जायगा और तुम्हें मेरी अभिलाषा पूरी किये बिना ही कलकत्ता भाग जाना पड़ेगा। यहाँकी हालत क्या लिखूँ, जबसे तुम गये 'मैनी' गायने दूध देना बन्द कर दिया है। वह तुम्हारे ही हाथ लगती थी, अब उसे दूधे कौन ? पिताजी वृद्ध हो ठहरे। दूसरेको देखते ही वह झुल्ला उठती है। माताजी कहती थीं, मैनीका दूध ही नमक और तेलका सहारा था ; वह भी बन्द

हो गया। खेती भी सूख रही है। मजदूर कहाँ मिलें जब पिताजी-के पास पैसे ही नहीं हैं; और बदलेपर कौन आवे, जब उनका बदला चुकानेवाला घरपर कोई हई नहीं है।

कल पड़ोसकी चाची आई थीं, मेरा मुँह देखने। बड़ी हँसोड़ हैं। वह तुम्हारा नाम लेकर कहने लगीं, कैसे बाहर रहेगा ऐसी सुन्दर बहूको छोड़कर; मैं तो लाजके मारे मर गई। मेरा वह सारा दिन तुम्हारे ही चिन्तनमें बीता। उस दिन, जब दिन-भरकी रोई हुई अनजान जगहमें उदास और सुस्त पड़ी थी, तब तुम अचानक घरमें आये और अपने साथ न-जानें कैसा जादू लाये, कितनी मदिरा लाये, यद्यपि इस तरहकी कोई भी चीज तुम्हारे साथ न थी, पर वह सब चीजें थीं जिसे पाकर मैं आत्म-विभोर हो उठी। अपना सर्वस्व अनायास तुम्हारे हाथों लुटा बैठी। बन गई वेदामकी गुलाम।

मैं क्या कहूँ। मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है। तुम्हारा प्रेम, मेरा अपने हृदयका उमङ्ग, चाहता है कि लिख दूँ, खत देखते ही वहाँ-से चल दो। भोजन यदि वहाँ करना तो हाथ मैं यहाँ धुला दूँगी, पर जब यह खयाल आता है कि निष्ठुर महाजन और जमींदार तुम्हें देखते ही तुम्हारे ऊपर पागल कुत्तेकी तरह दूट पड़ेंगे तो मनको ढाढस देती हूँ और कलेजेको थामकर कहती हूँ अच्छा हुआ जो तुम घर छोड़कर चले गये।

सबसे अच्छा तो यह होता, हमलोग यह गाँव छोड़ देते और कलकत्ता या काशी कहीं चलकर मजदूरी करके पेट पालते। क्या हम-तुम मजदूरी करके माताजी और पिताजीके खाने-भर-का भी न कमा सकते?

अपना देश परित्याग करनेसे जो कष्ट होता है उसे मैं जानती हूँ ; पर उस नगरमें रहकर क्या होगा जहाँ आये दिन हम गरीब पीटे जायें । हम अपने घरमें एक साथ रोटी खाना तो दर किनार उपवास भी न करने पायें ।

मैं अपनी बात कहूँ । मुझे तो जंगलोंमें काँटोंपर चलना पड़े, उपवासपर उपवास करके यह प्राण गँवा देना पड़े, चाहे पेड़की खाल और पत्तोंसे ही शरीर ढकना पड़े, पर हमें तुम्हारे साथ रहना पड़े और तुम्हारे चरणोंकी धूल भाड़नी पड़े ।

तुम्हारी दासी

सुशीला

मेरे हृदयकी रानी, मेरे जीवनकी सहचरी,

तुम्हारी चिट्ठी मिली । सहसा तुम्हारा चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर मुख सामने प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगा । उस दिन जब खाली खाटपर सोनेके कारण तुम्हारे बदनपर निशान पड़ आये थे और मैंने उन्हें गिन-गिनकर मिटाया था, तब तुमने कहा था, मेरे बदनमें इस तरहके अगणित निशान होते और तुम उन्हें इसी तरह सदा मिटाते रहते ।

मैं जानता हूँ, मेरे घरमें एक जूनका खाना भी नहीं है । मेरे सरपर महाजनोंका भूत सदा सवार रहता है, जिसके कारण माता-पिता तथा प्राणोंसे भी अधिक प्यारी तुम्हें छोड़कर इस दूर देशमें निस्सहाय मारा-मारा फिर रहा हूँ । पर मेरे घरमें है एक अनमोल रत्न जिसके बदले सारी दुनियाकी दौलत भी मैं ठुकरा

दूँगा। मेरे घरमें है एक देदीप्यमान निर्मल ज्योति जिससे मेरा हृदय और मेरा अन्धेरा घर सदा प्रकाशमान रहता है। वह और कोई नहीं, वह हो तुम ! मेरे हृदयकी रानी !

मैंनी गाय अब तुम दूहो। तुम्हें देखकर जब देवता भी निहाल हो जाते हैं तब मैंनी तुम्हारा पुचकार पाकर गदगद हो उठेगी और दूधकी नदी बहा देगी।

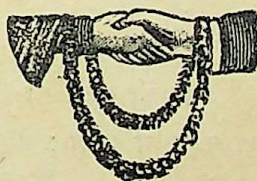
तुम्हारी चिट्ठीपर मैं विचार कर रहा हूँ। तुम्हारी राय सब माननेको तैयार हूँ। जहाँ मेरा कहीं ठीक ठेकाना हुआ तुरत महाजनोंका रुपया भेजूँगा।

खेती खराब न हो ऐसा कोई उपाय करना। अपना पूरा हाल मैं तुम्हें दूसरी बार लिखूँगा।

तुम्हारा पवित्र स्नेह हमारा और तुम्हारा सदा कल्याण करेगा।

तुम्हारा पति

चंचरीक



प्रेमिकाकी चिट्ठीका

उत्तर

[लेखक—कविवर 'चंचरीक']

(यह प्रेम-पत्र कपोल-कल्पित नहीं, बिल्कुल सच्चा है । इसकी लाइन २में कितनी सौम्यता और सरलता है ! दोनों ओर-से प्रेम-विभोर होनेकी मस्तीमें तारीख लिखनेकी भूल हुई है । ऐसी भूलें तो प्रेमियोंके लिये अनिवार्य हैं ।—सं०)

काशी-कैलास

.....३७

श्रीमन्,

प्रेम—

मैं कुशल-क्षेमसे हूँ, आपकी कुशलता चाहती हूँ । आपका कृपा-पत्र भट्टजीके द्वारा उपलब्ध हुआ । और आज एक सुन्दर कविता भी श्री पाण्डेयजीके सुन्दर हाथोंसे मिली । क्षमा कीजियेगा, मैंने आपके पहले पत्रका उत्तर नहीं दिया, कुछ ऐसे ही

कारणवश । इससे आप यह न समझियेगा कि मैं आपको भूल गई हूँ । भला आप कभी भूलनेवाले हैं ? आपने तो मेरे हृदयमें साहित्यका सरोवर बहा दिया है । राष्ट्रीयताका शंख फूँक दिया है । इसके लिये सप्रेम मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिये ।

आपके दर्शनोंकी इच्छा है । देखें, उसे ईश्वर कब पूरा करता है ।

आपकी वही—

शैल ।

गोरखपुर

.....३७

स्नेहमयी श्रीमतीजी,

प्रेम—

[१]

प्रिय प्रेम-पत्र प्रेमीके हाथोंसे मैंने पाया ।
पाते ही हर्षित होकर छातीसे उसे लगाया ॥
पढ़ते ही पढ़ते-पढ़ते आनन्द लहर लहराई ।
मानो सहसा खोई निधि जिसने अपनी हो पाई ॥

[२]

है प्रेम-पत्र वा किम्बा ? जादू है ! उच्चाटन है !
है यन्त्र अनोखा कोई ? वा तन्त्र-मन्त्र मारन है !!
पहचाना इन आँखोंने—कर-कमलोंका वह लिखना !
जागृतमें उसको पाकर, मैं देख रहा हूँ सपना !!

[३]

वह भूली नहीं हमें है नित प्रतिकी सारी बातें !
 आशाकी आशामें ही कितनी बीती हैं रातें !!
 संगीत-काव्य धारामें था गोता निसि दिन लगता !
 भागती अमाकी रजनी, 'पूणिमा' हमेशा रहता !!

[४]

प्रेयसि ! मेरी लम्बी है जीवनकी कण्ठ-कहानी ।
 कुछ छिपी नहीं है तुमसे, जो ठान इधर है ठानी ॥
 जपता रहता हूँ निशि दिन तेरे नामोंकी माला ।
 पीनेको सदा तरसता, मस्तीका मनहर प्याला ॥

[५]

इस जीवन-युगमें मैंने कितने धक्के हैं खाये !
 अपने दिलकी भट्टीमें रहता हूँ आग छिपाये !!
 मुझको विश्वास नहीं है मेरा संसार बसेगा !
 मेरे सूखे आँगनमें क्या कभी मेह बरसेगा !!

[६]

जगमग वह ज्योति तुम्हारी आँखोंमें नित रहती है !
 वेदना, कसक ले करके, अन्तर तरमें चठती है !!
 जीमें आता है केवल, बस साथ तुम्हारे डोलूँ !
 हो बन्द हृदयके भीतर रसकी वह टंकी खोलूँ !!

[७]

मैं रस-लोभी भौंरा हूँ तुम मंजु कमलिनी-रानी !
 बस मुझे क्षमा दे देना, यदि कर बैठूँ नादानी !!
 मेरी भी तो इच्छा है, दर्शनकी प्रेम-मिलनकी !
 चातक बन सदा तड़पता, है होश नहीं तनमनकी !!

[८]

प्रेयसि ! बड़भागी है वह चिट्ठीका लानेवाला !
 भूमता सदा मस्तीमें रसका बरसानेवाला !
 कितना सुन्दर मनहर है वह प्यारा काकुलवाला !
 उसने तो खूब निवाहा, बन करके 'दूत' निराला !!

[९]

अपनी यह जीवन नइया दी मैंने छोड़ लहरमें !
 तेजीसे उछल रही है, पड़ करके कठिन भँवरमें !!
 बस केवल हाथोंमें है इसका पतवार तुम्हारे !
 मझधार डुबा दो चाहे, वा कर दो इसे किनारे !!

[१०]

प्रेयसि, तुम सुखसे रहना, ईश्वरसे यही विनय है ।
 है ध्येय हमारा पक्का तेरे ही लयमें लय है !!
 अब अधिक नहीं लिख सकता, हूँ बंद लेखनी करता
 मतवाला पागल होकर पीड़ासे पीड़ित रहता !!

आपका भूला हुआ—

'चंचरीक'

स्त्रीकी दर्द भरी चिट्ठियाँ

[लेखिका—श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान]

शहरमें प्लेग था। लोग धड़ाधड़ मर रहे थे। बीमारी भी ऐसी थी—बीमार पड़ते ही लाश निकलते देरी न लगती। सब लोग शहर छोड़-छोड़कर बाहर बँगलोंमें या भोपड़े बनाकर रहनेके लिए भागने लगे। न चाहते हुए मुझे शहर छोड़ना पड़ा। मुझे यहाँसे वहाँ भागना अच्छा न लगता था। घरमें मैंने सबको प्लेग का टीका लगवा दिया था और शामको ५-५ बूँद प्लेगक्योर भी पिला दिया करता था। इच्छा थी कि शहरमें ही बना रहूँ। कौन यहाँसे वहाँ भागनेकी भंभट करे। वैसे ही खर्चके मारे हैरान था। फिर और लोगोंकी तरह मैं भोपड़ा बनाकर भी तो न रह सकता था। वकालतकी शानमें फरक न पड़ जाता ? रहना तो मुझे बँगलेपर ही पड़ेगा, और इन दिनों बँगलेके मालिकोंका दिमाग तो सातवें आसमानपर ही रहता है—(१००), (७५) और (५०) से नीचे तो वह बात ही नहीं करते। फिर आज-कल-

की आमदनीमें किरायेका कम-से-कम ५०) माहवारी ही रख लो तो ४ महीनेमें २००) हो जाते हैं। मुश्किल ही समझो, पर करता क्या ? अपने प्रयत्नभर तो मैंने शहरमें ही रहे आनेकी कोशिश की, पर मेरी खी न मानी। उसने, जबतक मैं मकान बदलकर बँगलेपर रहने न चला गया, मेरा खाना-पीना और सोना हराम कर दिया। उसकी एक जरा-सी बच्ची थी, जिसके लिए वह इतनी व्याकुल रहती—जैसे सारे शहर-भरका प्लेग उसीपर फट पड़ेगा।

X

X

X

कचहरीकी छुट्टी थी। मैं अपने आफिसवाले कमरेमें एक नौकरकी सहायतासे अपनी कानूनकी किताबें जमा रहा था। कमरेमें कई आलमारियाँ थीं। मैं उन्हें साफ करवाके वहाँ अपनी पुस्तकें और अन्य वस्तुएँ तरतीबवार रखवा रहा था। उन आलमारियोंसे रही कागजोंके साथ एक लिफाफा भी वजनमें जरा भारी होनेके कारण खटसे नीचे गिर पड़ा। मैंने उसे गिरते देखा, किन्तु उदासीन भावसे फिर अपने काममें लग गया। मैं कमरेसे बाहर जाने लगा—लिफाफा फिर मेरे पैरोंसे टकराया, इस बार मैंने उसे उठा लिया, उठाकर देखा तो ऊपर किसीका भी पता तो न था, पर वह मजबूत डोरेसे कसकर बाँधा गया था और गाँठके ऊपर चपड़ेसे सील लगी हुई थी। लिफाफेको उठाकर मैंने जबमें रख लिया। दिनभर कार्यकी अधिकताके कारण मुझे उसकी याद ही न रही।

[२]

शामको जब मैं भोजन करके लेटा तो क्रम-क्रमसे दिन-भर-

की घटनाओं पर विचार करने लगा। एकाएक मुझे उस लिफाफे की याद आ गई। मैंने बिस्तर से उठकर कोट के जेब से लिफाफा निकाला और कैंची से धागे को काटकर सावधानी से खोला, देखा तो उसमें किसी स्त्री के लिखे हुए कुछ पत्र थे। उत्सुकता और बढ़ी। मैंने पत्रों को तारीखवार पढ़ना आरम्भ किया। पहला पत्र इस प्रकार था।

शान्ति-सरोवर

१९१३१

मेरे देवता !

मुझे मालूम है कि आप मुझसे नाराज हैं। थोड़ा भी नहीं बहुत अधिक। यहाँ तक कि आप दो अक्षर लिखकर अपना कुशल-समाचार देना भी उचित नहीं समझते। आपकी इस नाराजी का कारण भी मुझसे छिपा नहीं है।

मैं ही जानती हूँ कि किन परिस्थितियों में पड़कर मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर रही हूँ। यदि आप मेरे स्थान पर होते तो आप भी वही करते, जो मैं करती हूँ।

अन्त में मैं आपसे यही निवेदन करती हूँ कि आप मुझसे नाराज न हों। अपने कुशल-समाचार का पत्र भेजकर अनु-गृहीत करें।

आपकी ही—

प्रमीला

पत्र २

शान्ति-सरोवर

१०।९।३१

मेरे सर्वस्व ! °

उस दिन पत्र भेजकर कई दिनों तक उत्तरकी प्रतीक्षा करती रही, किन्तु आज तक आपका एक भी पत्र नहीं मिला। उत्सुक नेत्रोंसे रोज पोस्टमैनकी राह देखती हूँ। वह आता है और मेरे दरवाजेकी तरफ बिना ही मुड़े हुए चला जाता है। सबके पास चिट्ठियाँ आती हैं, परन्तु मेरे पत्थरके देवता ! आप न पसीजे। आपके पत्र एक भी न आए, न-जाने कितने तरहके विचार आपके दिमागमें आते और जाते होंगे, और आप न-जाने क्या क्या सोच रहे होंगे। कदाचित् आप सोचते हों कि मैं बड़ी अकृतज्ञ, मूर्खा और अभिमानिनी हूँ ; जिन लोगोंने मेरे साथ इतनी भलाई की, मुझे सर आँखोंपर रखवा, उन्हींके साथ मैं कृतघ्नता कर रही हूँ। यही है न ? किन्तु मैं क्या करूँ ? मैं परवश हूँ। पत्रमें कुछ लिख नहीं सकती। यदि आप कभी मुझसे मिलनेका कष्ट करेंगे, अपने चरणोंके दर्शनका सौभाग्य देंगे, तब मैं आपके चरणोंपर सर रखकर आपको समझा दूँगी—आपको बतला दूँगी कि मैं अपराधिनी नहीं हूँ ; तब आप जान सकेंगे कि मैं कितनी विवश और कितनी निरुपाय हूँ। नाराज तो उसीसे हुआ जाता है जो नाराजी सह सके। समय पाकर चरणोंपर सर रखकर अपने अपराधोंको क्षमा करवा सके। किन्तु आप नाराज हैं ? मुझसे ! जो न-जाने कितने मीलकी दूरीपर है। जो हर प्रकारसे विवश है, जिसे आपको छूने तकका अधिकार नहीं, जो केवल आपकी

कृपादृष्टिको भिखारिणो है। आह ! यदि आप मेरी विवशताका कुछ भी अनुभव करते...

आप मुझसे हँसकर बात करते हैं, मैं हँस देती हूँ, अपने-को धन्य समझती हूँ। कलसे आप मुझसे बात ही न करना चाहें तो मैं आपका क्या कर सकती हूँ ? मुझे क्या अधिकार है सिवा इसके कि कलेजेपर पत्थर रखकर, सब चुपचाप सह लूँ। मैं खुलकर रो भी तो नहीं सकती। मुझे इतना भी तो अधिकार नहीं है। आपने नाराज होकर पत्र लिखना बन्द कर दिया है, कल यदि आपको मेरी शक्लसे भी नफरत हो जाय तो भला सिवा रोनेके मेरे पास और क्या बच रहेगा। मुझ सरीखी तो आपके घर चार दासियाँ होंगी। किन्तु मेरा दुनियाँ में कौन है ? मैं तो घर-बाहरकी ठुकराई हुई अभागिनी अबला हूँ। आपने दया करके मुझे सम्मान, आदर और अपने हृदयमें आश्रय दिया है। उसे इस निर्दयतासे न छीनिये। एक बार मुझसे मिल लीजिए। इसके बाद जैसी आपकी धारणा हो वैसा कीजिये। आप मुझे जिस दंडकी अधिकारिणी समझेंगे मैं उसे सहनेके लिए तैयार हूँ। यदि आप मुझे अपने चरणोंसे दूर कर देंगे तब भी मैं आपकी ही रहूँगी। समाजकी आँखोंमें नहीं, किन्तु अपनी और परमात्माकी आँखोंमें ! आप मुझे भले ही अपनी न समझें, परन्तु मैं तो आजीवन आपको देवताकी तरह पूजती रहूँगी। मेरा अटल विश्वास है कि आप सबके होनेके बाद, थोड़ेसे मेरे भी हैं। कभी साल-छः महोनेमें मिनट-दो-मिनटके लिए ही सही, मुझे भी आपके चरणोंकी सेवा करनेका अधिकार है।

उत्तरकी प्रतीक्षामें

अभागिनी प्रमीला

पत्र ३

शान्ति-सरोवर

३०।९।३१

मेरे स्वामी !

यह तो हो ही नहीं सकता कि मेरे पत्र आपको मिलते ही न हों। क्षण-भरके लिए यह मान भी लिया कि मेरे पत्र आपको मिले ही नहीं। फिर भी क्या एक कार्डपर दो शब्द लिखकर आप मेरे पत्र न भेजनेका कारण न पूछ सकते थे ? खैर, आप अपनी मनमानी कर लीजिये। मैं हूँ भी इसीके योग्य, कहा भी गया है—जैसा देव वैसी पूजा। आपने मुझे ठुकराकर, मेरी अवहेलना करके उचित ही किया है। इसमें मैं आपको दोष कैसे दूँ ? जिसका जन्म ही अपमान, अवहेलना और अनादर सहनेके लिये हुआ हो वह उससे अधिक अच्छी वस्तुकी आशा ही क्यों करे ? मैं अपने आपको भूल गई थी। आज मेरी आँखें खुल गई। मुझे अपनी थाह मिल गई। मेरी समझमें आ गया कि मैं कहाँ हूँ।

परमात्माने स्त्री-जातिके हृदयमें इतना विश्वास, इतनी कोमलता और इतना प्रेम शायद इसीलिये भर दिया है कि वह पग-पगपर ठुकराई जावें। जिस देवताके चरणोंपर हम अपना सर्वस्व चढ़ाकर, केवल उसकी कृपा-दृष्टिकी भिखारिणी बनती हैं, वही हमारी तरफ आँख उठाकर देखनेमें भी अपना अपमान समझता है। माना कि मैं समाजकी आँखोंमें आपकी कोई नहीं। किन्तु एक बार अपना हृदय तो टटोलिये, और सच बतलाइये क्या मैं आपकी कोई नहीं हूँ। समाजके सामने अग्निको साक्षी देकर हम

विवाह-सूत्रमें अवश्य नहीं बँधे, किन्तु शिवजीकी मूर्तिके सामने भगवान शंकरको साक्षी बनाकर क्या आपने मुझे नहीं अपनाया था ? यह बात गलत तो नहीं । ? मैं जानती हूँ कि आप यदि मुझसे बिलकुल न बोलना चाहें, किसी तरहका भी सम्बन्ध न रखना चाहें तब भी मैं आपका कुछ नहीं कर सकती । यदि किसीसे कुछ कहने भी जाऊँ तो सिवा अपमान और तिरस्कारके मुझे क्या मिलेगा ? आपको तो कोई कुछ भी न कहेगा, आप फिर भी समाजमें सिर ऊँचा करके बैठ सकेंगे । किन्तु मेरे लिये कौन-सा स्थान रहेगा ? अभी एक रूखा-सूखा टुकड़ा खाकर जहाँ रातको सो रहती हूँ, फिर वहाँसे भी ठोकर मारकर निकाल दो जाऊँगी, और उसके बाद गली-गलीकी भिखारिन बन जानेके अतिरिक्त मेरे पास दूसरा क्या साधन बच रहेगा ? सम्भव है आप आज मुझे दुराचारिणी या पापिनी समझते हों ; और इसी-लिए बहुत सोच-विचारके बाद आपने मुझसे सम्बन्ध-त्यागमें ही कुशलता समझी हो, और पत्र लिखना बन्द कर दिया हो ।

खैर, आप मुझे कुछ भी समझें, किन्तु ऊपरसे परमात्मा देखता है कि मैं क्या हूँ ? दुराचारिणी हूँ या नहीं पापिनी हूँ या क्या ? इसका साक्षी तो ईश्वर ही है, मैं अपने मुँहसे अपनी सफाई क्या दूँ ? अबकेवल यही प्रार्थना है कि मुझे क्षमा करना, मेरी त्रुटियोंपर ध्यान न देना ; और कृपाकर मेरे पत्रका उत्तर भी न देना । क्योंकि अब आपका पत्र पढ़नेके लिये, शायद मैं संसार में भी न रहूँ ।

अभागिनी—

प्रमीला

[३]

पत्र पढ़कर मैंने एक ठंडी साँस ली और करबट बदली । देखा—न-जानें कबसे मेरी स्त्री सुशीला मेरे सिरहाने खड़ी है । मुझे देखते ही वह भागी, मैंने दौड़कर उसकी धोती पकड़ ली और उसे पलंगतक खींच लाया । उसे जबरन पलंगपर बैठाकर मैंने पूछा कि—‘तुम भागी क्यों जा रही थीं ?’

‘तुम बड़े कठोर हो’ उसने मुँह फेरे-ही-फेरे उत्तर दिया—

‘क्यों ?’ मैंने उसका मुँह अपनी तरफ फेरते हुए पूछा—

‘मैं कठोर कैसे हूँ ?’

अपनी आँखोंके आँसू पोंछती हुई वह बोलो—

‘यदि तुम निभा नहीं सकते थे, तो उस बेचारीको इस रास्ते-पर घसीटा ही क्यों ?’

मुझे हँसी आ गई, हालाँकि प्रमीलाके पत्रोंको पढ़नेके बाद, मेरे हृदयमें भी एक प्रकारका दर्द-सा हा रहा था । मुझे स्त्रियोंकी असहायता, उनकी विवशता और उनके कष्टोंसे बड़ी तीव्र, मार्मिक पीड़ा हो रही थी । मैंने किंचित् मुस्कराकर कहा—

‘पगली ! यह पत्र मेरे लिये नहीं लिखे गये ।’

उसकी भवों तन गईं, बोली—

‘तो भला छिपाते क्यों हो ? क्या मैं बुरा मानती हूँ ? बुरा मानती जरूर, यदि मैं प्रमीलाके पत्र न पढ़ चुकी होती । पत्र पढ़नेके बाद तो मुझे उसपर क्रोधके बदले दया ही आती है । तुम यदि मुझे उसका पता बता दो तो मैं स्वयं उसे यहाँ लिवा लाऊँ । बेचारीका जीवन कितना दुखी है ।’

मैंने कहा—‘भला मैंने कभी तुमसे झूठ भी बोला है ? यह

पत्र मुझे आज इसी कोठरीमें रही कागजोंमें मिले हैं। जिस लिफाफेमें ये बन्द थे वह भी यह है—देखो।' यह कहते हुए मैंने लिफाफा उठाकर सुशीलाके सामने रख दिया। सुशीलाने एक बार लिफाफेकी ओर, और फिर मेरी ओर देखते हुए कहा—
'तुम्हीं क्या, पुरुष मात्र ही कठोर होते हैं।'

संकुचित और विकसित प्रेम

[लेखक—छवीलेलाल गोस्वामि]

निम्नलिखित दोनों पत्रोंके पात्र—पति-पत्नी—अभी वर्तमान हैं और बीस वर्षसे उन्हीं उलझनोंमें दोनों हैं, जिनका जिक्र उभय पत्रोंमें है। हृदयोंके सच्चे उद्गार उपस्थित किये गये हैं।

प्रणाम,

विचार था कि तुम्हें कुछ न लिखूँ, पर जी नहीं माना; इसलिये टूटी-फूटी बातें लिख रही हूँ। तुम जब यहाँ रहते हो, तब मुझे बड़ी ही भूँझल आती है। तुम कितनी ही सोधी बात कहो, पर मुझे उसमें उलझन और बुराई ही नजर आती है। मैं बहुत प्रयत्न करती हूँ, किन्तु तुमसे मनका मेल नहीं हो

बैठता। ऐसा क्यों होता है, यह कुछ भी समझमें नहीं आता। मैं पहले दिनोंको याद करती हूँ, जब मैं एक छिन भी तुम्हें देखे बिना नहीं रह सकती थी और अब महीनों—बरसों—हो जाते हैं, पर कभी तुम्हारे लिये मन बेचैन नहीं होता। हाँ, यह सच है कि चाहती हूँ कि पहलेकी भाँति मैं तुम्हारे लिये तड़पूँ और जैसे पहले दिन-भरको भी कहीं तुम्हें नहीं जाने देती थी, वैसे ही अब भी अपनेसे दूर न होने दूँ, पर यह भाव कभी-कभी तभी उठता है, जब तुम दूर रहते हो। जब तुम्हारे आनेकी सूचना मिलती है, तब मनमें उठता है कि तुम क्यों आ रहे हो और वह भी इतनी जल्दी ! भले ही तुम मुद्दत बाद आ रहे हो और आने-पर स्वागत करना तो दूर रहा, मैं एक दो दिन सामने आनेमें भी हिचकती हूँ। ऐसा क्यों है, समझमें नहीं आता।

मेरी बहन-भावज और सखियाँ मुझे बहुत-बहुत समझाती और तुम्हें निर्दोष बनाती हैं। मैं उनकी बातोंसे हार जाती हूँ, पर मुझे उनपर बड़ी ही भ्रूझल आती है कि वे निगोड़ियाँ मुझसे अधिक तुम्हें क्यों चाहती हैं ? वे सभी तुम्हारे गुन-गान करती और तुम्हें देवता कहती हैं। बस, इसीसे मैं जल उठती हूँ। उन्हें उचित था कि तुम्हें भला-बुरा कहतीं और जो दोष तुममें मैं निकालती, उनका सर्थन करतीं ; पर ऐसा न करके जिन बातोंके लिये मैं नाराज होती हूँ, उन्हींको वे अच्छा बताती हैं। यह भी कोई बात है ! साथ ही, जब मैं उन लोगोंके दोष-गुणकी चर्चा करती हूँ, तब तुम उन्हींका पक्ष लेते हो। तुम्हें तो संसारमें कोई भी नारी बुरी नहीं दिखाई देती। सभीमें तुम लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गाका दर्शन पाते हो ! यह भी कोई अच्छी बात है !!

पहले तो तुम मुझमें ही संसारका दर्शन पाते थे, अब वह इतना फैल क्यों गया ? यह मेरी समझहीमें नहीं आता !!!

हाँ, एक बात और भी बड़ी ही उलझनकी है, वह यह कि तुम जिस बच्चेको पाते हो, उसीको प्यार करने लगते हो ! चाहे वह किसीकी सन्तान हो । जान-पहचान हो या न हो । इसमें न तो तुम्हें नीच-ऊँचका ध्यान रहता है और न गरीब-अमीरका । सफरमें गाड़ीके डब्बेमें जो भी बच्चा मिल गया, वह तुम्हारे सिर हो गया । यह सब मुझे तो अच्छा नहीं लगता । मेरी पड़ोसनोंके बच्चे बीमार हों और तुम उन्हें लाद-लादकर दवा कराने ले जाओ । जितना अपने बच्चोंका ध्यान नहीं उससे अधिक परायोंके लिये तुम करने लगते हो, यह कैसे सहा जाय ! पहले घरमें दिया बालकर, फिर मन्दिरमें जगाना चाहिये ।

अपने बच्चे भूखे हैं, नंगे हैं, बीमार हैं, कुछ परवा नहीं ! किसीको संकटमें देखा, और उसके साथ हो लिये । कर्जा लेकर दूसरोंका भला करना और फिर उसके लिये मारे-मारे फिरना, कहाँतक सहा जाय । कभी-कभी जीमें आता है कि इन लड़के-लड़कियोंकी गर्दन मरोड़ दूँ और आप भी कुछ खा लूँ, तो तुम्हें फिर पूरी स्वतन्त्रता मिल जाय और जीभरके अपने मनकी कर लो ।

हाँ, तो तुम्हें कुछ थोड़ा-सा लिख दिया है ; बुरा तो लगेगा, पर बात भी तो सच है, क्यों न लिखती । हो सके तो उत्तर देना इसमें तो तुम्हारा कुछ खर्च न होगा ।

बच्चोंके बारेमें क्या लिखूँ ? उनसे तो तुम्हें प्रेम है नहीं । वह भी मनमें सोचते होंगे कि कैसी जगह उनका जन्म हुआ !

आना तो कुछ उन सभोंके लिये लेते आना । मेरे लिये तो इस जन्ममें तुम कभी कुछ ला ही न सके ! मुझसे जो बन पड़ता है, मैं इन सभोंके लिये कर रही हूँ ।

दासी—

आशीर्वाद ।

पत्र मिला । तुमने जो कुछ लिखा, उसमें कोई भी बात ऐसी नहीं, जिसके लिये विरोध किया जाय अथवा तुम्हें उलाहना दिया जाय । सभी बातें सच थीं और उनके लिये मैं प्रयत्न करके भी सफल नहीं हो सकता । जब पत्ता पेड़से गिर जाता है, तब उसे हवाके सहारे उड़ते ही रहना पड़ता है । मैं भी पतझड़का पत्ता हूँ और उड़ानेवालेकी इच्छासे उड़ता रहता हूँ । हृदय जिसके अधीन है या आत्मा जिसका अंश है, उसकी इच्छाके आगे मेरा कोई वश नहीं है ।

यह सच है कि तुम हृदयसे मेरे साथ प्रेम करती थीं और अब भी करती हो । तुम चाहे स्वीकार न करो, यह मुझे विश्वास है कि तुम इच्छा न रहनेपर भी मुझसे उतना ही प्रेम करती हो जितना पहले करती थीं । हाँ, तुम्हारा प्रेम केन्द्रित है, इसीसे तुम्हें उलझन होती है । जो वस्तु सीमा-वद्ध होती है, उसे विशाल होनेमें भङ्गट-ही-भङ्गट प्रतीत होता है ।

मेरा हृदय भी किसी समय केन्द्रित था, और उसकी सीमा तुम थी, पर तुम्हारे ही कारण वह विस्तृत हो गया । मैं चाहता हूँ कि तुम्हें भी अपने साथ ही बहा दूँ, पर तुम अपने केन्द्रपर स्थिर हो और यही उलझन है, जो तुम्हें परीशान कर रही है ।

तुम चाहती हो कि मैं केवल तुम्हें ही देखूँ और किसीको न देखूँ । इसमें मेरा कोई दोष नहीं । मैं तो तुम्हींको सबमें देखता हूँ और सबमें तुम्हारी ही छटा पाता हूँ । तुम प्रकृति हो और तुम्हारी ही कलक मुझे सबमें दीख पड़ती है । मेरा दृष्टि-कोण जब सीमित था, तब जो आनन्द एक केन्द्रपर स्थिर था, वह अब बन्धन रहित हो गया है । हाँ, पहले अपने-परायेका भेद था, पर अब वह मिट गया है और अपने साथ ही वासनाको भी मिटाता गया है । तुम्हारे स्नेहमें मुझे वासना थी, पर वह जब केन्द्र तोड़कर प्राकृतिक हो गया, तब उसमें वासना भी बह गई । जो भी प्रकृतिने निर्माण किया है, वह आदरणीय और स्मरणीय होनेके साथ ही पूजनीय भी है ।

बच्चे तो राष्ट्रकी विभूति होते हैं इनमें अपना-पराया कैसा ! मैं तो इन्हीं छोटे-छोटे शरीरवाले अवोध बच्चोंमें विशाल आत्माका दर्शन पाता हूँ । मेरा वश चले तो मैं तो ऐसा कर दूँ कि इस सृष्टिमें सभी बच्चे ही रहें । कोई भी बड़ा न हो । ऐसी स्थितिमें अपने-परायेका प्रश्न ही नहीं उठता और सच तो यह है कि जैसे समुद्रसे लहर अलग नहीं, वैसे ही ये बच्चे भी अलग-अलग नहीं । देखनेमें ये पृथक् प्रतीत होते हों, पर वास्तवमें ये सब हैं तो उसी एकहीके अंश । इन सभीके भीतरसे वही तो भाँक रहा है । जल जैसे पात्रमें रक्खा जाता है, वैसे ही सूरतका बन जाता है ; पर सच तो यह है कि पानीकी कोई शकल ही नहीं होती । इसी तरह ये बच्चे भी देखनेमें भिन्न पर यथार्थमें एक ही हैं । अब तुम्ही न्याय करो कि इसमें मेरा कितना अपराध है ।

कोई किसीकी सहायता या सेवा कैसे कर सकता है, जब

कोईका प्रश्न ही नहीं रहता । जब अपना बिरानाका सवाल हो, तब तो परमार्थकी बात उठे, पर जहाँ, सभी अपना हो, वहाँ तो जो कुछ किया जाय, सब कर्तव्य ही हो जाता है ।

आशा है, तुम इन बातोंके साथ सहमत होनेका प्रयत्न करोगी । आरम्भमें आत्माको केन्द्रित करनेकी आवश्यकता होती है, पर जब वह केन्द्रपर स्थिर हो जाय, तब वह स्वतः विशालता को प्राप्त हो जाता है । मैं चाहता हूँ कि तुम इसे समझो और विकसित रूपसे इस विश्वमें अपनेको मिला दो । दूर रहनेपर भी मेरा आत्मा तो तुमसे पृथक् है नहीं । मैं अपने आत्माको पूर्ण समझता हूँ, क्योंकि वह तुम्हारे आत्मासे मिलकर पूर्णताको पहुँचा है । और इसी पूर्णतामें मैं अपने साथ ही तुम्हें भी पूर्णत्वकी ओर ले चलना चाहता हूँ ।

बच्चोंको प्यार ।

तुम्हारा ही—





[लेखक—सूर्यवली सिंह]

(काल्पनिक पत्र)

प्यारे,

गुदाँलिया,
बनारस ।

पत्र मिला । प्रसन्नता हुई । प्रेमसे प्रेरित होकर आपका यह लिखना कि मैं आपको भूल-सी गई हूँ, इसका उत्तर हृदयपर हाथ रखकर पहले अपने मनसे पूछिये और फिर हृदयसे हृदय, और आँखसे आँख मिलाकर मेरे मनमें घुसकर देखिये कि मैं आपको भूली हुई हूँ या आपके चित्रको मैंने प्रेमकी वेदीपर सजाकर रखा है । अस्तु, हम दोनोंमें भेद केवल इतना है कि आप एम० ए० पास करके निश्चिन्त होकर रिसर्चमें लगे हैं और मैं बी० ए० पास करनेकी चिन्तामें उलझी हुई हूँ । इसपर भी अगर आप यह खयाल करें कि मैं आपको भूली हुई हूँ तो मुझे किसी कविका नीचे लिखा शेर आपको लिखकर सन्तोष कर लेना होगा ।

तुझमें मैं और मुझमें तू आँखें मिलाकर देख ले ।

और गर देखे न तू तो मुझ पै है इल्जाम क्या ॥

इस बार एक बहुत मजेकी बात आपने लिखी है । वह यह कि मुझे रोनी सूरत बनानेका निष्फल प्रयत्न आपने किया है । ज्ञात होता है कि आपको किसी प्रकार यह मालूम हो गया है कि मैं आज-कल रोनी शक्कोंका एक अल्बम् तैयार कर रही हूँ । इस-लिये यह फिकरा मुझपर कसा है । ध्यान रहे कि रोतेको हँसाने-वाली रोनी सूरतें मैंने आपके हँसानेके लिये ही एकत्रित की हैं, जिन्हें गर्मियोंकी छुट्टीमें आपके आनेपर दिखाकर हँसाऊँगी । सच भानिये, आप अपनी शक्क देखकर, हँसीके मारे लोट-पोट हो जाँयेंगे ।

इस पत्रमें मुझे अधिक लिखना था, अतः आपकी मीठी चुटकियोंका कहाँतक उत्तर दूँ, यह बात पत्र लिखते समय मैं सोच रही थी । इतनेमें एक पुराना शेर मुझे याद आ गया, जिसे लिखे देती हूँ । इसीमें आप मेरा उत्तर कृपया समझ लें ।

यूँ तो ऐ सग्याद आज्ञादीमें हैं लाखों मजे ।

❀ दामके नीचे फड़कनेका तमाशा और है ॥

ये तो हुई आपके पत्रकी बातें, अब मतलबकी बात सुनिये । आप जानते हो हैं कि आजकल नवशिक्षितोंमें प्रेमके सम्बन्धमें काफ़ी दिलचस्पी है । कालेजकी डिबेटिंग सोसाइटीमें इसी विषय-पर अगले मास वादानुवाद होगा । कम्बख्तीकी मार, प्रेमपर निबन्ध लिखनेके लिये आप्रह-पूर्वक मुझसे भी कहा गया है । बबड़ा रही हूँ कि प्रेम ऐसे गहन विषयपर मैं क्या लिख सकूँगी ।

❀ दाम = जाल ।

जो भी हो, लिखना तो पड़ेगा ही। यह संतोषकी बात है कि आपके पत्रोंमें प्रेमके सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ चर्चा रहनेसे उनसे मुझे इस अवसरपर मदद मिल जायगी, फिर भी मुझे अपने निबन्धके लिये आपकी सहायताकी आवश्यकता है।

किसी पत्रमें आपने लिखा था कि प्रेमकी खोज करनेवालोंने प्रकृति (Matter) में लगाये गये प्रेमको पार्थिव (इश्के-मजाजी) और पुरुष (Force) में लगाये गये प्रेमको पारमार्थिक (इश्के-हकीकी) माना है। और जिस प्रकार कि विद्यार्थीको आरम्भमें स्थूल और बादमें सूक्ष्म बातोंका ज्ञान कराया जाता है, उसी प्रकार पारमार्थिक प्रेमको समझनेके लिये पहले पार्थिव प्रेमको समझ लेना जरूरी है। मैं चाहती हूँ कि इस सम्बन्धमें आप कुछ और अधिक प्रकाश डालनेके साथ-साथ नीचे लिखी मेरी शंकाओंको भी कृपया दूर करें, ताकि मुझे अपने निबन्धमें सहायता मिल सके।

✓ कहा जाता है कि विषयोंमें जो सुख है वह इन्द्रियोंका है, प्रेमका नहीं। इस इन्द्रिय-सुखमें मनुष्य क्या, पशु-पक्षीतक सभी लिप्त हैं। भोग वास्तवमें पशुओंका धर्म है, इसीलिये उन्हें भोग-योनि माना गया है, किन्तु मनुष्य भोगमें गति रखनेके अतिरिक्त कर्ममें भी गति रखता है और इसके द्वारा वह अपनेको पशुसे मनुष्य बना सकता है। इसीलिये मनुष्यको कर्मयोनि माना गया है। भोगमें लीन मनुष्य आकृतिमें तो मनुष्य है, पर स्वभावमें पशु। किसी कविने ठीक कहा है—

क्या हँसी आती है मुझको हजारते इन्सानपर।

काम बढ़ तो खुद करें लानत करें शैतानपर ॥

पशु-स्वभाव रखनेवाला मनुष्य भोगको ही प्रेम समझता है ।
उन्नत-हृदय मनुष्य प्रकृति-निर्मित सुन्दर एवं सुकुमार शरीरोंका
स्पर्श उनके आलिङ्गन और चुम्बनको प्रेम मानकर भोगसे प्रेमको
अलग करता है । ध्यान रहे कि जिस प्रकार भोग मूत्र-इन्द्रियका
विषय है, उसी प्रकार स्पर्श, आलिङ्गन, चुम्बन आदि भी अन्य
इन्द्रियोंके विषय हैं । तो फिर बताइये कि प्रेम आप किसे कहते
हैं और उसका आनन्द क्या है ?

विस्तार-भयसे अधिक नहीं लिखती । आशा है, आप मेरे
अभिप्रायको अच्छी तरह समझ गये होंगे । किसी कविके नीचे
लिखे शेरको ध्यानमें रख इस पत्रका उत्तर अति शीघ्र देनेकी
कृपा करें ।

उड़ा पतङ्ग मुहब्बतका चर्खसे भी दूर ।

❀ खिरदकी डोरको अब छोड़ दीजिये तो सही ॥

आशा है, आप प्रसन्न हैं ।

आपकी प्यारी,

स्नेहलता ।

अमीनाबाद,

लखनऊ ।

प्रिये,

प्रेमसे सराबोर तुम्हारा पत्र मिला, जिसे पढ़कर मन प्रफु-
ल्लित हुआ । कहना न होगा कि तुम्हारे पत्रोंमें कुछ ऐसी छेड़छाड़
रहती है जो इतनी दूर होनेपर भी मुझे गुदगुदाने लगती है,

❀ खिरद = बुद्धि ।

जिससे मैं कभी-कभी तंग-सा आ जाता हूँ। किन्तु इस गुदगुदीमें तुम्हारे प्रेमकी झलक मेरे हृदयमें प्रतिबिम्बित होकर तुम्हारे सुन्दर रूपको आँखोंके सामने खड़ा कर देतो है। इस प्रकार हम दोनों मानसिक संसारमें मिल लेते हैं और इस मिलनसे प्रवाहित मधुर रस पान करके, मन, मतवाला होकर उस प्रेम-स्रोतको ढूँढ़ने लगता है, जिसके रसपानसे प्रेमके पुजारी अमर हुए और प्रेम-देवता बनकर प्रेम-मार्गमें भटकनेवाले यात्रियोंको ज्योति प्रदान करते हुए उनके हृदयाकाशमें अमृत बर्साते रहते हैं।

यह मानी हुई बात है कि प्रेम मतवाला होता है और उसकी मादकताको सँभालना मुझ ऐसे मरीजे लाइलाजके लिये बहुत कठिन है। अस्तु, तुम्हारा पत्र मिलनेके थोड़ी देर बाद तुम्हारे प्रेम-पाशमें बँधा हुआ विस्तरपर जा लेटा। मस्तीमें तो था ही, आँख लगनेपर देखता क्या हूँ कि मैं तेजीसे मस्तीके नशेमें हवाके घोड़े-पर उड़ रहा हूँ और उड़ते-उड़ते प्रेम-लोककी ओर जा रहा हूँ। मार्गमें मनको लुभानेवाली सुन्दर-सुन्दर आकृतियाँ मिलने लगीं। पहले तो स्कूलोंके सुन्दर और सुकुमार लड़के सिगरेटके धुँएँसे कोमल कलेजेको छलनी बनाते हुए प्रेम-लोकका रास्ता दर्याफ्त करते दिखाई दिये, इसके बाद नाविल हाथमें लिये और जनानी शक बनाये कालेजके कुछ विद्यार्थी सराज कविकी नज्मका नीचे लिखा टुकड़ा गाते हुए मिले।

वह अजब घड़ी थी कि जिस घड़ी, लिया दर्स नुसखाये इश्कका।
कि किताबे-अक़की ताक पै, जो धरी थी यूँ ही धरी रही॥

आगे बढ़नेपर कुछ कालेज-गर्ल्स अपने-अपने प्रेमियोंकी

फोटो लिये मिलीं। नीचे लिखा नज़रकी नज़मका टुकड़ा मधुर स्वरसे कोरसमें गा रही थीं।

काँटा किसीके मत लगा, गो मिस्ले-गुल फूला है तू।

वह तेरे हक़में तीर है, किस बातपर भूला है तू॥

इतनेमें देखा कि किसी सिनेमा कम्पनीकी ओरसे तीरे नज़र, तर्जे अदा, हुस्नका नज़ारा, दर्दे-दिल ज़ख़मी जिगर, चमनकी चिड़िया, नख़रोंमें गरम मसाला तथा बेवफ़ा माशूक नामके ट्रैक्ट बाँटे जा रहे थे।

इसके बाद एक रिटायर्ड स्काउट मास्टर भी दिखाई दिये जो “सौन्दर्योपासक” नामक पुस्तककी प्रतियाँ बेच रहे थे। साथमें स्काउटों तथा गर्ल्स गाइडके कुछ फोटो भी विक्रीके लिये थे। एक दो मिनटका अन्तर देकर स्काउट मास्टर साहेब प्रेमके आवेशमें आकर नीचे लिखा चलतू शेर गा उठते थे।

हम आह भी करते, तो हो जाते हैं बदनाम।

वो कत्ल भी करते हैं, तो चर्चा नहीं होता॥

कहना न होगा कि पासहीमें एक साहित्य-सेवी भी बाल बढ़ाये खदरका कुरता और फ़तुई पहने, जिसकी जेबमें फ़ाउन्टेन पेन खुसी थी, हाथमें डंडा लिये अकड़ रहे थे। इनको हुलियामें विशेषता यह थी कि उनकी चिम्धी आँखोंकी सरपरस्त भौहोंके बीच छोटी काली बिन्दी थी। एक आँखका चश्मा, जो काले डोरे-में बँधा हुआ गलेमें पड़ा था, हाथसे अपनी बाँईं आँखके सामने लगाकर बातें करते थे। साहित्य-सेवी महाशयके पीछे असली और नकली कोकशास्त्रके मनचले सोल एजेन्ट भी मौजूद थे, जो प्रेम-

मार्गके यात्रियोंको बनारसीके खयालका टुकड़ा सुनाकर उत्साहित करते थे ।

इश्कमें जी जाना हमने, समझा यही जी जाना है ।
जाना जानाके दरपर, जान बेचकर जाना है ॥

यह देख साहित्य-सेवी महाशय 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की आवाज लगाते हुए सोल एजेन्ट साहेबके पास पहुँचकर ऊँचे स्वरमें कहने लगे—महाशय, 'व्यूटी कम्पिटीशन' नामक एक पुस्तक मैंने हालमें लिखी है, जिसपर मुझे पुरस्कार भी मिला है । स्कूल कालेजके होस्टलोंमें धड़ा-धड़ विक रही है । इसकी एजेन्सी ले लेनेसे आपको बहुत लाभ होगा । ध्यान रहे, इसका प्रचार बढ़ानेके लिये 'चना जोर गरम'की तर्ज, जिसे साधारणलोग बहुत पसन्द करते हैं, अपने विज्ञापनमें मैंने नक़ल कर ली है, जिसे ध्यान देकर सुनिये ।

पुस्तक लिखी मैंने अर्जेन्ट, इसको पढ़ते स्ट्यूडेन्ट ।
पीते सिगरेट एलीफेन्ट, पाते नम्बर सेन्ट परसेन्ट ॥

इस विज्ञापनके सुननेके बाद नशेने ज़ियादा जोर किया और मैं आगे बढ़ा । देखा कि चन्दा समेट एक लीडर महोदय भी एक हाथमें भोली, दूसरे हाथमें रसीद बही लिये हुए प्रेमियोंसे उनके प्यारे-प्यारियोंके सदक़ेमें दानके रूपमें धन वसूल कर रहे थे । प्रेमीगण अपने माशूकोंकी सलामतीके लिए खुशीसे कुछ-न-कुछ रक़म भोलीमें डाल देते । साथमें एक उपदेशकजी भी थे जो शुद्ध सात्विक प्रेमकी मीमांसा करके उसका महत्व प्रेमियोंको सम-

झाते थे और जमानेकी रफ्तारके सम्बन्धमें उपदेशकजी जोशमें आकर बेठबजीका नीचे लिखा शेर उगल पड़ते थे ।

नयी तालीमसे यारों यही निकला नतीजा है ।

चचाके सामने लेडी लिये लेटा भतीजा है ॥

थोड़ा आगे बढ़नेपर मालूम हुआ कि जिन्दा दिल दो बूढ़े प्रोफेसर भी जा रहे हैं, जो बारी-बारी पारमार्थिक प्रेम-सम्बन्धी प्रसिद्ध कवियोंकी नीचे लिखी रचना बड़े प्रेमसे गाते थे !

जिसका देखना ही मुहाल था,

न था जिसका नामोनिशां कहीं ।

सो हर एक ज़र्रेमें इश्कने,

मुझे उसका जलवा दिखा दिया ॥

गुलज़ारमें है, गुलमें है, जंगलमें, बहरमें ॥

सीनेमें, सरमें, दिलमें, जिगरमें, खटक रहा ॥

कुछ आगे और बढ़नेपर निर्मल प्रेमके पुजारियोंके कुछ मज़ार मिले । प्रेमके अवतार लैला-मजनू तथा शीरी-फ़रहादके मज़ारोंपर लोग फूल-मालाएँ चढ़ा रहे थे । इन मज़ारोंके पास एक सुन्दर संगमरमरके चबूतरेपर बहुत क्रीमती शामियानेके नीचे अपने प्यारेपर कुर्बान एक कमसिन नाज़नीकी कब्र थी । चबूतरेके ऊपरकी ओर जड़ी तख्तीपर सोनेके अक्षरोंमें ज़हरे इश्कके ये शब्द लिखे हुए थे ।

तमाशा देख लो लोगों, ये इश्क-बाज़ीकी हक़ीकतका ।

शहीदे नाज़ है, पढ़ते चलो कल्मा सआदतका ॥

इस नाजनीकी कत्रपर उसके बलिदानके लिये प्रेमके आँसू बहानेकी रस्म अदा करके जब मैं आगे बढ़ा तो तरह-तरहके हुस्नके नजारे फिर नज़र आने लगे, जिनके सौन्दर्यको देख मैंने अपनेको धन्य माना ।

मनोहर रूप-रंगवाली हावभावपूर्ण एवं कटाक्षयुक्त सुकुमारियाँ मिलने लगीं । इन चन्द्रबदनी चंचलाङ्गियोंकी आकृतियाँ अत्यन्त सुन्दर, सुहावनी, शीतल और सुखद थीं । इनके मुख-मण्डलसे निकली सुन्दरताकी किरणें ज्योतिके समान प्रतिबिम्बित होकर उनके मुख-मण्डलको और भी अधिक सुन्दर बनाती थीं । उनकी मधुर मुस्कानके समय सौन्दर्यका देवता एक क्षणके लिये अपना करश्मा दिखाकर गायब हो जाता था ।

यद्यपि अबतक कोई रोकटोक न थी ; किन्तु और आगे बढ़नेमें मैंने समझा कि मैं अनधिकार चेष्टा कर रहा हूँ । इतनेहीमें पिछली सुन्दरियोंसे भी अधिक सुन्दर एक रमणीपर मेरी नज़र पड़ी । मनको बहुत भाई । दिलमें आया कि इससे कुछ छेड़-छाड़ करूँ, परन्तु वह तुरन्त मेरे भावको समझ गई । ज्यों ही मैं बात-चीतके लिये उसकी ओर बढ़ा तो उसने डाँटकर कहा—सुन, गंदी बासनाओंका पुतला यहाँ किसी भी सुन्दरीको स्पर्श नहीं कर सकता । इन्द्रियोपासककी यहाँ गुज़र नहीं । सौन्दर्यके सुन्दर स्वरूपोंको अपवित्र करनेवाला इन्द्रियलोलुप अब आगे प्रेम-लोकमें प्रवेश नहीं कर सकता । अतः वापस लौट । ध्यान रख, आगे बढ़ा तो जहन्नुम रसीद होगा । यह सुन मैं बहुत डरा । मेरे पैर काँपने लगे । शरीर भारी होने लगा । यहाँतक भारी हुआ कि फिर मैं उड़नेके बदले नीचेकी ओर उतरने लगा और देखते-

देखते धड़ामसे पृथ्वीपर आ गिरा और सारा नशा हिरन हो गया। भयकी घबड़ाहटसे आँख खुल गई।

आँख खुलनेपर, प्रिये, देखता क्या हूँ कि तुम्हारी फोटो लिये बिस्तरपर लेटा हूँ। इस स्वप्नका अनुसन्धान करनेपर ज्ञात हुआ कि तुम्हारे प्रेमकी वरकतने मुझे प्रेम-लोकका रास्ता दिखाया; किन्तु मनकी मलिनताके कारण प्रेम-लोकके उस भागमें जहाँ प्रेम-के देवता निवास करते हैं प्रवेश न कर पाया और इस प्रकार तुम्हारा प्रेम पानेके लिये वापस आ गया।

प्रिये, जिस प्रकार प्रकृति (Matter) और उसकी सुन्दर, सुकुमार और सुखद आकृतियों एवं उसके विचित्र चमत्कारोंमें लगाये गये प्रेमको पार्थिव प्रेम अर्थात् इश्के-मजाजी माना गया है, उसी प्रकार पुरुष (Force) जो प्रकृतिका आदि कारण और उसे सौन्दर्य प्रदान करनेवाला है और जिसमें कार्य उसीका आत्म-रूप होकर छिपा रहता है और जो सुन्दरसे भी सुन्दर और प्रेम-स्वरूप है, उसमें लगाये गये प्रेमको पारमार्थिक प्रेम अर्थात् इश्के-हकीकी कहते हैं।

पारमार्थिक प्रेमका विषय इतना गम्भीर है कि इसका विशेष अध्ययन और मनन करनेपर भी बुद्धि वहाँतक पहुँचने नहीं पाती। मन पवित्र हो जानेपर ही बुद्धि इस विषयको यत्किंचित् समझनेमें समर्थ होती है। प्रेमका आदि अन्त नहीं। अतः वह पूर्णरूपेण बुद्धिमें, जो समय, स्थान और परिस्थितियोंसे सीमित है, नहीं आ सकता।

पार्थिव प्रेमका पुजारी प्रकृतिमें और पारमार्थिक प्रेमका पुजारी पुरुषमें मनको लगाता है, जो प्रकृतिसे भी बढ़कर कहीं

सुन्दर है। पुरुषके प्रेममें लीन मन निर्वाणपदको प्राप्त होता हुआ सौन्दर्य-जगत् और उसके प्रेमका स्वामी बनता है। यह प्रेमकी महिमा है। देखो, एक कवि इस सम्बन्धमें क्या कहता है—

ढूँढ़ा है उसको जिसने, उसे आनकर मिला ।

अटका जो उसकी राहमें, उससे अटक रहा ॥

✓ प्रेम परमात्माकी अनन्त शक्ति है, जो तारोंकी जगमगाहट एवं सूर्यकी किरणोंके समान उससे भिन्न नहीं किन्तु उसीका रूप है। जिस प्रकार अग्निमें उष्णता, जलमें शीतलता है, उसी प्रकार परमात्मामें प्रेम है। और जिस तरह ज्वालामें अग्नि और कार्यमें कारण मौजूद है, उसी तरह प्रेममें परमात्मा है जिसे रसखान कवि इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

प्रेम हरीको रूप है, वे हरि प्रेम स्वरूप ।

एक होय दोमें लखे, ज्यों सूरजमें धूप ॥

परमात्मा प्रेम है। प्रेमसे भिन्न पदार्थ नहीं। वह प्रेममय और प्रेम-स्वरूप है। इसीलिये, वह प्रेमसे ही प्राप्त हो सकता है। इस प्रेम-स्वरूप प्यारेके प्रेमको प्राप्त करने और उसके अद्वितीय सौन्दर्यको देखनेके लिये, जो बुरक़ोंमें छिपा हुआ है, स्वामी राम-तीर्थ बतलाते हैं—

निगाहें गौर रख कायम जरा बुरकाको ताके जा ।

यह बुरका साफ़ उड़ता है, वह प्यारा नजर आता है ॥

जिस प्रकार सूर्यकी किरणें समुद्रके जलको आकाशमें ले जाकर बादलका रूप देकर पृथ्वीपर बर्साती हैं, उसी प्रकार पारमार्थिक प्रेमसे पागल मन अपनी हृदयतंत्रीके तारोंपर उनके अनहद नादके उन्मादमें नाचता, गाता, धिरकता और तरह तरह-के आह्लादोंके आनन्दका अनुभव करता हुआ उन्हीं तारोंद्वारा जो प्रेम-लोकतक बराबर चले गये हैं और अन्तमें अनन्तकी किरणोंके तारोंमें जा मिले हैं, पहुँचकर उस प्यारेसे मेल पाता है, जो प्रेममय और सुन्दरसे भी सुन्दर है । यही पारमार्थिक प्रेमके प्रेमीका परम पद है जिसे प्राप्त कर लेनेपर उसके हृदयाकाशमें आनन्दरूपी-अमृत बरसता है, जिससे वह अमरताको प्राप्त होता है ।

ये तो हुई किताबी कीड़ोंकी बातें जिन्हें सांसारिक प्रेमके परमाणु कीटाणुओंके रूपमें खाते रहते हैं किन्तु अपने राम तो मस्तोंके मजहबके कायल हैं । कवि कहता है:—

भगड़ा भी तह करो तुम, ऐ शेखेरिन्द अपना ।

बेदीन हैं तो हम हैं, दीनदार हैं तो हम हैं ॥

तुम्हारा प्यारा,

प्रेम-स्वरूप ।

प्रेम-लोक

[उत्तरार्द्ध]

गुदौलिया,

बनारस ।

प्यारे,

लम्बा-चौड़ा आपका लिफाफा देखकर मैं समझती थी कि प्रेम के सभी अङ्गोंपर आपने पर्याप्त प्रकाश डाला होगा । पर उसे खोलनेपर मालूम हुआ कि प्रेमके अत्यन्त आवश्यकीय अङ्ग—त्याग और बलिदान—को आपने प्रेमके प्रसादमें भुला दिया । आपके विस्तृत पत्रमें यद्यपि अनेक बातें मेरे मतलबकी हैं और प्रेम विषयक मेरे निबन्धको सुन्दर बनानेवाली हैं जिनके लिये मैं आपकी अत्यन्त आभारी हूँ; फिर भी अपने निबन्धको सर्वाङ्गसुन्दर बनानेके लिये मैं त्याग और बलिदानके रहस्यको समझना चाहती हूँ । इसके तत्वको, आशा है, आप अपनी व्याख्या द्वारा समझानेकी कृपा करेंगे । किसी शायरका यह कलाम याद रहे—

वही एक शेरुह^१ है, तुरवत^२ भी है, और शमाए-तुरवत^३ भी ।
मज्जा मरने का कुछ परवानहे—आतश^४ वजांतक है ।❀

साथ ही स्वामी रामतीर्थजी महाराजका नीचे लिखा शेर भी ध्यानमें रहे ।

१ ज्योति । २ कबर, मज्जार । ३ मज्जारका चिराग । ४ अग्नि-की ज्वाला पर जान देनेवाला पतंग ।❀ मतलब यह है कि अग्निकी इस ज्योति पर मरनेका मज्जा उसीको मिल सकता है जिसका मन प्रेममें पतंग बन जाय ।

यह दिल लेना, जाँ लेना, किसकी अदा है ।

मेरी जाँ की जाँ^१ जिस पै शोखीर फ़िदा^२ है ॥^३

मेरे आशय को, आशा है, आपने समझ लिया होगा । इसके अलावा, मैं यह भी चाहती हूँ कि प्रेमके स्वरूप एवं उसके आनन्द-के सम्बन्धमें आप और अधिक प्रकाश कृपया डालें । इस पत्रका उत्तर अविलम्ब देनेकी कृपा करें ताकि मैं अपने निबन्धको समयसे तैयार कर सकूँ ।

अपनी प्रसन्नताके समाचार कृपया बराबर देते रहें ।

आपकी प्यारी,

स्नेहलता।

अमीनाबाद,

प्यारी,

लखनऊ ।

पत्र मिला । पढ़कर प्रसन्नता हुई । यह सन्तोष की बात है कि प्रेमके रहस्यको समझनेमें तुम सदैव प्रयत्नशील रहा करती हो । प्रेमकी मीमांसामें त्याग और बलिदानपर प्रकाश न डाला जाना वास्तवमें ऐसा ही है जैसे कोई चित्रकार सर बनाये बिना ही चित्रको खींचकर पूरा करना चाहे । इतने महत्वपूर्ण विषयको

१ जीवनका आधार अर्थात् आत्मा । २ नाज़, चंचलता । ३ कुर्बान । † तात्पर्य है कि मेरे जीवनके आधार अर्थात् आत्माने हसीनोंमें उतरकर उन्हें सुन्दरता प्रदान की है । समस्त सुन्दरतामें वही चमकता है और दिल लेना तथा जान लेना उसीकी अदा है ।

मैंने क्यों छोड़ दिया था, इसका कारण तुम्हें आगे मालूम होगा । किन्तु अब मैं अपने मनकी कायरताको छिपाना नहीं चाहता, उसे जाहिर कर देना चाहता हूँ ।

बात यह है कि जब मैं प्रेमलोककी अपनी स्वप्नयात्रामें वहाँ की अनुपम सुन्दरी द्वारा इन्द्रियोपासक, गंदी वासनाओंका पुतला एवं सौन्दर्यके सुन्दर स्वरूपोंको अपवित्र करनेवाला सम्बोधित किया गया तथा प्रेमलोकके मार्गमें सीमोल्लंघन कर आगे बढ़नेके कारण डाँटा गया, तब मैं अत्यन्त भयभीत हो गया था और उक्त सुन्दरीकी आँखसे ओभल होनेपर उसी घबड़ाहटमें, शरीर भारी हो जानेसे, ऊपरकी ओर उड़नेके बदले नीचे उतरने लगा तो कम्बख्तीकी मार, हज़रत इश्क एक हाथमें तसवीद, दूसरेमें ज़हरका प्याला, गलेमें सेली और सरसे कफ़न बाँधे हुए मेरे रास्तेमें आ खड़े हुए और ज़हरका प्याला पीकर अमर होनेके लिये मुझसे आग्रह करने लगे । मैंने कहा कि इस तरह मुझे न फुसलाइये । आपका सब हाल मैं जानता हूँ और पुस्तकोंमें भी पढ़ चुका हूँ । इसपर हज़रत कड़ककर बोले कि दिलमें कुफ़्र और प्राणोंको प्यार करनेवाला एवं चमड़ेके चमत्कारोंसे चकित होकर उसे चूमनेवाला मुझे नहीं जान सकता । इसके अलावा, अगर तू ज़हरके प्यालेमें अपनी प्यारी स्नेहलतासे अपने अटूट सम्बन्धसे एक दिल नहीं हो सकता और प्राणोंकी बलि देनेसे भागता है तो तेरे दिलमें मुहब्बतके बदले कुफ़्र है । विचार करके देख ले और किसी हकीकी शायरके इस कलामको याद रख—

गैर-हक़ दिलमें जहाँ आया ख़याल ।

बुत खुदाके घरमें पैदा हो गया ॥

अपनी कायरतापर विचार करनेपर मन ही मन मैं हयाके बोझसे इतना घबड़ाया कि धरती पैरोंसे निकलने लगी। दिलमें आया, ज़मीन फट जाय, मैं समा जाऊँ। किन्तु मेरी हयाने बेह-याईका जामा पहिनकर अपनी भेंप मिटा ली। मैदाने जंगमें मौत-से डरकर भगे हुए कायर सिपाहीकी भाँति मुर्दा होकर मैंने ज़िन्दा रहना चाहा। यह मानी हुई बात है कि पापीको प्राण अधिक प्यारे होते हैं। अतः मनकी मलिनतासे परीक्षाके समय मैं उनका उत्सर्ग न कर सका। अपने प्राणोंको मैं प्यार करता ही था, अतः उन्होंने भी मुझे न छोड़ा।

कहना न होगा कि मेरा आध्यात्मिक जीवन उसी क्षण समाप्त हो गया जब कि अपने प्राणोंकी कुर्बानीसे मैं भाग निकला; किन्तु अब अपनी इन्द्रियोंको जीवित रखनेके लिये इस संसारमें मुर्दा होकर भी ज़िन्दा हूँ। मेरी कमज़ोरीने मुझे प्रेममार्गसे भ्रष्ट तो ज़रूर किया किन्तु उसपर किये गये विचारने बलिदानके सिद्धान्तकी अनेक गुत्थियोंको सुलझा दिया। वेदमें वर्णित बलिदानका सिद्धान्त, जिसका समयके प्रभावसे कुछका कुछ रूपान्तर हो जाना सम्भव है, न समझ सकनेके कारण मैं उसपर हँसता था किन्तु अब उसीके लिये रोता हूँ। मनुष्यके कर्तव्यको निर्धारित करनेवाली संसार-प्रसिद्ध पुस्तक गीतामें भी इसी सिद्धान्त पर जोर दिया गया है, जिसे स्वामी रामतीर्थजी महाराज अपने शब्दोंमें इस प्रकार बतलाते हैं—

झरुहूका दरया जो चीरते हैं, हैं तख़्त पाते वही हकीकी।
जला भी दो तुम तअल्लुकोंको, खड़े हैं रोम और गला रके हैं ॥

❀ अर्जुनको दिया गया उपदेश।

है मौत दुनिया में बस गनीमत, खरीदो इसको राहतके १ भाओ ।
न करना चूँतक यही है मजहब, खड़े हैं रोम और गला रुके हैं ॥
ठगोंको कपड़े उतार दे दो, लुटा दो असबाब मालोज़र सब ।
खुशीसे गर्दन २ पै तेग़ धर तब, खड़े हैं रोम और गला रुके हैं ॥

ध्यान रहे कि त्याग और बलिदानका विचार ही मनुष्यको सन्मार्गपर लानेवाला है । वह चोरी इसलिये करता है कि धनके अभावमें लोप होनेवाले सुखोंका वह बलिदान नहीं कर सकता । भूठ इसलिये बोलता है कि सत्य बोलनेमें जिन सुखोंके दूर हो जानेकी सम्भावना है, उन्हें बलिदानकी वेदीपर नहीं चढ़ा सकता । श्वान-समान आचरणसे इसलिये अपनेको गिराता है कि इन्द्रिय-जनित सुखकी वह बलि नहीं दे सकता । इसी प्रकार अन्य बातों-को भी समझ लीजिये । कहनेका तात्पर्य यह है कि जीवनको श्रेष्ठ और सफल बनानेके लिये त्याग और बलिदानकी पग-पग पर आवश्यकता है और उसके अभावमें खाना, पीना, मैथुनादि कर्म ही केवल रहते हैं, जो पशु-धर्म है । अतः यह मानना होगा कि त्याग और बलिदानका अभाव ही मनुष्यको पशुत्वकी ओर ले जानेवाला है ।

यह बात लोग जानते ही हैं कि सबको एक समान दिल नहीं मिलता और उन दिलोंमें भी किसी किसीमें प्रेम अपना घर कर-के चमकता है । प्रेमसे पूर्ण मन तो मस्तोंको ही मिलता है और उनमें भी विरले ही प्रेमके लिमें बलिदान होते हैं ।

लैलीको इश्क़े-दिलसे काम था, इसीलिये उसने कपड़े नहीं

१ आराम । २ अहंकार अथवा खुदीकी गर्दन ।

रंगे और अपनी सत्तामें मजनोंको और मजनोंकी सत्तामें अपनेको देखा । कहा जाता है कि एक बार लैलीके पैरसे खून निकला देख उसकी सहेलियोंने लैलीसे खूनका कारण दर्याप्त किया । लैलीने कहा, मालूम होता है, मजनोंके पैरमें चोट लगी है ।

हीर अपने प्यारे रांभेकी तलाशमें आँसू बहाती हुई कूक-कूक कर पुकारती फिरी । शीरीं अपने प्यारे फरहादके लिये शहीद हो गई । बुलबुल अपने प्यारे फूलके प्रेममें सर पटक पटककर मरता है । और पतंग दीपकमें जलकर जान देता है । सर पटक पटककर मरनेका मजा बुलबुल और दीपकमें जलकर जान देनेका मजा पतंग ही जानता है । सब नहीं जान सकते । जिस प्रकार कि विषयी ब्रह्मानन्दके सुखको नहीं अनुभव कर सकता, उसी प्रकार मरनेके मजेको कुर्बान होनेवाला आशिक ही समझता है । इन्द्रियोंकी वृत्तिमें वृत्त एवं अपवित्र वासनाओंमें लिप्त मनुष्य इस मजेको नहीं जान सकता और जिसके सम्बन्धमें स्वामी रामतीर्थजी महाराज इस प्रकार कहते हैं, जिसे ध्यान देकर सुनिये ।

मंसूरसे पूछी किसीने, कूँचये-जानाँ१ की राह ।

चुभ साफ दिलमें, राह बतलाती जुबाने दार२ है ॥ॐ

गन्दी वासनाएँ निकालनेके बाद हृदय पवित्र हो जानेपर जबतक उसमें त्यागके भाव उदय न हों, तबतक मनुष्य बलिदानके

१ प्यारेकी गलीका रास्ता । २ सूलीकी नोक ।

ॐ साफ दिलमें सूलीकी नोक चुभकर प्यारेकी गलीका रास्ता बतलाती है ।

रहस्यको समझनेमें असमर्थ ठहरता है। इन्द्रिय-लोलुपता मनुष्य-को स्वार्थकी ओर खींचती है और उसका अभाव मनुष्यको त्यागकी ओर ले जाना चाहता है। ध्यान रहे कि त्यागके बिना हृदयमें पवित्र या सच्चा प्रेम उदय नहीं हो सकता। देखिये, सच्चे प्रेमकी लगनको सफ़दर कवि इस प्रकार समझाते हैं :—

तुम्हारे आशिक, तुम्हीसे उरफ़ूत,
तुम्हीको जानें तुम्हींको समझें।
सिवा तुम्हारे नहीं है मतलब,
जहानो-अहलेजहाँ से हमको ॥

यह बात छिपी नहीं है कि भूतपूर्व राजराजेश्वर अष्टम एडवर्डने, थोड़ा ही समय हुआ, प्रेमके लिये संसारके सबसे बड़े राज्यको त्याग दिया। उनका यह अपूर्व त्याग प्रेमके इतिहासमें उनको कीर्तिको चिरस्थायी रखेगा और प्रेम-मार्गके यात्रियोंके हृदयमें ज्योति प्रदान करता हुआ उनको त्यागके लिये सर्वदा उत्साहित करता रहेगा।

यह मानी हुई बात है कि प्रेमके लिये, चाहे वह पवित्र हो या अपवित्र, बड़ेसे बड़ा त्याग मनुष्य कर डालता है। पार्थिव प्रेमका पुजारी जानता है कि जितना मज्जा अपने माशूकको मेवा, अंगूर और रसगुल्ला आदि खिलानेमें उसे आता है, उतना स्वयं खानेमें नहीं आता। कचरकूट करनेवाला पेटू आशिक अपने खानेमें मज्जा लेता है। अपने माशूकको खिलानेमें नहीं। अतः त्याग न होनेसे इसे प्यारमें उतना मज्जा भी नहीं आ सकता, जितना कि खिला देनेवालेको आता है। कारण मज्जा तो त्यागमें है। गल-

तीसे चमड़ेके चमत्कारोंमें मान लिया गया है । अगर चमड़ेके चमत्कारमें होता तो फिर प्रेममें त्याग और बलिदानकी आवश्यकता ही न रहती और उसके बिना ही लोग मज्जा लूटते और मंजिले मकसूद तक पहुँच जाते और फिर कोई किसी पर कभी कुर्बान न हुआ होता । विषयी भी भले प्रकार जानता है कि वीर्यपात अर्थात् वीर्यके त्यागमें ही वह आनन्दका अनुभव करता है ।

इश्के-मजाजी अर्थात् पार्थिव प्रेममें भी, देखा जाता है, लाशें फड़कती हैं और खूनसे रँगा जनाजा निकलता है । अनेक फांसी-पर लटकते और जहर खाते हैं । और कुछ अपने माशूकके दर-पर पहुँचकर अपने ही हाथसे अपने कलेजेमें छूरा भोंककर मरते हैं । इश्के-हकीकी अर्थात् पारमार्थिक प्रेममें भी पागलपन, फाका, तकलीफ और मौत देखी जाती है । ऐसी दशामें यह सिद्ध है कि मज्जा, त्याग और बलिदानहीमें है और अगर न होता तो फिर कोई किसीपर कुर्बान होकर कभी अपनी जान न देता । इसपर भी कोई-कोई व्यक्ति कहेंगे कि उन्हें तो चमड़ेके चमत्कारोंमेंही मज्जा मालूम होता है । ऐसी दशामें अपने रामकी रायमें इस प्रवृत्तिको प्रेम न कहकर श्वान-प्रवृत्ति कहा जाना चाहिये और जिसके सम्बन्धमें फकड़ कवि इस प्रकार कहते हैं :—

कुत्ता-पंथी हैं जितने जहाँमें, मस्त हैं कामकी वेदनामें ।
सुन्दर स्वरूपोंको करते हैं गंदा, प्रेमकी आड़में पूरे शैतानी-बंदा ॥

अब रही कुछ भावुक हृदय रखनेवालोंकी बात जो दो बिछड़े हुए हृदयोंके प्रेमालिङ्गनमें उसी प्रकार मज्जा लेते हैं, जिस प्रकार कि एक लोफर चित्रपटपर किये गये चुम्बनमें । यह

बतलाया जा चुका है कि जिस प्रकार भोग जननेन्द्रियका विषय है उसी प्रकार स्पर्श, आलिङ्गन और चुम्बन आदि भी अन्य इन्द्रियोंके विषय हैं। अतः विषयकी वासना उनके हृदयस्थ होनेसे वे जिम्मेदारीसे नहीं बच सकते। कारण मनुष्यके मनकी तरंगें ही उसके मनको चलानेवाली होती हैं। सुनिये, एक जिन्दादिल कवि इस सम्बन्धमें कितने अच्छे शब्दोंमें अपने विचार प्रकट करता है :—

जन्नत परस्त जाहिद कब हक़ परस्त है ।

हुरोंपर मर रहा है, शहवत परस्त है ॥

कहना न होगा कि यह बहुत मज़ेकी बात है कि हमारे कुछ मनचले लेखक और कवि भी कभी-कभी बिछड़े हुए प्रेमियोंका आलिङ्गन कराकर अपनी हवस मिटा लिया करते हैं। फिसाना आज़ादमें ज़िक्र है कि मियाँ आज़ादने जब मख्तबखानेका मुआइना किया और नुक्स निकाले तो उनमें एक नुक्स यह भी था कि हिलहिलकर पढ़ना ऐब है, मगर कहें किससे ? मौलवी साहेब तो खुद भूमते हैं ।

खैर, इस पचड़ेको जाने दीजिये, मतलबकी बात यह है कि त्याग बिना प्रेम नहीं, और प्रेम बिना बलिदान नहीं। बलिदान बिना यज्ञ नहीं। यज्ञके अभावमें मैथुनादि कर्म केवल पशुधर्म है। इसी पशुकी प्रेम यज्ञमें कुर्बानीकी आवश्यकता है और पूर्णाहुतिमें अपने आत्म-समर्पण की।

स्वामी विवेकानन्दजी महाराजने भी एक स्थलपर कहा है कि अपने आपको यज्ञका पशु समझो और तुम्हारा जन्म ही इस-

लिये हुआ है कि तुम अपनी माताके लिये कुर्बान किये जाओ। 'खाओ, पिओ, बच्चे पैदा करो'के सिद्धान्तका माननेवाला यज्ञके इस विधानको नहीं समझ सकता। इस विधानके रहस्यको प्रेममें लीन प्रेमयोगी ही समझ सकता है।

जिस प्रकार आत्माके दर्शन होनेमें मल, विक्षेप और आवरण बाधक होते हैं, उसी प्रकार इन्द्रिय एवं मनोविकार आध्यात्मिक जीवनकी सफलतामें प्रतिबंधक हैं। इस बातको स्वामी रामतीर्थजी महाराजने अच्छे ढङ्गसे समझाया है जिसे उनके ही शब्दोंमें सुनिये :—

थीं मनके मन्दिरमें रक्स १ करती,
तरह तरहकी सी ख्वाहिशें मिल।
चिरागे-खाना २से जल गयीं सब,
खड़े हैं रोम और गला रुके है ॥
गुलोंके बिस्तर पै ख्वाब ऐसा,
कि दिलमें दीदोंमें खार भर दे।
है सीना क्यों हाथसे गया दब,
खड़े हैं रोम और गला रुके है ॥

इन पंक्तियोंका अभिप्राय यह है कि मनरूपी मन्दिरमें जो तरह तरहकी ख्वाहिशें मिलकर नाच रही थीं, वे घरके दीपकसे ही आग लग जानेसे सब जल गईं। गुलोंके बिस्तरपर ऐसा खौफनाक ख्वाब आ रहा है कि दिलमें और आँखोंमें काँटे भर दे। अपने हाथसे, ऐ गुल, तेरा सीना क्यों दब गया कि जिसके कारण

१ नाचती। २ घरका चिराग, आत्माका प्रकाश।

ऐसा भयङ्कर स्वप्न आरहा है और रोमांच होता और गला रुकता है। मतलब यह है कि माशूकके विस्तरपर लेटकर भी हमें अपने आध्यात्मिक जीवनकी पवित्रता बनाये रहनेके लिये इन्द्रिय लोलुपता एवं उसकी वासनाका त्याग कर देना होगा, अगर वास्तवमें हम अपने माशूकको चाहते हैं और इन्द्रियोंकी वृत्ति नहीं चाहते। ध्यान रहे कि पवित्र प्रेममें सौन्दर्य बलिदानकी वेदी है, वासनाकी वृत्ति करनेकी वेदी नहीं। इसीलिये उसका स्पर्शतक शुद्ध सात्विक प्रेमके लिये प्रेमयोगमें निच समझा गया है। किसी तत्ववेत्ताने कहा भी है :—

Beauty is to be admired and not to be touched.

वेदमें तीन प्रकरण हैं, कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्ड। यज्ञादिक कर्मकाण्डमें सम्मिलित हैं। इन्द्रिय-लोलुपता एवं उसकी वासनाका प्रेममें बलिदान प्रेमयज्ञ कहलाता है। अज्ञानके परदेमें छिपे हुए हृदयाकाशस्थित सुन्दरसे भी सुन्दर प्रेमस्वरूप अपने प्यारेके प्रेमको प्राप्त करने और उसके अद्वितीय सौन्दर्यको देखनेके प्रयत्नको उपासना या प्रेमयोग कहते हैं। गुरु नानक महाराज इसके सम्बन्धमें यों समझाते हैं :—

पुष्प मध्य जो बास बसत है, दर्पण माहिं ज्यों छाई ।

तैसे ही हर बसत निरन्तर, घटहीमें खोजो भाई ॥

कर्मकाण्डके अनुष्ठानसे मल अर्थात् पाप दूर होते हैं और उपासनासे चित्तकी चंचलता अर्थात् विक्षेप मिटता है। इन दोनोंके दूर होने पर अज्ञानका परदा जिसे आवरण कहते हैं, उठता है। तब यह प्रेमाभिलाषी जीव अपने प्यारेको पाता और

उससे एक हृदय होकर अमर होता है। इसे निर्वाणपदको प्राप्त होना या प्रेमके प्रसाद (फजल) में प्रविष्ट होना कहते हैं, ज्ञान योग भी कहते हैं। इस प्रकार प्रेमके इस प्रसादमें प्रविष्ट हो जानेपर वह सौन्दर्य-संसार एवं उसके प्रेमका स्वामी बनता है और तब हुस्नके कुल नजारे उसके इशारेपर नाचते हैं। ऐसी प्रेमकी महिमा है। यह मानी हुई बात है कि नदी नाले समुद्रसे मिलकर समुद्र बनते हैं और जुज कुलसे मिलकर कुल बनता है। अतः इस सम्बन्धमें अधिक तर्क-वितर्ककी आवश्यकता नहीं मालूम होती और इस बातको एक कवि इस प्रकार समझता है—

मिटती है लहर जिस दम वह ही तो बहर^१ है।

हर चार सूर^२ है शोला^३ मत देख तूर^४ में ॥

और भी—

अपना हजाव^५ आप है, ए तू मियाँ नियाज ।

उठने से तेरे होता है, उठना हजावका ॥

इस स्थलपर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि प्रकृतिका सहारा लेकर भी मनुष्य प्रेमस्वरूप प्यारे तक पहुँच सकता है। क्योंकि प्रकृतिके सौन्दर्यमें भी तो वही उतरा है। जिनकी आँखें प्रकृति (Matter) के सौन्दर्यमें पुरुष (Force) को देखनेकी अभ्यासी है और जो हसीनोंके हुस्न और नाजोअदामें ही नहीं किन्तु सर्वत्र उस कारण रूप अव्यक्त पुरुषको ही सदैव देखती हैं, ऐसे प्रेमी जिनका मन सौन्दर्यके चमत्कारोंसे विचलित नहीं होता और

१ समुद्र । २ तरफ । ३ अग्निकी ज्वाला । ४ अग्निका पहाड़ जहाँ हज़रत मूसाने अग्निकी ज्वाला देखी थी । ५ परदा ।

जो जितेन्द्रिय हैं, प्रकृतिके द्वारा भी प्यारेको प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकारसे प्राप्त करनेके उपायको भक्तियोग कहा जा सकता है। देखिये, एक भक्त कवि प्रेमके आवेशमें अपने प्यारेको सम्बोधित कर कितने अच्छे शब्दोंमें प्रेमसे सराबोर अपने भावोंको व्यक्त करता है :—

तुझे देखें तो फिर औरोंको किन आँखोंसे हम देखें ।
यह आँखें फूट जायें गर्चे इन आँखोंसे हम देखें ॥
दूसरा कवि इस प्रकार कहता है :—

हर एक गुल में बू होकै तूही बसा है,
सदाहाये-बुल-बुलमें तेरी नवा^१ है ॥

चमन फ़ौजे-कुदरत से तेरे हरा है,
बहारे-गुलिस्तां^२ में जल्वा तेरा है ॥

मकां तेरा हरएक ऐ लामकां है ।
निशां हर जगह तेरा ऐ बेनिशां ॥

न खाली जिर्मी है न खाली जमां^३ है,
कहीं तू निहां^४ है, कहीं तू अयां^५ है ॥

पवित्र और स्वच्छ मनमें उसकी वृत्तियाँ दर्पणके समान होती हैं, जिनके स्थिर होनेमें प्रेममय प्यारेसे मेल पा जानेपर अपना आनंद टपकता है, जिसे विषयी बाहरसे आया हुआ समझता है। जिस प्रकार स्थिर और निर्मल जलमें सूर्य अपने आप चमकता है, उसी प्रकार प्रेमयोगी अपनी लगन अर्थात् समाधिमें विषयोंके बिना ही

१ गोत । २ बागकी बहारमें । ३ काल । ४ छिपा हुआ ।
५ जाहिर ।

अपने टपके हुए आनन्दका मज्जा लेता है ।

अगर प्यास न हो तो जल अच्छा नहीं लगता और भूख न हो तो भोजनमें रुचि नहीं होती । विषयकी इच्छा या वासना न हो तो स्त्रीसे आनन्द नहीं मिलता । अगर आनन्द इन सबका सहज और स्वाभाविक गुण होता तो हर समय उनसे मिलता रहता । आनन्द तो अपने आपमें है जो मनकी वृत्तियोंके शान्त होनेमें प्रेम स्वरूप प्यारेसे मेल हो जानेपर मिलता है । देखिये, स्वप्नमें मनुष्य स्त्री-सहवाससे उसी प्रकार वृत्त हो जाता है । वहाँ अपना ही खयाल होता है, स्त्री नहीं होती । अतः यह कैसे माना जाय कि बिना स्त्रीके आनन्द नहीं मिल सकता ।

स्त्री-द्वारा मिले हुए इस आनन्दको स्वामी रामतीर्थजी महाराज इस प्रकार वर्णन करते हैं:—

अजमल चुभती थी मुँहमें जब रगको,

खून लगता लजीज़ था सगर को ।

मज्जा अपने लहूका आता था,

पर वह समझा मज्जा है हड्डी का ॥

स्वर्गकी नेमते हों, दुन्यांकी,

हैं तो यह हड्डियाँ ही मुरदों की ।

इनमें लज्जित जो तुमको आती है,

दरअसल एक आत्माकी है ॥

ध्यान रहे कि जितना अधिक मनका निग्रह होता है उतना अधिक आनन्द मिलता है । प्रेम योगमें तो पूर्ण निरोध होकर

१ हड्डी । २ कुत्ता ।

प्रेम स्वरूप प्यारेसे मिलाप होनेसे पूर्ण आनन्द मिलता है, जिसका मजा प्रेमयोगी लेकर अमरत्वको प्राप्त होता है। यही प्रेमका आनन्द है। प्रेम और उसके आनन्दको एक प्रेमी कविने इस प्रकार अपने शब्दोंमें ढाला है:—

जो दिलको तुमपर मिटा चुके हैं, मजाके-उल्फत उठा चुके हैं।
वह अपनी हस्ती मिटा चुके हैं, खुदाको खुदहीमें पा चुके हैं ॥
न हमसे, प्यारे, छुड़ाओ दामन, न देखो बागो-बहारो-रिजवां१।
कब उनको प्यारे हैं हूरो-गिलमा,२ जो तुमको प्यारा बना चुके हैं ॥

इस सम्बन्धमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि निर्मल हृदय-में ही निर्मल प्रेम अपना घर करके चमकता है और हृदयकी पवित्रता ब्रह्मचर्यके पालनके बिना हो नहीं सकती। ऐसी दशामें यह मानना होगा कि ब्रह्मचर्यके अनुष्ठानके बिना मनुष्य प्रेमयोग का अधिकारी नहीं बन सकता। कहनेका तात्पर्य यह है कि पारमार्थिक प्रेमके लिये ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है। जबतक कि अन्तःकरणसे इन्द्रिय एवं मनोविकारकी जड़ उखाड़कर न फेंक दी जाय, तबतक शुद्ध सात्विक प्रेम हृदयमें चमक नहीं सकता। कारण, मनमें प्रेम या विषय वासना ही रह सकती है; दोनों एक साथ नहीं रह सकते। अन्तःकरणकी पवित्रताको जरूरी बतलाते हुए आजाद कवि कहते हैं:—

दिल साफ़ कर लिया है, दुनियाके मलसे जिसने।
वह देखता है दिलमें, दर्शन मुदाम३ तेरा ॥
आजादको सिखा दो, प्रीतीकी राह अपनी।
जिससे अमर हो पीके अमृतका जाम तेरा ॥

१ स्वर्ग, बिहिश्त। २ अप्सरायें और सुन्दर तथा सुकुमार दास। ३ हमेशा।

सत्तामें होती हैं। इसीलिये सबकी जान अर्थात् आत्मा प्रेमको कहा गया है। जो कुछ भिन्नता दिखाई देती है, वह केवल नाम और रूपमें है।

बहारे-गुलशन और हसीनोंके ही नहीं किन्तु सर्वत्र ह्रस्वमें उसी प्रेमस्वरूप प्यारेका जल्वा है। प्रेमसे पूर्ण प्रेमियोंके हृदयमें छलककर वही उनके दिलोंको बरकत देता हुआ आनन्दसे उन्हें सराबोर करता है। कहना न होगा कि प्रेम ही सबमें सबकुछ है और आदि अन्त न होनेसे इसका पूर्णरूपेण निरूपण नहीं हो सकता। जितना पत्रमें लिखा जा सका है, उससे प्रेम-निबंध तैयार करनेमें, प्रिये, तुम्हें कुछ सहायता अवश्य मिलेगी और जो कुछ कमी होगी उसे तुम प्रेम-जिज्ञासु होनेसे, स्वयं पूर्ण कर लोगी, ऐसी आशा है। पत्रका मजमून बहुत बढ़ गया है, अतः अब प्रेमकी अनन्त शक्तिके सम्बन्धमें प्रसिद्ध कवि पं० श्रीधर पाठककी रचना की कुछ पंक्तियाँ लिखकर लेखनीको विश्राम देना उचित है।

प्रेम वार है प्रेम पार है, प्रेमहि है मँझधार।

बेड़ा पड़ा प्रेम सागरमें, प्रेमसे होगा पार ॥

होजा निडर, छोड़ दे गड़बड़, पकड़ प्रेमकी धार।

प्रेमके बलसे केवल होगा, निबल तेरा निस्तार ॥

अन्तमें स्वामी रामतीर्थजी महाराजकी लेखनीसे निकली हुई प्रेमस्वरूप प्यारेकी उसी अनन्त शक्तिके सम्बन्धमें उपयुक्त पंक्तियाँ उद्धृत कर पत्रको समाप्त करता हूँ।

यह राम सुनियेगा क्या कहानी, शुरु न इसका, ख़तम न हो यह ।।
जो सत्य पूछो, है राम ही राम, है महेजधोखा यह सारी दुनिया ॥

तुम्हारा प्यारा,

प्रेमस्वरूप

सुकुमार भावनाओंके प्रेम-पत्र

‘प्रभाकर’—सम्पादक

[लेखक—कपिलदेव नारायण सिंह ‘सुहृद’]

आनन्द-भवन

छपरा

१४-८-३७

मेरे ब्रह्मदेव,

वह समय मैं नहीं भूलती। आप सामने बैठे हैं, आपके मुखसे कोमल शब्दोंकी झड़ी लगी है, मैं मंत्र-मुग्ध-सी बैठी हूँ। हृदय-सागर लहरियोंपर हिलोरें ले रहा है। सुन पाया कि आप आये हैं, फिर मेघका गर्जन हो, वर्षाकी झड़ी लगी हो, ग्रीष्मको झुलसानेवाली तपन हो, या शिशिरको सिहरा देनेवाला पाला हो, भला हृदय आपका दर्शन किये बिना कब माननेवाला है। फिर उसमें आपने कविका जो हृदय पाया है, वह तो और भी मेरे दिल-को बेचैन कर देता है। एक-एक पंक्ति आपकी रचनाकी सुनकर कुछ ऐसी मीठी बोली हो जाती है, जिसे मैं कहूँ क्या। ‘दो प्रेमी’ वाली कविता तो बार-बार गुनगुनाती हूँ, संसारको भूल जाती हूँ।

लव लेटर्स

ॐ ॐ ॐ ॐ

मेरे आप ही—आपने मुझे कविता रस-पान कराया, इस कंटकाकीर्ण पथमें प्रवेश करा दिया, अब जो स्रोत फूट पड़ा है वह रुक ही नहीं सकता। आपकी रचनाएँ पढ़ती हूँ, अपनी टूटी-फूटी कुछ पंक्तियाँ बनाती हूँ, बस इन्हीं कार्योंमें जीवनकी राह काट रही हूँ। यद्यपि मैं छोटी हूँ, फिर भी दिल नहीं रुकता। लेखनी कुछ लिखनेको अग्रसर हो ही जाती है, टूटी-फूटी भाषामें कुछ लिख ही लेती हूँ। मैंने एक रचना आपकी सेवामें जो भेजी है, उसे किसी पत्रिकामें सुधा या नवशक्तिमें भेज देनेकी कृपा कीजियेगा। यह आपहीका प्रसाद है, भूलियेगा नहीं। पत्र तो बराबर भेजते रहियेगा। वह इसे सूखे हृदयको सींचनेका काम करेगा। मैं उत्तर दूँ या न दूँ, आपकी यादमें उत्तर देनेकी भी सुधि संभव है न रहे, पर आप सदैव लिखते रहियेगा। मालूम नहीं क्यों आपकी प्रतीक्षामें हृदय सदा विह्वल रहता है। पत्र अवश्य लिखियेगा, अवश्य, अवश्य और क्या लिखूँ—

आपकी वही

किरण

पत्रोत्तर

‘आनन्द बाग’ मुँगेर

१८-८-३७

प्यारी किरण !

स्नेह अभिवादन, पत्र तुम्हारा पाया।
मेरा बिछुड़ा हृदय दर्पसे, बार-बार भर आया ॥
चूमा, फिर चूमा, फिर चूमा, मन न भरा चूमता रहा।
उन बीती बातोंकी स्मृतिमें, बेसुध हो भूमता रहा ॥

बहुत दिनोंपर इस सेवककी, भूली याद तुम्हें आई ।
मेरा भाग्य ! आज पतझड़में, ऋतु बसन्त मैंने पाई ॥

जो आज है छोटी कली
कल फूल बन कर आयगी ।
उसकी सुगन्ध प्रकीर्ण हो
वनमें चतुर्दिक छायगी ॥

हँसकर उसीसे मोद पाकर
खिल उठेंगी क्यारियाँ ।
कलियाँ बनेंगी फूल औ
हँस जायँगी फुलवारियाँ ॥

तुम मौन कैसे रह सकोगी
जब हृदयकी बात है ।
मनमें अगर है बेकली
दृगमें अगर बरसात है ॥

छोटी कली भी है चटखती
तब न क्यों तुम भी खिलो ।
भावनाकी वायुमें
किसलय न क्यों तुम भी हिलो ॥

चिनगारियाँ ज्वाला बनेंगी
यह नहीं क्या ज्ञात है ।
तुम मौन कैसे रह सकोगी
जब हृदयमें बात है ।

तुम्हारा—

ब्रह्मदेव

चन्द्रावलीका प्रेम-पत्र

[लेखक—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र]

संध्यावली—राम-राम ! मैं तो दौरत-दौरत हार गई, या ब्रजकी गऊ का हैं साँड़ हैं ; कैसी एक साथ पूँछ उठायकै मेरे संग दौरी हैं, तापें वा निपूते सुवलको बुरी होय और हू तूमड़ी बजायकै मेरी ओर उन सबनै लहकाय दीनी, अरे जो मैं एक संग प्राण छोड़िकै न भाजती तौ उनके रपट्टा मैं कबकी आय जाती । देखि आज वा सुवलकी कौन गति कराऊँ, बड़ो ठीठ भयो है प्राणनकी हौंसी कौन कामकी । देखौ तौ आज सोमवार है नन्दगाँवमें हाट लगी होयगी वहाँ जाती, इन सबनने बीच ही आय धरी, मैं चन्द्रावलीकी पाती वाके यारैं सौंप देती तो इतनो खुटकोऊ न रहतो (घबड़ाकर) अरे आई ये गौवें तो फेर इतैही कूँ अरराई । (दौड़कर जाती है और चोलीमेंसे पत्र गिर पड़ता है)

(चम्पकलता आती है)

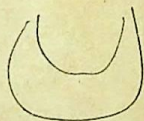
चम्पकलता—(पत्र गिरा हुआ देखकर) अरे ! यह चिट्ठी किसकी पड़ी है, किसीकी हो देखूँ तो इसमें क्या लिखा है ।

(उठाकर देखती है) राम-राम ! न जानै किस दुखियाकी लिखी है कि आँसुओंसे भीजकर ऐसी चिपट गई है कि पढ़ी ही नहीं जाती और खोलनेमें फटी जाती है (बड़ी कठिनाईसे खोलकर पढ़ती है) ।

‘प्यारे !

क्या लिखूँ ! तुम बड़े दुष्ट हौ-चलौ-भला सब अपनी बीरता हमीपर दिखानी थी । हाँ ! भला मैंने तो लोक वेद अपना बिराना सब छोड़कर तुम्हें पाया, तुमने हमें छोड़के क्या पाया ? और जो धर्म उपदेश करो तो धर्मसे फल होता है, फलसे धर्म नहीं होता, निर्लज्ज लाज भी नहीं आती, मुँह ढको फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हो, चलो बाह ! अच्छी प्रीति निबाही, जो हो तुम जानते ही हौ, हाय कभी न करूँगी यो हीं सही अन्त मरना है, मैंने अपनी ओरसे खबर दे दी, अब मेरा दोष नहीं, बस ।

केवल तुम्हारी’



(लम्बी साँस लेकर) हा ! बुरा रोग है न करै कि किसीके सिर बैठे बिठाये यह चक्र घहराय, इस चिट्ठीके देखनेसे कलेजा काँपा जाता है, बुरा ! तिसमें स्त्रियोंकी वड़ी बुरी दशा है, क्योंकि कपोतव्रत बुरा होता है कि गला घोट डालो मुँहसे बात न निकले प्रेम भी इसीका नाम है, राम-राम उस मुँहसे जीभ खींच ली जाय जिससे हाय निकलै । इस व्यथाको मैं जानती हूँ और कोई

चितेराकी चिट्ठी

[प्रेषक—प्रसिद्ध चित्रकार केदारनाथ शर्मा]

कान पूर

नव-दो-ग्यारद

प्रिये सरोज,

आँख भौं टेढ़ी कर मुझे अकेला छोड़ जिस घड़ीसे तुमने डेरा डंडा सँभाला, आगरे चलदों एक भी पत्र न दिया। सिर-पर भूत सवार था, जरासी बातको तिलसे ताड़ बना डाला। हृदय मन्दिर की देवी, तुम मेरी आँखों की पुतली हो। मैं शून्य हूँ तुम नव हो। तुम्हारी चाँद सी तस्वीर की अनिष्ट कल्पनासे मेरा माथा ठनकता है, आँखें आठ-आठ आँसूवहाती हैं। हाथ पाँव फूल जाते हैं। एक घड़ी भी आँख नहीं लगती। पलंग पर पड़ा दिन दहाड़े तारे गिना करता हूँ। लोग दाँतों तले उँगली दबाते हैं मेरा आधा शरीर देख कर तुम्हारी हाथ की चूड़ियों का झनकार सुनने को तुम्हारी बिल्ली तोता और घर की मेज बक्स किताबें सभी सिर धुना करते हैं।

मेरा तो नाक में दम है, कलेजा मुँह को आ लगा है। खैर अब तो ओखली में सिर पड़ ही गया है। मैं तुम्हारे चरणों पर सिर रगड़ता हूँ। अब दया कर निज करकमलों से

शीघ्र समाचार दो । तुम्हारे पव बारह पड़े । दो तीन महीनों में
ही आँटा दालका भाव जान गया । मुझे सोलह आना विश्वास
है कि मुझे धूनी रमाना न पड़ेगा । तुम आँखें चार कर आँखों
में तरी ला दोगी । पत्थर पर दूब जमा दोगी—

‘चहे रूठके झूठ ही दोष लगाय के,

क्रोधसे गाल फुलायां करौ ।

भले बार हजार सरापौ हमें,

भर पेट सदा गरियाया करौ ।

इतने हूँ पै जो नहीं पेट भरे,

कवि ‘चोंच’ तो लात लगाया करौ ।

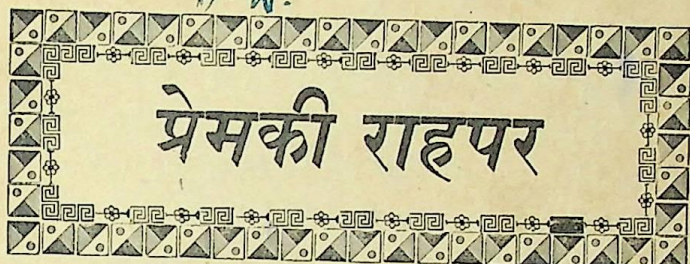
इतने हम पै तुम दाया करौ,

निज नैहर को जिन जाया करो ।’

तुम्हारा—शशी

नोट—इस पत्रमें चित्रवाले शब्द सीधे तथा कुछ काले अक्षरों
में दिये गये हैं और शेष मजमून उससे महीन तिरछे टाइपमें ।
कैदारनाथ शर्मा काशीके प्रसिद्ध चित्रकारोंमेंसे हैं । काशी ही क्यों
संयुक्त प्रान्त-भरमें भी आप एक अच्छे चित्रकार समझे जाते हैं ।
आपकी कृपासे यह चित्र हमें प्राप्त हुआ है । पाठकोंके मनोरंजनार्थ
हमने इसे यहाँ प्रकाशित किया है । उधर दिये हुए चित्रसे यदि
मतलब अच्छी तरह हल न हो तो ऊपर दिये हुए संकेतसे लाभ
उठावें । कैदार बाबूको हम इसके लिए प्रेमी पाठकोंकी ओरसे
धन्यवाद देते हैं ।—सं०

H. W.



[लेखक—पण्डित लक्ष्मणनारायण गर्दे]

(ये पत्र काल्पनिक नहीं, अक्षरशः सत्य हैं । पत्र बड़े ही मार्मिक और हृदयमें घर कर लेनेवाले हैं । इनका एक-एक शब्द बिलकुल नया तुला और उच्चकोटिकी भावनाओंसे ओत-प्रोत है । हम प्रेमी पाठकोंसे आग्रह करते हैं कि ऐसे पत्र एकाग्र चित्तसे पढ़कर लाभ उठावें ।—सं०)

[१]

प्राणनाथ,

अबतक हम-तुम साथ-साथ, हाथमें-हाथ डाले और हृदयसे-हृदय मिलाये, प्रेम और आनन्दमें विभोर हुए चले आये, और अब तुम अकस्मात् कहाँ छिप गये ? मुझे अकेली सबके बीच छोड़कर कहाँ चले गये ? नाथ, मैं सुन्दरी नहीं हूँ, इसलिये तो मुझे छोड़कर नहीं चले गये ? मैं शृङ्गार करना नहीं जानती, तुम्हें

रिझाना नहीं जानती, इसलिये तो नहीं चले गये ? या मुझसे तुम्हारा बस इतना ही मतलब था कि दो-चार सन्तान तुम्हारे नामका जगमें उँजियारा करनेवाले हो जायँ और फिर तुम मुझे इसी तरह रोती-बिलखती छोड़कर कहीं छिप जाओ, कहीं चल दो ? ये श्याम और गौर तुम्हारे हैं, ये निर्मला और विमला तुम्हारी हैं । इन्हें तो अपने संग ले जाना था । इन्हें मेरे पास क्यों छोड़ गये ? मुझे इसी तरह छोड़ देना था तो मेरे साथ सम्बन्ध जोड़नेकी ही क्या जरूरत थी ? मैं काँरी ही बनो रहती ! तुमने मेरा काँरापन ले लिया और अब क्यों दुराते हो ? मेरा क्या अपराध है ? क्या मेरी दृष्टि कभी पापी तो नहीं हुई जो तुम्हारी दृष्टि मुझसे खिंच गयी ? मेरे मनमें, स्वप्नमें या जागतेमें, कोई पाप तो नहीं घुस बैठा जो तुम्हारा मन मुझे छोड़ गया ? तुम्हारे सिवाय क्या और किसीका भी मैंने कभी चिन्तन किया है ? यदि किया हो तो मुझे यह दण्ड दो, मैं उसे तब सह लूँगी, उसीमें जल मरूँगी । और नहीं तो, मुझे इस अग्निमें क्यों तपा रहे हो ? मैं तुमसे और कुछ तो नहीं चाहती । पर अपने दोनों पुत्रों और पुत्रियोंकी सम्भाल तो करो और मुझे अपने हृदयकी लक्ष्मी न सही, चरणोंकी दासी तो बनी रहने दो । मैं रूप सुन्दरी न सही, गुण-सुन्दरी न सही, पर हूँ तो तुम्हारी ही । फिर तुमने मुझे इस तरह क्यों छोड़ा—क्यों मुझसे जुदा हो गये ? क्या तुम समझते हो कि मैं इस हालतमें जीती रह सकती हूँ ? नाथ, मैं एक क्षण भी यह वियोग नहीं सह सकती । तुम जहाँ हो, वहीं यह पत्र तुम्हें मिले और तुम शीघ्र चले आओ ।

तुम्हारी परित्यक्ता (?)

[२]

प्राणेश्वरी,

तुम अपने आपको परित्यक्ता समझकर दुःख क्यों करती हो ? तुम्हारा यह दुःख मुझसे नहीं सहा जाता । पर हाँ, तुम्हारे दुःखका कारण तो मैं ही हो सकता हूँ । जरूर मेरा कोई दोष है जिससे तुम जैसी सती प्रेमिकाको इतनी पीड़ा पहुँची है ! पर वह दोष क्या है, यह तुम बतला सकती हो ? नहीं बतला सकतीं, क्योंकि तुम्हारी आँखोंपर सदासे वह पट्टी बँधी है जो मेरे गुण ही देखनेके लिये खुला करती है, मेरे दोषोंके सामने तो ऐसे बँधी रहती है जैसे कृपणकी थैलीका मुँह । सारी दुनिया मुझमें दोष देखे तो भी तुम नहीं देख सकतीं । इस बातको मैं इतनी अच्छी तरहसे जानता हूँ कि जितना कोई अपने दिलका हाल भी नहीं जानता । इसीसे मैं लाचार हूँ और तुमसे ऐसे बँधा रहता हूँ जैसे साहुकारसे उसका कर्जदार असामी । मेरा हृदय तुमसे जुदा कब हुआ, कहाँ हुआ ? तुम कहती हो, मैं सुन्दरी नहीं हूँ, शृङ्गार करना और रिझाना नहीं जानती, इसलिये तुम्हें नहीं भाती और इसीलिये तुम मुझे छोड़ गये होगे । पर मेरे हृदयकी स्वामिनी, इनमेंसे एक भी बात यदि सच होती तो मैं कठोर-से-कठोर दण्डका पात्र होता । तुम्हीं बताओ, तुम्हारा सौन्दर्य मेरे लिये है या तुम्हारे अपने लिये ? तुम कहोगी, तुम्हारे लिये । जब यही बात है तब उस सौन्दर्यको तो मैंने अपनी आँखोंमें छिपा लिया है । अब तो तुम उसे मेरी आँखोंमें देख सकती हो, और कहीं भी नहीं । सच-सच तुम्हें बतला दूँ ? मैं तुम्हारे सौन्दर्यपर मुग्ध हूँ । और तुम्हारा शृंगार तो सहज है,

बाहरी शृंगार तो उन स्त्रियोंको करना पड़ता है जिनमें सहज सौन्दर्य, सहज शृंगार नहीं होता। बाहरी शृंगार दूसरोंको और अपने आपको धोखा देनेका एक स्वांग है। जिनके मन तन प्राण निकलंक और प्रेमानन्दमें विभोर हैं उनके मुखकी शुभ्र कान्ति शरच्चन्द्रको भी मात करती है। पर तुम्हारा यह सौन्दर्य और शृंगार देखनेवाली आँख तो मेरी ही है, क्योंकि तुम्हारे प्राण तो उछल पड़ते हैं मेरी ही आँखपर, अपनी या किसी दूसरेकी आँखपर नहीं। तुम्हारा मेरी ओर सरल-सरस प्रेमदृष्टिसे निहारना, इससे बढ़कर मुझे रिझाना और हो ही क्या सकता है ? पर यह ख्याल तुम्हारे अन्दर कहाँसे समाया कि मैं तम्हें रोती-विलखती छोड़कर चला गया। मैं तो कहीं भी नहीं गया हूँ। मेरा मन तुम्हारे पास है, अपने मनसे पूछो। और अपने श्याम और गौरकी आँखोंसे पूछो, निर्मला और विमलाके विमल-निर्मल दर्शनमें देख लो कि तुम्हें मैंने किस तरह अपने साथ रखा है। तुम जुदाई जिसे कहती हो, उसमें भी मैं तुम्हारे पास हूँ।

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा ।

जानत प्रिया एक मन मोरा ॥

सो सुनु सदा रहत तोहिं पाहीं ।

जानु प्रीति रस इतने हि माहीं ॥

तुम्हारा चिरसंगी

[३]

प्राणनाथ,

तुम्हारा तुम्हारे-जैसा ही प्रेम-रस भरा पत्र मिला। मैं नहीं जानती कि प्रेम क्या होता है, पर मुझसे कोई पूछे तो मैं यही उत्तर दूँगी कि प्रेम कोई चीज है जो मेरे प्राण-पतिके पत्रमें बन्द रहती है। पर प्राणनाथ, प्रेमका यह तत्व मैं नहीं समझ सकती। तुम्हें जब मैं अपनी आँखोंके सामने नहीं देखती हूँ तब इतनेसे मेरा संतोष नहीं हो सकता कि तुम्हारा मन तो मेरे ही पास है। मनके पास मन होगा। पर प्राणोंके पास प्राण—मेरे प्राणोंके प्राणनाथ कहाँ हैं ? मनके पास तुम्हारा मन, इस शरीरका स्वामी कहाँ है ? क्या मेरे हृदयका हाल तुम नहीं जानते ? क्या यह मैं सह सकती हूँ और फिर भी इसी विरहको मिलन समझूँ ? मार भी सहूँ और कुछ बोलूँ नहीं ? प्राणनाथ, तुम ऐसे निर्दय क्यों हो गये ? मुझे छोड़कर क्यों चले गये ? हाँ, श्याम और गौरकी आँखोंसे पूछती हूँ, निर्मला और विमलाके विमल नील दर्पणमें देखती हूँ, तुम्हीं तुम हो। अपने मनसे पूछती हूँ, तुम्हीं जवाब देते हो। पर यह सब देखना-ढूँढ़ना क्या है ? तुम तो नहीं हो ! ये सब तुम्हारे हैं, पर तुम नहीं ! ये तुम्हारे हैं, इसलिये मैं इनके बीच रहकर जी रही हूँ, पर तुम्हारे बिना जीना भार है। जहाँ तुमने रख छोड़ा है वहीं रहती हूँ, पर यह रहना नहीं, तुम्हें ढूँढ़ते हुए फिरकीकी तरह फिरा करना है। प्राणनाथ, कम-से-कम मुझे यही बता दो कि मुझसी कौन-सा ऐसा अपराध बना जिसके लिये तुमने मुझे यह दण्ड दिया और इस दण्ड-भोगकी अवधि कितनी है। मुझसे हतभागिन् और कोई न होगी

जो ऐसे पतिको पाकर भी उसके विरहकी आगमें जल रही है। प्राणनाथ, अब मुझसे नहीं सहा जाता, ये प्राण निकलकर तुम्हारे चरणोंमें पहुँचें और यह शरीर राख हो जाय। और अधिक क्या लिखूँ ?

तुम्हारी अधीरा

[४]

प्राणेश्वरी,

तुम्हारा पत्र मुझे वैसे ही मिला जैसे तुम मिलतीं। तुम्हारे प्रेम-भरे हृदयकी व्याकुलता मेरे प्रेमको लज्जित करती है। ऐसा मालूम होता है जैसे तुम बड़े वेगसे मेरी ओर दौड़ी चली आ रही हो और मैं तुमसे कह रहा हूँ कि अभी ठहरो। तुम सच कहती हो कि मैं निर्दय हूँ; पर यह भी तुम जानती हो कि मैं निर्दय नहीं हूँ। इसलिये तुम्हारा मुझे निर्दय कहना मुझे बड़ा प्यारा लगता है। तुम पूछती हो, तुमसे कौनसा ऐसा अपराध हुआ जिससे मैं तुम्हें छोड़कर चला गया। पर प्राणेश्वरी, तुम अपराधिनी नहीं हो, तुमसे अपराध बन ही नहीं सकता; क्योंकि तुम मेरे सिवाय और किसीका चिन्तन नहीं करती और जब मेरा ही चिन्तन करती हो तब जो कुछ तुम करती हो वह मैं करता हूँ। तुमसी निष्कलंक प्रेमकी प्रतिमा अपनी स्त्रीके रूपमें पाकर मैं धन्य हूँ। तुमने सब कुछ तो मुझे दे डाला है, अपना कुल, अपना नाम, अपना तन मन प्राण सब तो दे चुकीं और मैं ले चुका। अब तुम जो कुछ हो, सच जानो, मैं ही हूँ। और प्राणप्रिये, मेरी भी तो

तुम्हीं हो । तुम जी रही हो मेरे लिये, मैं भी जी रहा हूँ तुम्हारे लिये । मैं हूँ मनसे तुम्हारे पास और तनसे भी आना चाहता हूँ तुम्हारे पास, जिसमें तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण हों, कोई अभाव न रह जाय । मैं तुम्हें परिपूर्ण देखना चाहता हूँ । मेरे लिये सच पूछो तो, तुम जैसी हो, लक्ष्मी हो ; तुम्हारा स्मितवदन और प्रेम-भरी दृष्टि मेरी सारी सम्पदा है—सब सम्पदाओंकी अटूट खान है ; पर मैं तुम्हें बैरागिनका भेस नहीं पहनाना चाहता । तुम्हारा मन जैसा निर्मल और सब शुभ गुणोंका आकर है वैसा ही तुम्हारा बाह्य वेश भी परम रमणीय और महान् अधिकारसे पूर्ण होना चाहिये । तुम अधीर हो मुझसे मिलनेके लिये । और मेरी स्थिरतामें भी उसी अधीरताकासा वेग भरा हुआ है । तुम जिस ओर देख रही हो उसी ओरसे मैं आ रहा हूँ । तुम्हारे प्राण मेरे हैं न ? फिर तुम उनके निकल जानेकी बात कैसे सोच सकती हो ? तुम्हारा शरीर मेरा है न ? फिर उसे राख करनेकी इच्छा करनेवाली तुम कौन होती हो ? मैं उन प्राणोंसे प्राणालिङ्गन चाहता हूँ और उस शरीरको सजाना चाहता हूँ । इसलिये इन्हें जरा भी कष्ट न दो, वे मेरे हैं ।

तुम्हारा ही

[५]

प्राणनाथ,

तुम्हारा, फिर तुम्हारे जैसा ही अथाह, पत्र मिला । इस बार तुमने मुझे अपने जान ऐसा लोभ दिलाया है कि मैं उसमें पड़कर अपने-आपको खो बैठूँ और तुमसे जुदा रहना स्वीकार करूँ ! क्या इस लोभसे तुम मुझे अपने पास आनेसे रोक सकते हो ? नहीं, अब तो मैं नहीं रुकूँगी । नदीके किनारे-किनारे चाहे जितने सुन्दर-से-सुन्दर पुष्पोद्यान और फलोंसे लदे वृक्षोंके कानन हों, वे यदि नदीके वेगको समुद्रसे लौटा नहीं सकते तो मेरा वेग भी ये लोभ तुमसे जुदा नहीं कर सकते । तुम मुझे परिपूर्ण देखना चाहते हो ? पर कैसे ? अपनेसे जुदा करके ? मैं स्वयं जो तुम्हारे कारण पूर्णा हूँ उसे आनेसे हटाकर अपूर्णा करके ? क्या तुम मुझे इतनी भोली-भाली और नादान समझते हो कि तुम्हारे पास आना छोड़कर तुम जिस ऐश्वर्यकी बात कहते हो उसे लेनेके लिये हाथ पसार बैठी रहूँ ? तुम्हारी सारी सम्पदा तो मैं ही हूँ न ? फिर मुझे तुम और कौनसी सम्पदा देना चाहते हो ? मैं तो तुम्हें चाहती हूँ, तुम्हारी सम्पदाको नहीं । मेरी परिपूर्णता तो तुम हो ; और कौनसी परिपूर्णता है जो मेरे लिये तुमसे भिन्न हो ? तुम बैरागिनका भेस मुझे नहीं पहनाना चाहते ; तो क्या तुम बैरागी हो गये हो ? तब तो बैरागिनका भेस ही अबसे मेरा शृंगार है । अब मैं बैरागिन ही सजूँगी । तुम मुझे इस भेसमें देखना क्यों नहीं चाहते ? क्या तुम मुझे ऐसे भेसमें देखना चाहते हो जो तुम्हारा भेस नहीं ? मैं क्या तुमसे तुम्हारे बदले तुम्हारा नहीं बल्कि किसी गैरका भेस चाहती हूँ ?

प्राणनाथ, ये सब बातें मुझे न सुनाओ। मैं तो तुम्हारे पास आनेके लिये निकल पड़ी हूँ। मेरी साँस चल रही है यह तुम्हारे पास ही जा रही है। ये प्राण तुम्हारे बिना रह नहीं सकते, क्योंकि तुम्हारे हैं; जहाँ तुम होगे वहीं ये भी होंगे। जहाँ तुम न होगे वहाँ ये क्यों रहेंगे? ये मेरे नहीं, तुम्हारे हैं।

तुम्हारी अनन्य

[६]

प्राणेश्वरी,

मैं भी तुम्हारा हूँ। तुममें मुझमें कोई भेद नहीं, कोई अलगाव नहीं, कोई परदा नहीं। मैं जो कुछ हूँ सो ही तुम हो और तुम जो कुछ हो सो ही मैं हूँ। तुम्हारा सब कुछ जैसे मेरा है वैसे ही मेरा सब कुछ तुम्हारा है। संयोगमें हम तुम एक हैं, वियोगमें दो; पर दो तन एक प्राण। मैंने तुम्हें लोभ नहीं दिलाया है, तुम्हें भला कौन लुभा सकता है? तुम प्राणेश्वरी हो, तो क्या प्राणोंके राजसिंहासनपर तुम्हें न बैठाऊँ, अपनी सारी सम्पत्ति और शक्तिकी स्वामिनी तुम्हें न बनाऊँ? तुम जब मेरी हो तब तुम्हें मैं कैसे छोड़ सकता हूँ—अपने सारे प्रेमका सौन्दर्य देकर मैं तुम्हें सिंगारना चाहता हूँ। यह मेरी इच्छा है। मैं विरागी नहीं हो गया हूँ। मेरा स्वभाव तो तुम जानती हो कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, तुम्हारी हर बातसे प्रेम करता हूँ, तुम्हारी हर इच्छासे प्रेम करता हूँ। जो तुम चाहती हो वही मैं चाहता हूँ। यही मेरा स्वभाव है। पर जब तुम मेरी होते-होते सर्वथा मेरी हो

गर्यीं तब तुम्हारी कोई इच्छा ही न रही, तब तुम मेरी इच्छाके लिये खाली हो गर्यीं । अब मेरी इच्छा है, तुम्हारी नहीं । मुझे अपने हाथों अब तुम्हारा शृंगार करने दो, यह इच्छा मेरी, यह तन मन प्राण मेरा और यह सौन्दर्य और शृंगार भी मेरा ही है । तुम कहाँ हो ? मैं ही तो हूँ ।

संवाद

‘प्राणनाथ ! यह आवाज तो तुम्हारी है पर तुम कहाँ हो ?’

‘प्रिये, क्या तुम स्वप्न देख रही हो ? क्यों बार-बार इस तरह चौंक पड़ती हो और प्राणनाथ, प्राणनाथ कहकर चिल्लाती हो । मैं तो तुम्हारे पास बैठा हूँ ।’

‘प्राणनाथ, फिर मुझे ऐसे कभी न छोड़ जाना । मैं तुम्हारे बिना रह नहीं सकती । इन चरणोंमें ये आँखें लगी रहने दो ।’

‘प्रिये, तुमको यह क्या हो गया है ? कोई स्वप्न तो नहीं देखा ?’

‘ऐं ?...हाँ ‘स्वप्न ही तो था, पर स्वप्नमें भी प्राणनाथ, मैं तुम्हारा वियोग नहीं सह सकती ।’

‘पर वियोगमें भी मैं तुमसे अलग नहीं हुआ, यह बात तो जँच गयी न ?’

❀ इति ❀



प्रेम पत्रिका, लव लेटर नहीं

[लेखक—ब्रजरत्नदास बी० ए० एल-एल० बी०]

प्रिय,

काशी

१८-३-३३

आपका प्रेम-पत्र मिला। हृदयको कुछ ऐसा अनुभव हुआ मानों सुधा-सिंचनने उसकी समग्र ज्वालाको शांत कर दिया है। मैंने आपको कोई उलाहना नहीं दिया है और न देना चाहती हूँ क्योंकि मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि आप स्वयम् परवश हैं और आपको भी इस विच्छेदसे कष्ट ही है पर हृदय नहीं मानता था, इससे कुछ लिख गया था। क्या कहूँ। हँसिएगा मत ! जिस दिन मैंने आपको पत्र लिखा था, उसी रात्रिको स्वप्नमें मैंने देखा कि आप गृह आए हैं और आतुरताके कारण स्वागत करनेके लिए जो मैं उठी तो निद्रा तथा स्वप्न दोनों दूर हो गए। अपने दुर्भाग्य-को कोसती थी कि स्वप्नका सुख भी कुछ देरतक न उठा सकी। कहते लज्जा आती है, पर मैं उस रात्रि सो न सकी। आँखें कुछ लाल हो आई थीं। दूसरे दिन कुछ सहेलियाँ मिलने आईं और बहुत देरतक चित्त बहलानेके इस साधनसे मुझे शान्ति

मिली; पर वे सब मेरी आँखें लाल देखकर हँसी करती रहीं। मैं चुप थी, क्या उत्तर देती। इसी समय एक सखीने, जो आपके बाहर रहनेका वृत्त जानती थी, एक दोहा पढ़ा, जिससे वे सब कुछ समझकर चुप हो रहीं—

रात-जगी लालन-विरह, नैन भए रतनार ।

सखिन समुझि कछु और ही, हँसैं देइ करतार ॥

इसीके दो तीन दिन बाद आपका प्रेमपूर्ण उत्तर मिला। पढ़कर कुछ हँसी भी आई। आपने लिखा है कि प्राणनाथ क्यों लिखा है ? क्या शरीरनाथ मैं नहीं हूँ। पर शरीरनाथजी, आपने क्यों प्राणेश्वरी लिखा। मुझे तो केवल एक आप हैं, प्राणनाथ कहूँ या शरीरनाथ वा सर्वस्वनाथ कहूँ पर आपने क्यों केवल प्राणेश्वरी लिखा। उपदेशसे आदर्श उत्तम है। बतलाइए शरीरेश्वरी कौन है ? मेरा आपपर पूर्ण विश्वास है और यह भी जानती हूँ कि आपका मुझपर भी उसी प्रकार पूर्ण विश्वास है। यहाँ तो आप बड़ा परिहास किया करते थे वहाँ कैसे मुख बन्द किए रहते होंगे। अवश्य कष्ट होता होगा और इसीकी मुझे बड़ी चिंता लगी रहती है।

पत्र लंबा हो गया। क्षमा कीजिएगा।

आपकी (केवल प्राणेश्वरी

क.....

लव-लेटर्सके सम्बन्धमें चेतावनी

[ले०—मिर्जा इस्माइल 'वेग' एम० ए०]

भारतीय युवकोंमें कामुकताके भाव बढ़ रहे हैं। सौंदर्य-प्रियता बुरी नहीं, पर कला और सौंदर्योपासनाके नामपर काम वासनाको स्थान देना सर्वथा निन्दनीय है। पर आज हम देखते हैं, कि अधिकांश स्कूल और कालेजोंके छात्रोंकी मृत्युके बाद यदि उनके मकानोंकी तलाशी ली जाय तो किसी शायरका यह कथन सत्य निकलेगा—

चन्द तस्वीरे बुतां, चंद हसीनोंके खुतूत ।
बाद मरनेके मेरे घरसे सामां ये निकला ॥

समाचारपत्रोंमें बहुधा इस तरहके समाचार पढ़नेको मिलते हैं कि अमुक लड़कीका अमुक लड़केसे प्रेम सम्बन्ध स्थापित हो गया था। दोनोंमें खूब पत्र व्यवहार होता था। एक दिन लड़कीके पिताके हाथ उसका एक पत्र लग गया। पिताने लड़कीको बहुत भला बुरा कहा और उसके प्रेमी युवकको भविष्यमें पत्र न

लिखनेका आदेश दिया । इसके पश्चात् युवक या युवतीकी आत्म-हत्याका समाचार पढ़नेको मिलता है या दोनोंके किसी अज्ञात स्थानपर भाग जानेकी खबर मिलती है । इस प्रकारकी अनेक घटनाएँ आये दिन होती ही रहती हैं ।

हम जानते हैं कि किशोरावस्था और युवावस्थाके सन्धिकालमें हृदयमें कुछ नवीन भाव उठते हैं । सौंदर्योपासनाकी भावना बलवती हो उठती है । आधुनिक युगमें बायरन और शेक्सपियरकी रचनाओंका निरन्तर अध्ययन करनेवाले कालेजके युवक शीघ्र ही किसी कल्पना जगतमें विचरण करनेवाली कामिनोकी कल्पना कर डालते हैं । उनकी यह कल्पना इतनी बलवती होती है कि वे स्वप्नमें भी नहीं सोच पाते कि कविके कल्पना जगतकी सुन्दरी इस घराधामपर अवतरित नहीं हो सकती । मैं ऐसे कई अभागे युवकोंको जानता हूँ जो सौन्दर्य-पिपासाके पीछे पागल हो गये हैं । जिनके जीवनका आधेसे भी अधिक भाग सुन्दरियोंकी प्रशंसा और उन्हें प्रेम-पत्र लिखनेमें व्यतीत हो गया है । वे आज इस युवतीको प्रेम-पत्र लिखेंगे तो कल किसी और को । आज मिस परवानाकी तारीफ करेंगे तो कल मिस लुसीकी प्रशंसाके पुल बांधेंगे ।

पाश्चात्य शिक्षाके कीटाणुओंने हमारे देशके युवकोंके मस्तिष्कोंको इतना विकृत बना डाला है कि वे प्रेम प्रेम चिल्लाते तो हैं, पर प्रेम क्या है यह समझनेका कभी प्रयत्न नहीं करते । प्रेम एक पवित्र बन्धन है उसमें वासनाके लिये कोई स्थान न होना चाहिये । अभी थोड़े ही दिन पहलेकी बात है कि लन्दनमें एक युवती आत्महत्या कर मर गयी । उसकी छातीसे चिपके हुए

कुछ प्रेम-पत्र मिले थे। उन पत्रोंको पढ़नेसे पता चला कि युवती एक युवकको चाहती थी। युवकने समय समयपर उसे जो प्रेम-पत्र लिखे थे उनसे पता चला कि वह युवतीकी ओर आकृष्ट हो गया था। उसने उससे विवाह करनेका भी वादा किया था; किन्तु कुछ ही दिनों बाद उस युवककी धारणा बदल गयी। वह दूसरी युवतीसे प्रेम करने लगा। जिस दिन उसका वह धोखेबाज प्रेमी अपनी नयी प्रेमिकाके साथ विवाह करनेके लिये गिरजा घरकी ओर गया उसकी हताश प्रेमिकाने अपने प्रेमीके पुराने सब पत्र निकाले। उसके प्रेम-पत्रोंकी एक-एक लाइनको फिरसे पढ़ा। उसका हृदय भर आया। वह सोचने लगी कि पुरुषका हृदय इतना कठोर होता है? पुरुषकी निष्ठुरताके कारण उसके धैर्यका बाँध टूट गया। उसने अपने दगाबाज प्रेमीका नाम ले लेकर अपना प्राणांत कर लिया।

उक्त युवती मर गयी है पर लन्दनके कोरोनरके दफ्तरमें उसके वे प्रेमपत्र अभीतक रखे हुए हैं। क्या इससे यह बात प्रमाणित नहीं हो जाती कि आजकल प्रेमी युवक और युवतियोंकी हत्याओंको प्रोत्साहन देनेमें प्रेमपत्र घीका काम करते हैं।

मेरे एक हिन्दू मित्र हैं। अभी नये नये वकालत पास करके आये हैं। इस जमानेमें वकालतकी आमदनीका क्या कहना? यही गनीमत है कि घरकी सायकिलपर घरका बिना कुछ खर्च किये घर लौट आते हैं। यह अच्छा है कि अभी आपके पिताजी जोवित हैं। एक स्कूलमें अध्यापकी करके किसी तरह अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करते हैं। उनके सुपुत्र वकील साहबकी कमाईका तो ईश्वर ही मालिक है। ऐसा होनेपर भी आप पत्र

लिखनेमें बड़े पटु हैं। ऐसा बिरला ही कोई दिन जाता होगा जिसमें आप चार पाँच लिफाफे और चार पाँच पोस्ट कार्ड न लिखते हों। पत्र लिखते हैं फिर किसी वियोगिनीसे भी अधिक उत्कंठित होकर उनके उत्तरकी प्रतीक्षा करते हैं। कचहरी जा रहे हैं, अगर रास्तेमें पोस्टमैन मिल गया तो सायकिल रोक दी। पोस्टमैनको पुकारा 'ये ! सुनो, हमारी कोई चिट्ठी है ?' अगर पोस्टमैनने कोई पत्र दिया तो पहले उसे वहीं खोलकर पढ़ लिया तब आगे बढ़े। यदि आपको उस दिन कहींका कोई पत्र न मिला तो आप यह कहकर गाड़ीपर सवार हो जाते हैं, 'भई, डाकखानेवाले भी अजीब जीव हैं। न जाने सुबहकी डाक शामको देनेमें इन्हें क्या मजा आता है।'

उक्त वकील साहबसे मेरी काफी घनिष्ठता है। बेचारे मुझसे खूब हिलमिलकर बात करते हैं। कोई बात मुझसे छिपाते नहीं हैं। जिन दिनों आप पढ़ते थे उन दिनों आपकी जान पहचान एक लड़कीसे हो गयी। पहले साधारण बोलचाल आरम्भ हुई, फिर घनिष्ठता बढ़ गयी। पत्र व्यवहार आरम्भ हो गया। पढ़ाईके बाद जब हजरत घर आये तब भी प्रेम-पत्रोंका आना जाना जारी रहा। पहले कुछ संकोचके साथ, पर बादमें खुलकर आप मुझसे उस लड़कीकी प्रशंसा करने लगे। उसके पत्रोंका कुछ अंश भी कभी कभी सुना दिया करते थे। एक दिन आप घबड़ाये हुए मेरे पास आये और कहने लगे कि "भाई गजब हो गया। उसके पिताके हाथ मेरे कई पत्र लग गये हैं। उन्होंने मुझे डाँटकर एक पत्र लिखा है कि भविष्यमें मैं उसे कभी पत्र न लिखूँ। उन्होंने साथ ही साथ मुझे यह भी लिखा है कि यदि भविष्यमें मेरा उन्हें

लव लेटर्स
 न. न. न. न.

कोई भी पत्र मिलेगा तो मेरे विरुद्ध वे कानूनी कार्यवाही भी करेंगे।" मैंने वकील साहबको समझाया कि जो कुछ हुआ सो हुआ, भविष्यमें वे सचेत हो जायँ और इस तरह किसीकी अविवाहिता कन्याको पत्र लिखनेका कष्ट न करें।

उस दिन तो वे मान गये पर भला प्रेमी हृदयको चैन कहाँ? चार दिन बाद ही उनकी डाककी रफ्तार फिर बढ़ी। एक दिन उनके पास जब कानूनी नोटिस आ गयी तब जाकर उनका प्रेम-पत्र लिखनेका भूत कुछ कम हुआ। यह हालत है हमारे शिक्षितोंकी। प्रेम पत्रोंकी बहुधा ऐसी भरमार हो जाती है कि आसपासके लोग कहने लगते हैं कि क्या इन लोगोंको पत्र लिखनेके सिवाय और कोई काम नहीं है।

नव विवाहिता दम्पतियोंमें भी प्रेम-पत्र लिखनेका रिवाज आजकल बढ़ता जा रहा है। यदि पति और पत्नी काफी पढ़े हुए मिल गये तो क्या कहना? पतिजी यदि बायरनकी दो पंक्तियाँ अपने प्रेम पत्रमें लिखते हैं तो पत्नी महोदया देवके 'आँखिन राख गये ऋतु पावस' और सेनापतिके 'डग भई बावनकी सावनकी रतियाँ' आदि छन्दोंके द्वारा अपनी विरह-व्यथाका वर्णन किये बिना नहीं रहतीं।

हालावाद् और प्यालाबादके इस युगमें प्रेम-पत्रोंकी भरमार हमारे समाजके युवक और युवतियोंको पतनके गह्वर गर्तकी ओर ले जा रहा है। इसके कारण समाजके युवकोंमें सदाचार और सहिष्णुताके स्थानपर उच्छृङ्खलताका आधिपत्य हो रहा है। पत्र जिनमें कामुकताकी गंध आती हो, जिनकी एक एक पंक्ति विरह-वेदना टपक रही हो; भला इस प्रकारके पत्रोंसे देशमें वह

समाजका क्या हित हो सकता है ? ऐसे युवकोंकी अपनी प्रिय-तमाको प्रेम पत्र लिखने और उसके प्रेम-पत्रके उत्तरकी प्रतीक्षा करनेके अतिरिक्त और किसी कामके लिए समय ही कहाँ से मिल सकता है ।

बहुधा देखा जाता है कि हमारे होनहार युवक ऐसी वस्तुकी चाहना करते हैं जिसका मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता है । यदि प्रयत्न करनेपर भी उन्हें सफलता न मिली तो उनके आन्तरिक क्लेशकी सीमा नहीं रहती । मैं अपने एक मित्रके पुत्रको जानता हूँ जो मध्यम श्रेणीके व्यक्ति हैं । खाने-पीने आदिकी उनके यहाँ समुचित व्यवस्था है पर आप ८० हजार वार्षिककी आयवाले एक जमींदारकी कन्यासे विवाह करनेके लिये उत्सुक हैं । प्रेम-पत्र लिखते हैं पर उसके पासतक पहुँचे कैसे । अस्तु, 'उनकी तरफसे खत लिखे खुद ही जवाबमें' की कहावत चरितार्थ कर रहे हैं । इसका परिणाम यह हुआ है कि आपका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरता जा रहा है ।

कहनेका तात्पर्य यह है कि भारतमें प्रेम-पत्रोंका यह नया रोग आरम्भ हुआ है । यदि शीघ्र ही युवक और युवतियोंको इसकी भयंकरता भलीभाँति समझायी न गयी तो इसका परिणाम बहुत बुरा होगा । हो सकता है हमारे ये शब्द कुछ युवकोंको बुरे मालूम हों पर महाकवि अकबरके शब्दोंमें—

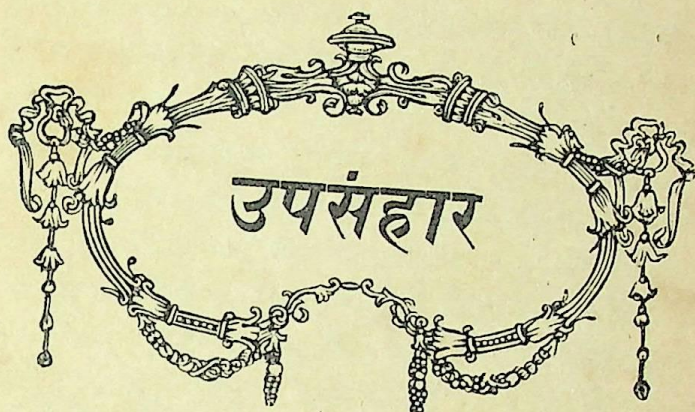
ये बड़ा ऐब है तुझमें अकबर ।

जो दिलमें आये कह गुजरता है ॥

१५

पत्र ।

साथ हा



लेखक—देवनारायण द्विवेदी

प्रिये,

तुमने 'लव-लेटर्स' नामकी पुस्तकका उपसंहार पढ़नेके लिए उत्सुकता प्रकट की है; अतः तुम्हारी इच्छा पूरी करनेके लिए कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। Love या प्रेम शब्द बड़ा ही व्यापक है। प्रेम लघुसे लघु है और महानसे महान। प्रेम न हो तो संसारका व्यापार ही बन्द हो जाय। घूमने फिरने, सोने-जागने, रोने-हँसने, दुःखमें-सुखमें सबमें हमें प्रेमका आभास दिखायी पड़ता है। प्रेम-हीकी महिमा है कि हम पुत्र-कलत्रके लिये सात्त्विकी, राजसी और तामसी कर्माँद्वारा धन कमाते हैं और प्रेमहीकी महिमासे हम पुत्र-कलत्र आदि सारी भंभटोंको छोड़ छाड़कर भगवद्भक्ति-परायण हो जाते हैं। प्रेममें बन्धन भी है और मोक्ष भी। किन्तु इसमें वह

बन्धकत्त्व नहीं जो प्राणीको दलदलमें फँसाता है। प्रेम संसारकी प्रत्येक वस्तुमें, हर प्राणीमें बीज रूपसे वर्तमान है; यह सकाम मोहकतासे सर्वथा भिन्न है। हर वस्तुके शुद्ध सात्विक अंशमें दूँदनेसे प्रेमकी झलक दिखायी पड़ती है। जिस प्रकार सत्व-रज-तम-मिश्रित संसार है तथा तीनों गुणोंमें न्यूनाधिक रूपसे तीनों गुण समाविष्ट रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक कार्य-के शुद्ध सत्त्वांशमें प्रेमकी अखंड ज्योति जगमगाती रहती है। इसका ठीक ठीक अर्थ लिख सकना असम्भव है। शास्त्रोंमें भी कहा गया है कि 'प्रेम' वाक्यद्वारा समझाया नहीं जा सकता। नारद सूत्रमें लिखा है—“मूकास्वादनवत्”। इस प्रेमका स्वरूप क्या है, यह भी कहना कठिन है। तभी तो तत्त्ववेत्ता मनीषियोंने कहा है :—

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। प्रकाशते क्वापि पात्रे। गुण-रहितं, काम-रहितं, प्रतिक्षण वर्द्धमानं अविच्छिन्न सूक्ष्मतरं अनुभव स्वरूपम्।

—नारदीय भक्ति सूत्र।

आजकल पश्चिमी शिक्षाके प्रभावसे बहुतोंकी यह धारणा है कि 'प्रेम' इन्द्रियगत, कामसे प्रेरित वासना या आकर्षणके अतिरिक्त अन्य वस्तु नहीं है। वे Platonic love वासना-विहीन प्रेमको कोरी कल्पना मानते हैं ! उनके ध्यानमें निरी काम-वासना ही 'लव' है। किन्तु जब हम देखते हैं कि हृदयमें कभी-कभी काम-वासना-विहीन प्रेम भी उत्पन्न होता है, तब ऊपरकी बात बिल्कुल भोँड़ीसी जँचती है और यह प्रतीत होता है कि प्रेम निष्काम है, उसमें वासना होती ही नहीं। जिस आकर्षणमें या प्रेममें

वासनाकी बू रहती है, वह प्रेम नहीं है और चाहे जो हो। प्रेम तो स्वर्गीय और अमृत है ! वह अपना सर्वस्व दे देना चाहता है, पर लेना कुछ नहीं चाहता। यदि वह याचना भी करता है तो बस यही कि 'तुम मुझे अपनेमें अनन्य प्रेम दो—ताकि मैं तुमसे कभी भी अलग न रह सकूँ।' बस, इसके सिवा प्रेम और कुछ नहीं चाहता। वह तो केवल प्रेमका ही भिखारी बना रहता है। वह आदान-प्रदान नहीं चाहता उसमें विनिमयके लिये स्थान ही नहीं। सच्चा प्रेमी जिसपर प्रेम करता है, उससे यह नहीं चाहता कि वह भी उससे प्रेम करे। उसका प्रेम उसपर हो या न हो, पर वह उसपर प्रेम करता है। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि प्रेम करनेवाला जिसपर प्रेम करता है, वह रूठा रहता है, पर प्रेम करनेवालेका प्रेम उसपर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। उसके रूठनेसे या मुँह मोड़े रहनेसे वह अपनेमें ही झुटि समझता है। अन्तमें उसे विवश होकर बरबस उसकी ओर आकर्षित होना पड़ता है। प्रेममें न तो प्रतिस्पर्द्धाका भाव होता है और न वह आकांक्षा ही रखता है। प्रेम अक्षुण्ण है। वह कम होना नहीं जानता, उत्तरोत्तर बढ़ना जानता है। उसकी प्रगति ऊर्ध्वगामी होती है, अधोगामी नहीं। प्रेम सदा अपूर्ण ही रहता है।

शुद्ध प्रेम दो तरहसे उत्पन्न होता है। कभी तो वह अकारण, अनायास एक क्षणमें पैदा हो जाता है और कभी साधारण रूपमें पैदा होकर कार्य-कारणकी सहायतासे धीरे-धीरे बढ़ता और क्रमशः परिपुष्ट होता जाता है। अकारण और अनायास पैदा होनेवाले प्रेमका भी कुछ-न-कुछ कारण तो अवश्य ही रहता है, पर वह इतना सूक्ष्म रहता है कि प्रेमीजनोंको उसका ठीक-ठीक

ज्ञान नहीं हो पाता। हाँ, यह अवश्य है कि उसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर भी किंचित् भी वासनाकी झलक दृष्टिगोचर नहीं होती। दोनों ही प्रकारसे उत्पन्न होनेवाला प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और वासना-रहित होता है। अन्तर केवल यही होता है कि एकका आकर्षण भटिति प्रतीत हो जाता है और दूसरेका कुछ दिनोंके बाद धीरे धीरे। जिस प्रेममें वासनाकी गन्ध मिले, समझ लेना चाहिए कि वह प्रेम नहीं है—काम है। प्रेम तो पर्वतकी तरह स्थिर, सागरकी तरह अगाध, गम्भीर और निर्मल, तथा निष्काम होता है। प्रेम असीम है। उसका कहीं भी ओर-छोर नहीं। प्रेमका रूप समझनेपर समझमें आता है, पर वह व्याख्या करनेका विषय नहीं।

यह तो ऐसा विषय है कि इसपर बहुत बड़े ग्रन्थका निर्माण किया जा सकता है, फिर भी प्रेमकी परिभाषा अधूरी ही रहेगी। यहाँपर न तो उतना स्थान है और न पर्याप्त समय। थोड़ेमें प्रेमका लक्ष्य कराया जा रहा है, उससे मेधावी और मननशील बुद्धि प्रेमका असली रूप समझनेमें समर्थ होगी। काम-वासनाको ही प्रेम माननेवालोंकी धारणा है कि प्रारम्भसे ही Sex प्रजननकी प्रधानता प्रेम तथा धर्म आदिका रूप धारण करती रही है और मनुष्य-धर्म भी पहले Sex worship प्रजनन-शक्तिकी पूजा या किसी-न-किसी रूपमें लिंग-पूजासे ही आरम्भ होता है। उन लोगोंका अनुमान है कि मनुष्यका जहाँ कहीं भी निवास था, हर जगह Sex worship प्रजनन शक्ति-पूजा और Phallic Religions लिंग-पूजाकी प्रधानता थी और विकासका यही प्रयत्न रहा है कि Sex प्रजनन या काम अच्छेसे अच्छे, सुन्दरसे सुन्दर शब्दोंके

आच्छादनसे ढँका रहे। किन्तु ऐसे विचारवालोंने लिंग-पूजाका रहस्य नहीं समझा है और न समझनेकी चेष्टा की है। वास्तवमें 'लिंग' शब्दका अर्थ है 'लिंग्यते अनेन लिंगं घञ्, 'पुंसि घञ्प्' इति नियमेऽपि अभिधानात् क्लीब लिंगत्वं। लिंग वह है जिससे किसी वस्तुकी पहचान हो। या जिससे किसी वस्तुका अनुमान हो; जैसे अग्निका धूम लिंग है। अर्थात् धूमसे अग्निका अनुमान होता है। स्पष्ट शब्दोंमें यों कहना चाहिए कि लिंगका अर्थ है, चिह्न, प्रतीक। सांख्य शास्त्रने लिंग माना है मूल प्रकृतिको। अब यह देखना है कि लिंग-पूजाका अभिप्राय क्या है।

आकाशं लिंगमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका।

आलयः सर्वं देवानां लयनाल्लिंगमुच्यते ॥

—स्कन्द पुराण।

अर्थात् आकाश लिंग और पृथिवी उसकी पीठिका है। यह सब देवताओंका आलय है, इसमें सभी लय होते हैं। उपनिषदोंमें भी इस बातका उल्लेख है कि सच्चिदानन्द आनन्दघन परब्रह्मका प्रतीक आकाश है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि आकाश निराकार ब्रह्मका प्रतीक कैसे है? सुनो, ब्रह्म आकाररहित है। इसलिए यह बात कही जा सकती है कि जब ब्रह्माका आकार ही नहीं है, तब उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है? इस शंकाका निवारण आकाशसे हो जाता है। क्योंकि आकाश भी तो शून्य है—आकाररहित है; फिर भी हमें प्रतीत होता है कि आकाश है। इससे यह सिद्ध होता है कि आकाररहित वस्तुकी भी प्रतीति हो सकती है, अतः ब्रह्मकी प्रतीतिके विषयमें शंका

करना व्यर्थ है। बस, इसीसे आकाशको ब्रह्मका प्रतीक या चिह्न कहा गया है। यह आकाश ही वायु-संघातसे मेघोंद्वारा पृथिवी पीठिकापर वर्षा करता है, जिससे धान्यादिकी उत्पत्ति होती है। ब्रह्मका यह प्रतीक मनुष्य-शरीरमें भी है, जिसका अनुभव योगी पुरुष करते हैं। उसका नाम है 'ज्योतिर्मयलिंग'। जिस प्रणव में 'अ' कार रूपसे ब्रह्मा, 'उ' कारसे विष्णु और 'म' कारसे 'शिव' का समावेश है, उसी 'ॐ' का प्रतीक ज्योतिर्मयलिंग है। इस ज्योतिर्मयलिंगका दर्शन योगीजन समाधिकालमें करते हैं। योग शास्त्रका वचन है :—

“मूर्द्धा ज्योति दर्शनम् ।”

यह ज्योतिर्मयलिंग षट् चक्रान्तर्गत मूलाधारसे समुत्थित होकर ब्रह्मरन्ध्रतक परिव्याप्त है। मनुष्य-देहमें ज्योतिर्मयलिंग ही ब्रह्मका प्रतीक है। वह लम्बायमान लिंग प्रकाशमय है। उसीका प्रतीक पाषाणमूर्त्ति शिवलिंग है जिसकी पूजा की जाती है। लिंग-पूजा केवल भारतमें ही आवद्ध नहीं थी। मिश्र देशमें भी ओसी-रिस देवकी लिंग-पूजा बहुत प्रबल थी। चीन और जापानके प्राचीन साहित्यमें भी लिंग-पूजाकी गवाही मिलती है। अमेरिकाके महा-द्वीपोंके प्राचीन निवासी भी लिंग-पूजा करते थे। पर लिंग-पूजाका असली रहस्य यही है जिसे हम ऊपर प्रकट कर चुके हैं।

प्रत्येक जीवनमें प्रकृति और पुरुषके मिलनकी जो दुर्दमनीय इच्छा वर्तमान रहती है उसी इच्छासे सृष्टिका आरम्भ होता है। इसीका प्रतिरूप शिवलिंग-पूजा है। इसे यों भी कह सकते हैं कि लिंगपूजा सृष्टि-रहस्यका एक चित्र है। क्योंकि ज्योतिर्मयलिंग

‘ॐ’ स्वरूप है और ॐ ही सृष्टिका स्रष्टा है। उसीका प्रतीक लिंग है। यह लिंग-पूजा जननेन्द्रियके आधारपर नहीं प्रचलित हुई है बल्कि सृष्टि-रहस्यके चित्ररूपमें सृष्टिके स्रष्टा साक्षात् पर-ब्रह्मपरमात्माकी अपरोक्ष विज्ञानपूर्ण मधुर स्मृति है। इससे मनुष्य जातिकी उच्च भावनाका पता चलता है। अधिक स्पष्ट शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि लिंग-पूजा सृष्टिके स्रष्टाकी पूजा है।

इस विवेचनसे यह स्थिर हुआ कि लिंग-पूजाकी दुहाई देकर प्रेमका अनर्गल अर्थ करना कपोल कल्पना है और एक पवित्र वस्तुको कलंकित करना है। न तो प्रेम काम-लिप्सा है और न इस आधारपर लिंग-पूजाका प्रचलन ही हुआ है। प्रेममें भोग, आकांक्षा, वासना या काम कुछ भी नहीं हुआ करता है। प्रेम मोक्ष-दाता है। मोक्षदायिनी वस्तुमें भोग कहाँ? देखिये न, अनादि भगवान् शिवजीने कहा है:—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो ।

यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः ॥

अर्थात् ‘जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं और जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं’। दोनों परस्पर भिन्न वस्तुएँ हैं। जहाँ दिन है वहाँ रात नहीं और जहाँ रात है वहाँ दिन नहीं। एकके अवसान-में ही दूसरेका पदार्पण हो सकता है। ठीक यही बात मोक्ष और भोगके सम्बन्धमें है। पहला ज्ञानका परिणाम है और दूसरा अज्ञानका। ज्ञान प्रकाशमय है और अज्ञान अन्धकार-पूर्ण। इस-लिए न तो प्रकाशमें अन्धकार हो सकता है और न अन्धकारमें प्रकाश ही। इससे यह निष्कर्ष निकला कि प्रेम भोगसे परे वस्तु है।

प्रेमके सम्बन्धमें यह कथन बिलकुल सही है कि 'God is love and love is god' 'ईश्वर प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है' । भारतीय कवियोंने भी कहा है :—

प्रेम हरीको रूप है, त्यों हरि प्रेम-सरूप ।
एक होइ द्वै में लसै, ज्यों सूरज अरु धूप ॥

सर्वथा ध्वंस रहितं सत्यपि ध्वंसकारणे ।
यद्भाव बन्धनं यूनाः स प्रेमा परिकीर्तितः ॥

छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय ।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥
प्रेम सदा बढ़िबौ करै, ज्यों ससिकला सुवेष ।
पै पूनों यामैं नहीं, तातें कबहुँ न शेष ॥

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममते समुपासते ।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ प्रेम भाजनम् ॥

एक नेम यह प्रेमको, नेम सबै छुटि जाहिं ।
पै जो छांड़ै जानिकै, तहां प्रेम कछु नाहिं ॥

प्रथम सीस अरपन करै, पाछे करै प्रवेस ।
ऐसे प्रेमी सुजनको, है प्रवेस यहि देश ॥

तत्त्व प्रेमकर मम अरु तोरा ।
 जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
 सो मन रहत सदा तोहि पाहीं ।
 जानेहु प्रीति रीति यहि माहीं ॥

ऊपरके अवतरणोंसे प्रेमका स्वरूप समझनेमें बहुत कुछ सहायता मिलेगी । प्रेम केवल स्त्री-पुरुषमें ही होता है, ऐसा कहना ठीक नहीं । हमारा निजी अनुभव है कि प्रेम पुरुष-पुरुषमें भी होता है, मनुष्य और पशुपक्षीमें भी होता है और वह अन्ततक निर्दोष, निस्वार्थ एवं सुखद बना रहता है । ॐ यह धारणा भ्रान्त है कि प्रेम केवल स्त्री-पुरुषमें ही होता है । मातृ-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, पुत्र-प्रेम, धर्म-प्रेम देश-प्रेम, जाति-प्रेम, मित्र-प्रेम, विद्या-प्रेम आदिमें यदि प्रेमका शुद्ध रूप हो तो इन सबको प्रेमके सिवा

ॐ एक महाशयका एक हारिल पक्षीसे प्रेम था । वह हारिल भी उनसे प्रेम करता था । तारोफ यह थी कि उसे उन्होंने पाला नहीं था । वह पक्षी जहां दूसरोंको देखकर उड़ जाता था, वहां उन्हें देखते ही उनकी गोदमें आकर बैठ जाता था । जिस दिन वह महाशय कहीं चले जाते थे, हारिल दिनभर चारा-पानी छोड़कर उदास भावसे वृक्षकी डालीपर बैठा दरवाजेकी ओर देखा करता था । हारिलके न देखनेपर उक्त महाशय भी बेचैन रहा करते थे । अन्तमें लगातार कई दिनोंतक पक्षीको न देखनेपर उनकी मृत्यु हो गयी । इससे यह सिद्ध होता है कि प्रेम प्राणि-विशेषमें सीमित नहीं । ऐसा प्रेम आत्मैक्यका द्योतक है ।

दूसरा कुछ नहीं कहा जा सकता । यदि ये सब प्रेमकी सीमामें न भी आते, तब भी अब प्रेम ही कहे जाते । क्योंकि मानव-स्वभावने जिस बातको मान लिया है, उसमें किसी प्रकार-का तर्क करना व्यर्थ है । शब्दका अर्थ बदलनेके लिए फिरसे सृष्टिका निर्माण नहीं किया जा सकता । ऐसे बहुतसे शब्द हैं जिनका यथार्थ अर्थ कुछ और ही है, पर वे मूल अर्थसे सर्वथा भिन्न अर्थमें प्रयुक्त होते हैं और भाषाने उन्हें उस प्रयुक्त होनेवाले अर्थमें ही ग्राह्य भी कर लिया है । उदाहरणके लिए आनन्द, ज्ञान आदि शब्द हैं । इनका असली अर्थ वेदान्त-शास्त्रने कुछ और ही माना है, पर ये प्रयुक्त होते हैं कुछ और ही अर्थमें । तो क्या इन्हें असली अर्थमें लानेके लिये कोष बदले जा सकते हैं ? इनका बदलना तो तभी सम्भव होगा जब भाषा स्वभावतः इन्हें भिन्न अर्थमें स्वीकार कर लेगी । इसलिए हम तो यही मानेंगे कि प्रेम हर किसी उपयुक्त पात्रमें हो सकता है और होता है । रही बात प्रेमके पूर्णताकी सो तो दुर्लभ है ही । क्योंकि यदि ऐसा न माना जाय तो 'सियाराम मय सब जग जानी' की सार्थकता कैसे होगी ?

हां, यह अवश्य है कि पुरुषका पुरुषके साथ प्रेम होनेके उदाहरण बहुत कम मिलेंगे, किन्तु स्त्री-पुरुषमें प्रेम होनेके उससे अधिक । सच्चा प्रेम तो केवल भगवानमें ही होता है, उसके बाद स्त्री-पुरुषमें । या यों कहना चाहिए कि पति-पत्नीमें । दाम्पत्य-जीवनकी यही विशेषता है । प्राणका प्राणमें, मनका मनमें, आत्माका अत्मामें मिला देना ही दम्पति-जीवनका चरमोत्कर्ष है । केवल शरीरका शरीरके साथ मेल होना ही दम्पति-जीवनका सर्वस्व नहीं । 'एक जान दो कालिब' इस कहावतका चरितार्थ होना पति-पत्नी-

प्रेममें अधिक सम्भव रहता है। पति-पत्नी प्रेम वास्तवमें प्रकृति और पुरुषका मेल है जो कि सर्वथा स्वाभाविक और सरल है। प्रेमोत्कर्षमें अनन्यता आ जाती है। एकको छोड़कर दूसरेमें और दूसरेको छोड़कर तीसरेमें प्रेमका होना, प्रेम नहीं है—कामुकता है। प्रेमी तो अपनी प्रेमिकामें ही पूर्णता देखता है; इसी प्रकार प्रेमिका भी अपने प्रेमीमें। दोनोंको शेष समूचे जगत्में अपूर्णता दिखायी पड़ती है। जहां प्रेमी अपने प्रेममें पूर्णता देखता है वहां वह अपने प्रेममें सदैव अपूर्णताका अनुभव किया करता है। पूर्णतामें शान्ति होती है, चंचलता या उद्विग्नता नहीं। इसलिए उसकी प्रवृत्ति अन्य ओर नहीं होती। अपूर्णताका अनुभव होनेमें पूर्णता लानेका प्रयास होता है, अतः उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

प्रेममें लय है। पवित्र दम्पति-जीवनमें दोनों ही अपनेको एक दूसरेमें लय कर देते हैं। अभिन्नता रही नहीं जाती। प्रेममें अशुद्धता या धर्म-विरुद्धता नहीं है। वह स्वयं धर्ममूर्ति है, आनन्द-स्वरूप है। जिस प्रकार इसका शुद्ध रूप निराला है, उसी प्रकार इसका पंथ भी निराला है।

अतएव 'लव-लेटर्स' या प्रेम-पत्रमें पति-पत्नीके प्रेम-पत्रोंका समावेश होना स्वाभाविक है। पति-पत्नीके पत्र-व्यवहारमें ही प्रेमकी भांकी दिखायी पड़ सकती है। यही कारण है कि इस पुस्तकमें केवल ये ही पत्र रखे गये हैं। भले ही स्त्री परकीया हो या स्वकीया। इसे लेखक और लेखिकाएँ जानें।

अन्तमें हम रामचरित-मानसकी दो चौपाइयां उद्धृत करके इस पत्र या उपसंहारको समाप्त करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासकी

इन चौपाइयोंसे तुम्हें इस बातका ज्ञान हो जायगा कि प्रेम कैसे होता है ।

जाने बिनु न होइ परतीती ।

बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥

बिना प्रीति नहिं भगति दृढ़ाई ।

जिमि खगेस जलकी चिकनाई ॥

तुम्हारे ही शब्दोंमें—

‘सरकार’ ।

Inkhan Lal "K anwal"

"कंवल"



हृदय की झनकार

प्रेम-राग आसावरी

रमैया मैं तो थारे रंग राती ।

औरोंके पिया परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजें पाती ।

मेरा पिया मेरे हृदय बसत है, रोल करूँ दिन राती ॥१॥

चूवा चोला पहिर सखीरी, मैं मुरमुट रमवा जाती ।

मुरमुटमें मोहिं मोहन मिलिया, घाल मिली गलबोँथी ॥२॥

और सखी मद पो पी मातो, मैं बिन पीयाँ ही माती ।

प्रेम-भठीको मैं मद पीयो, छकी फिरूँ दिन राती ॥३॥

सुरत निरतको दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती ।

अगम घाणिको तेल सिंचायो, बाल रही दिन राती ॥४॥

जाऊँनी पीहरिये जाऊँनी सासरिये, हरिसूँ सैन लगाती ।

मीराके प्रभु गिरिधर नागर, हरि-चरना चित लाती ॥५॥

विरह

हे री मैं तोप्रेम दिवानी, (मेरो) दरद न जाने कोय ॥टेक॥

सूली ऊपर सेज हमारी, सोणो किस बिध होय ।

गगन-मँडलपर सेज पियाकी, किस बिध मिलणो होय ॥१॥

घायलकी गति घायल जानै, जो कोई घायल होय ।

जौहरिकी गति जौहरि जानै, दूजा न जानै कोय ॥२॥

दरदकी मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्यौ नहिं कोय ।

मीराकी प्रभु पीर मिटै जब, बैद साँवलियो होय ॥३॥

राग आसावरी

दरस बिनु दूखन लागै नैन ॥

जबसे तुम बिछुरे मेरे प्रभुजी, कबहु न पायो चैन ॥१॥

शब्द सुनत मेरी छतियाँ कम्पै, मीठे लागै बैन ।

एक-टकटको पंथ निहारूँ भई छमासी रैन ॥२॥

विरह बिथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत नैन ।

मीराके प्रभु कब रे मिलोगे, दुख भेटन सुख दैन ॥३॥

राग तोड़ी-ताल तेवरा

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई ।

दूसरा न कोई, साधो, सकल लोक जोई ॥

भाई छोड्या बंधु छोड्या, छोड्या सगा सोई ।

साधु संग बैठ बैठ लोक-लाज खोई ॥

भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई ।

असुवन जल सींच-सींच प्रेम-बेलि बोई ॥

दधिमथ घृत काढ़ि लियो, डार दई छोई ।

राणा विष को प्याला भेज्यो, पीय मगन होई ॥

अब तौ बात फैल पड़ी, जाणे सब कोई ।

मीरां एम लगण लागी—होनी होय सो होई ॥

विरहिणीके उद्गार

कागा नैन निकास दूँ, पिया पास ले जाय ।

पहिले दरस दिखाय कै, पीछे लीजौ खाय ॥

कागा सब तन खाइयो, चुन चुन खइयो माँस ।

दो नैना मत खाइयो, पिया मिलनकी आस ॥

सजन सकारे जायँगे, नैन मरेंगे रोय ।

विधना ऐसी रैन कर, भोर कभी न होय ॥

साजन हम तुम एक हैं, कहन सुननके दोय ।

मनसे मनको तौलिये, दो मन कभी न होय ॥

लगा भादों मुझे दुख देने भारी, घटा चहुँ ओर झुक आई है सारी ।
विरहिनकी चिन्ता

भरीजलथल चढ़ी नदियों की धारें, सखी अब तक न आये पी हमारे ।

घटा कारी अँधेरी नित डरानै, पिया बिन नीद विरहिन को न आवै ।

अरे कागा तू उड़के जा विदेसा, सलोने श्यामको लेकर संदेसा ।

ये सब हालत वहाँ तकरीर कीजो, मेरा साबित गुनहतकसीर कीजो ।

कि उस जोगिनको तुम क्यों छोड़ बैठे? तरफ उसकी से मुँह क्यों मोड़ बैठे!

मुझे गम दिन-ब-दिन खाने लगा है, अजल का दिन नजर आने लगा है ।

न जानूँ दरस पीका कब मिलेगा, कमल इस मेरे जी का कब खिलेगा ।

सखी, यह मास भादों भी सीधारा, न आया आहवह प्रीतम पियारा ।

दिवानी पीकी मैं मेरा पिया है, पिया का नाम सुमरन मैं किया है ।

कामना

कह रहा हूँ जो मुझे है आज भगवन् माँगना ।

पर नहीं प्यारे मुझे धन-धाम-कंचन माँगना ॥

लोक-आदर-मान की भी कुछ मुझे इच्छा नहीं ।

और क्या मुझको नहीं है राज आसन माँगना ॥

सिद्धता-वैराग्य-जप-तप-नियम साधन आदि की ।

यह नहीं कुछ भी मुझे है पतित-पावन माँगना ॥

प्रेम इतना दो कि देखूँ प्रेममय संसारको ।

कामना है एक केवल प्रेमजीवन माँगना ॥

समाप्त

आजकल का प्रेम

समयके परिवर्तनसे इन दिनों प्रेमके उपयोगमें कैसी त्रुटियाँ दिखलाई पड़ रही हैं, प्रेमी-प्रेमिकाके आदर्श किस प्रकार गिरते जा रहे हैं, प्रेम-संसारका चक्र किस गति से घूम रहा है—ये सब बातें इस पुस्तक में उचित रीतिसे दिखला दी गयी हैं। वर्तमान कालके प्रेम-रहस्यकी जानकारी प्राप्त करके लाभ उठाना प्रत्येक शिक्षित व्यक्तिका कर्तव्य है। मूल्य—१॥) सजिल्द १॥॥)

नारी धर्म शिक्षा

स्त्रियोपयागी

लेखिका-श्रीमती मनव्रतादेवी, मूल्य १॥) सजिल्द १॥॥) विवाहके अवसरपर 'दहेज' में पुत्री, बहनको उपहारमें देने योग्य है। देखिये इसपर मध्यप्रान्तका प्रसिद्ध साप्ताहिक "कर्मवीर" क्या कहता है ?

स्त्रि योपयोगी ऐसा कोई महत्व-पूर्ण विषय नहीं जो इसमें न आया हो। जिनमें पति-पत्नीसम्बन्ध बाल-शिक्षा, धात्री-शिक्षा, गृह-कार्य, कौटुम्बिक व्यवहार, सन्तति-पालन भोजन-निर्माण-विधि, गृह-चिकित्सा तथा लिखने-पढ़ने पर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। केवल १६७ पृष्ठों में ही युक्ति-पूर्वक इन विषयोंका उल्लेख किया गया है। पुस्तक अपने ढंगकी एक ही है। इसकी प्रति प्रत्येक गृहस्थके घरमें अवश्य होनी चाहिये। शिक्षा-विभागको चाहिये कि ऐसी उपयोगी पुस्तकको पाठ्य-रूपमें कन्या पाठशालाओंके सिलेबस में अवश्य रखे। आदर्श हिन्दू महिलाके लिये जिन बातोंकी आवश्यकता है वे सब इस पुस्तकमें मिलेंगी। डा० श्रीनेत

मिलने का पता मैनेज-काशी-पुस्तक-भंडार—चौक—बनारस।

प्रेमकी महिमा

प्रेम हियका भाव परम पुनीत है ;
 प्रेमका माधुर्य्य बचनातीत है ।
 प्रेम ही तो स्वर्ग है, सत्कर्म है ;
 प्रेम ही तो आत्माका धर्म है ॥

प्रेम ही सब सद्गुणोंका सार है ;
 प्रेम ही सुख शान्तिका आधार है ।
 प्रेम-सागरका न मिलता पार है ;
 प्रेमके हाथों विका संसार है ॥

मानवोंमें पक्षियोंमें फूलमें ;
 जलचरोंमें तारकोंमें धूलमें ।
 प्रेमकी ध्वनि गूँजती है सब कहीं ;
 प्रेम-बन्धन है कहाँ मिलता नहीं ?

मोर हैं जब घन छटाको देखते ;
 मुग्ध होकर प्रेमसे हैं नाचते ।
 देख करके पंकजोंको फूलते ;
 प्रेमके बश हो भ्रमर हैं गूँजते ॥

चन्द्रको जब है चकोर निहारता ;
 बाँधकर धुन है उसीको देखता ।
 बेणुका सुनता हिरण जब नाद है ;
 प्रेमके बश भूलता सब याद है ॥

मंदाकिनी है प्रेमकी बहती जहाँ,
जानिये है स्वर्ग भी निश्चय वहाँ ।
प्रेम शासन मोदकारी है महा ;
चुटकियोंमें दुःख हरता है अहा ; !!

स्वार्थको प्रेमी नहीं पहचानते ;
दुःखको भी सौख्य हैं वे मानते ।
दीपकी लौ है शलभको सर्वदा ;
प्राण देना सुख समझता है सदा ॥

भेदको प्रेमी नहीं हैं जानते ;
जाति अथवा पाँति वे कब मानते ।
उच्चता वा नीचता कब है वहाँ ?
कृष्ण मिलते हैं सुदामासे जहाँ ॥

रत्न है यह जीव निश्चय मानिये ;
प्रेमको बश दीप्ति उसकी जानिये ।
प्रेमका जो मर्म है पहचानता ;
भेद जीवनका वही है जानता ॥

मोतीलाल जैन, एम० ए० ।



